Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

प्रसाद और न्हानालाल की भाव-व्यंजना का तुलनात्मक अध्ययन

काव्य के दो पक्ष हैं - भावपक्ष और कलापक्ष, जिनके आधार पर किसी भी कृति अथवा उसके रचयिता के काव्य का समुचित मूल्यांकन किया जा सकता है। पूर्ववर्ती अध्याय में दोनों आलोच्य कवियों की काव्य-कृतियों का अनुशीलन उनकी विषय-वस्तु के विवेचन के साथ-साथ प्रस्तुत किया जा चुका है। किसी काव्य की विषय-वस्तु उसका बाह्य ज्ञान दे सकती है; अथवा एक प्रकार से हम उसकी बाहरी रूप-रेखा से परिचित हो सकते हैं। उसके कवित्व की गुणवत्ता वस्तुतः भाव-व्यंजना पर निर्भर करती है। ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं कि एक ही विषय-वस्तु या कथावस्तु अपना कर अनेक कवि अपने-अपने ढंग से रचनाएं प्रस्तुत करते हैं, किन्तु उनकी मार्मिकता एवं प्रभाव की अन्विति भिन्न हुआ करती है। अतः प्रस्तुत अध्याय में दोनों कवियों की भाव व्यंजना पर स्वतंत्र रूप से विचार करने के पश्चात् उनका तुलनात्मक अनुशीलन किया जायगा।

प्रसाद जी की काव्य-कृतियों का भाव-पक्ष :

पूर्ववर्ती अध्याय के विवेचन के निष्कर्ष रूप में हम यह निर्दिष्ट कर चुके हैं कि जयशंकर प्रसाद मूलतः प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। इस तथ्य के अपवाद रूप में वे रचनाएं रखी जा सकती हैं जो कि किसी ऐसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर प्रस्तुत हुई है और उनकी मूल प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक रही है। उनकी कतिपय रचनाएं व्यापक करुणा और मानवता की चेतना की प्रेरित हैं, जिन्हें कवि की उपर्युक्त प्रधान-प्रवृत्ति से भिन्न भी कहा जा सकता है। ऐसी अनेक रचनाओं में उनका निजी चिन्तन एवं ऐतिहासिक ऊर्द्धबोध क्रियाशील रहा है। अतः इस वैविध्य को लक्ष्य करके अध्ययन गत सुविधा के विचार से प्रत्येक काव्य-कृति के भावपक्ष का स्वतंत्र-रूप से क्रमशः अध्ययन किया जा रहा है।

(१) करुणालय :

काल क्रम की दृष्टि से यह प्रथम रचना कही जा सकती है। प्रसाद

नी की सूचनानुसार यह गीति नाट्य के रूप में गेय है,[1] किन्तु इसे भाव-नाट्य नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि इस समस्त कथानक बौद्धिक तत्त्वों से युक्त है। डा० गणेश खरे ने भी इसके वैचारिक पक्ष पर विचार करते हुए यही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।[2] पूर्वविवेचित कथावस्तु से स्पष्ट है कि इसका कथानक पौराणिक और लोकमंगल की भावना से संलग्न है। भावपक्ष की दृष्टि से इसके दो स्थल मार्मिक कहे जा सकते हैं - प्रथम विश्वामित्र की सुशीलता तथा दूसरे शुनःशेफ की भाव विह्वल प्रार्थना में मानवता की करुण पुकार है -

" हाय ! तुम्हारी करुणा को भी क्या हुआ,
जो न दिखाती स्नेह पिता का पुत्र से "

वस्तुतः जैसा पहले दृष्टिगत किया जा चुका है कि " करुणालय " में मानवता का स्वर मुखरित है जिसमें क्षमा, दया, अहिंसा और परोपकार जैसे गुण सन्निविष्ट है। आगे चल कर यह करुणा कवि के " आँसू " नामक काव्य में अधिक सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। एक बात अवश्य कही जा सकती है कि इसकी कथावस्तु में मार्मिक भावों की अवतारणा के लिए पर्याप्त गुंजाइश है किन्तु कवि की अन्तश्चेतना जितनी उपरिनिर्दिष्ट मानवतावादी सन्देश की ओर केन्द्रित रही है उनकी मार्मिक प्रसंगों पर वह नहीं रम पाया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस कृति में प्रसाद की नूतन अभिव्यंजना प्रणाली का संकेत अवश्य मिलने लग जाता है ; किन्तु विषय-वस्तु का चुनाव कवि उपरिनिर्दिष्ट प्रधान प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। भाव-व्यंजना के दृष्टिकोण से इस कृति को उतना महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता जितना कि परवर्ती कृतियों को। वस्तुतः यह सोद्देश्य रचना है जिसमें काव्य के भाव-तत्त्व की अपेक्षा कृत विचार तत्त्व को ही प्रधानता नियोजित किया गया है।

---

१ करुणालय की सूचना

२ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० ७१

(२) कानन-कुसुम :

" कानन-कुसुम " की मुक्तक कविताएं प्रसाद जी के प्रकृति-वर्णन के प्रथम पदन्यास की द्योतिका हैं। इन वर्णनों में प्रायः स्थूलता और वर्णन की प्रधानता है। भाव प्रवणता, मार्मिकता, रहस्यात्मक संकेत तथा अलंकरण आदि का जो विशेषता " आँसू " " झरना " तथा " लहर " के गीतों में दृष्टिगोचर होती है उसका सन्निवेश इन कविताओं में नहीं हुआ है। इन्हें हम छायावाद युग की पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार कर सकते हैं; किन्तु छायावादी काव्य में प्राप्त प्रकृति-वर्णन की अन्तश्चेतना का इनमें अभाव अवश्य है। प्रकृतिमूलक इन रचनाओं की दूसरी विशेषता विविधता की है। इसमें संकलित भक्ति और विनय-परक रचनाओं में परम्परा का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। रचनाओं का यह वैविध्य उनके समय-समय पर लिखे जाने के तथ्य का परिणाम है। इस संदर्भ में स्वयं कवि कन का यह कथन उल्लेखनीय है :-

> " इसमें रंगीन और सादे, सुगन्धवाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए पराग में लिपटे हुए सभी तरह के कुसुम अत्यंत भाव से एकत्र किये गये हैं "।

इसमें सन्देह नहीं कि सौन्दर्य निरूपण के क्षेत्र में कवि " कानन कुसुम " की कविताओं में पूर्ववर्ती कृति से आगे बढ़ा है। जिस छायावादी शैली का पर्याप्त विकसित और उत्कृष्ट रूप उनके " कामायनी " शीर्षक महाकाव्य में प्राप्त होता है, उसकी सुस्पष्ट झलक इस संग्रह की कविताओं में दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण स्वरूप प्रकृति में मानवीय कार्य व्यापारों का प्रतिबिम्ब निम्न लिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है :-

" राघव बैठे देख जानकी के आनन को,
स्वर्गंगा का कमल मिला जैसे कानन को

१ कानन-कुसुम – समर्पण

नील मधुप को देखा, वहीं उस कुंज कली ने
स्वयं आगमन किया - कहा यह जनक लली ने "[1]

" चित्रकूट " काव्य का कथानक यद्यपि प्राचीन है किन्तु उसमें कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा तथा कल्पनाशक्ति का स्वच्छन्द रूप विद्यमान है। व्यंजना की दृष्टि से भी यह उत्तम कृति कही जा सकती है।

उपर्युक्त उदाहरण से प्रकट है कि कवि अपनी काव्य-शैली को एक निश्चित् गति तथा दिशा देने को यत्नशील है। प्रकृति को आलंबन मानकर भी कतिपय चित्र इसमें उरे हे गये हैं। कहीं कहीं पर ये चित्र मानव मनोभावों को भी सशक्त रूप में प्रस्तुत करते हैं -

" अविरल आँसू-धार नेत्र से बह रहे
वर्षा-ऋतु का रूप नहीं तुम लख रहे।
मेघ-वाहना पवनमार्ग में विचरती
सुन्दर श्रम-लव-बिन्दु धरा को वितरती "[2]

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत संकलन के माध्यम से प्रसाद जी प्रेम और सौन्दर्य के क्षेत्र में एक सुदृढ़ पदन्यास के साथ आगे बढ़ रहे हैं। इसके सम्बन्ध में डा० विनय मोहन शर्मा का यह कथन समीचीन ही कहा जायगा कि " कानन " के " कुसुम " निर्गन्ध नहीं हैं ; पर वे सौरभ के भार को वहन नहीं कर रहे हैं।[3]

(२) प्रेम-पथिक :

यह प्रसाद जी का भावपूर्ण खण्ड-काव्य है। जिसमें स्वच्छन्दतावादी

१ कानन-कुसुम, पृ० ९६ शीर्षक चित्रकूट
२ कानन-कुसुम, पृ० १२, शीर्षक, करुणा-कुंज
३ डा० विनय मोहन शर्मा - कवि प्रसाद, आँसू तथा अन्य कृतियाँ, पृ० ७९

प्रवृत्तियों के साथ-साथ कवि का जीवन-दर्शन प्रस्तुत हुआ है। प्रसाद जी की परवर्ती कृतियों में जिस नियतिवादी जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति सर्वत्र दिखायी पड़ती है उसका प्रारम्भिक निदर्शन "प्रेम पथिक में है :-

" लीलामय की अद्भुत लीला, किससे जानी जाती है ;
कौन उठा सकता है घूंघला-पर भविष्य का जीवन में।
जिस मंदिर में देख रहे हो जलता रहता है कर्पूर
कौन बता सकता है उसमें तेल न जलने पावेगा। "[1]

कवि प्रेम की व्यापक सत्ता को स्वीकार करता हुआ उसे प्रभु का स्वरूप मानता है। इस मान्यता में कवि अन्तर्मुखी दृष्टिकोण अपनाता है। वह रूप जन्य प्रेम को व्यक्तिगत और मोह और स्वार्थ से युक्त मान कर अभिप्रेत प्रेम को विश्व का संचालक घोषित करता है -

" प्रियतम-मय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहाँ
फिर तो वही रहा मैं में, नयनों में, प्रत्युत जगमग में,
कहाँ रहा तब द्वैत किसी से क्योंकि विश्व ही प्रियतम है। "[2]

भाव व्यंजना की दृष्टि से इसमें कुतूहल और जिज्ञासा के तत्त्व तथा भावना का क्रियात्मक अन्विति प्रकृष्ट रूप में विद्यमान है। आलोचक श्री सुधाकर पाण्डेय के मतानुसार

" मानस की प्रेमपयी पीडा को उन्होंने इस रचना में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है और रूप-सौन्दर्य से विशुद्ध प्रेम-सृष्टि की ओर जीवन को अभिमुख करने का सन्देश भी इस रचना में दिया है "[3]

---

१ प्रेमपथिक, प्रारंभिक संस्करण, पृ० १

२ वही, पृ० १७

३ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद जी की कविताएं, पृ० ९८

" प्रेम-पथिक " के वर्णनों की एक उल्लेखनीय विशेषता सौन्दर्य चित्रण की है। कवि चुनी हुई शब्दावली में बड़ी कुशलता के साथ उन्हें प्रस्तुत करता जाता है। ऐसे चित्रण में प्रकृति का मानवीकरण के रूप में चित्रण भी सुन्दर बन पड़ा है -

" धीरे-धीरे बीत चली रजनी ; आलस को साथ लिये
स्वप्न-सदृश निद्रा भी टूटी, वन-विहंग के कलरव से
मिटी नि- मलिनता, रवि-कर पाकर उषा उठ खड़ी हुई अहो
जैसे प्रिय-कर का अवलम्बन किये प्रेयसी उठती है। "[1]

मानवी रूप चित्रण भी इसी प्रकार सशक्त कहा जा सकता है :-

" कहां स्निग्ध सौन्दर्य तुम्हारा ? वह लावण्य कहां है अब ?
वे सब अलस-कटाक्ष कहां है ? वे घुंघराले बाल कहां ?
वह उन्मादक रूप, शिशिर के बूंद-सदृश क्या ढुलक गया ?
सच है या कि स्वप्न है, क्या आश्चर्य आज मैं देख रहा। "[2]

समग्रतया देखने पर इस कृति में मानव भावों की छोटी-मोटी मनोरम झांकियां है, किसी भाव के पूर्ण परिपाक की स्थिति नहीं आने पाई है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रेम-पथिक में कवि की नवीन शैली का उन्मेष दृष्टिगोचर होता है किन्तु भावोत्कर्ष की दृष्टि से यह एक सामान्य कृति ही कही जा सकती है।

महाराणा का महत्त्व :

जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय के विवेचन से प्रकट है कि इसे ऐतिहासिक

१ प्रेम पथिक, पृ० १८
२ वही, पृ० १८-१९

कथानक पर आधारित खण्ड-काव्य कहा जा सकता है जिसमें नाटकीय तत्त्वों का सुन्दर समायोजन भी मिलता है। यह सोद्देश्य रचना है और युगीन पुनरुत्थान-वादी विचारधारा से इसे प्रेरित कहा जा सकता है। इस सोद्देश्यता के बावजूद भी इसमें मानव भावों का चित्रण सशक्त एवं मार्मिक बन पड़ा है। कवि परिस्थिति का एक प्रभावपूर्ण वातावरण-सा खड़ा कर देता है :-

" कानन में पतझड़ की कैसा फैल के
भीषण निज आतंक दिखाता था
सूखे पत्तों के ही " खड़-खड़ " शब्द से
अपना कुत्सित क्रोध प्रकट था कर रहा।
प्रबल प्रभंजन वेगपूर्ण था चल रहा
हरे-हरे द्रुम दल को कुछ लपेटता
घूम रहा था, क्रूर सदृश उस भूमि में।
जैसी हरियाली थी वैसी ही वहाँ -
सूखे काटे पत्ते बिखरे ढेर-से
बड़े मनुष्यों के पैरों से दीन-सम
जो कुचले जाते थे, हय-पद-चक्र से। "[1]

भावों के वर्णन में प्रकृति की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करके कवि उसे अधिक रमणीय और मनोज्ञ बना देता है। प्यास के लिए व्याकुल सैनिकों की मानसिक दशा के बीच जल प्राप्ति का संकेत मिलते ही मानस-दशा का यह शब्द-चित्र यहाँ उल्लेखनीय है :-

" विस्तृत तरु-शाखाओं के ही बीच में
छोटी-सी सरिता थी, जल भी स्वच्छ था ;
कल-कल ध्वनि भी निकल रही संगीत-सी
व्याकुल को आश्वासन-सा देती हुई। "[2]

---

१ महाराणा का महत्त्व, पृ० १-२

२ वही, पृ० ४

महाराणा का महत्त्व भावोत्कर्ष के दृष्टिकोण से पूर्ववर्ती कृतियों से बढ़ कर है। कवि ने अनेक स्थलों में युद्धोत्साह का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। यहां संक्षेप में एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

" यवन – चमू नायक भी कुछ कायर न था,
कहा – " मरेंगा करते ही कर्तव्य को –
वीर शस्त्र को दे कर भीख न मांगते। "

ooo ooo ooo

" यवन-वीर भी घूम पड़ा असि खींच के
गुथीं बिजलियां दो मानो रण-व्योम में
वर्षा होने लगी रक्त के बिन्दु की ;
युगल द्वितीया चन्द्र उदित अथवा हुए
धूलि-पटल को जलद-जाल-सा काट के। "[1]

परवर्ती रचनाओं में मुखर प्रसाद की प्रेम और सौन्दर्य की चेतना की प्रथम झलक इस कृति में भी लक्ष्य की जा सकती है। वे नारी-चरित्र के सिद्ध पारखी थे। नारी के मनोभावों को साकार करने में उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति को स्वीकार करना पड़ता है। खान खाना की बेगम के मनोभावों का चित्र प्रसाद के काव्य की भावोत्कृष्टता को प्रमाणित कर देता है –

" कंपी सुराही कर की , छलकी वारुणी
देख ललाई स्वच्छ मधुक कपोल में ;
खिसक गई उर से जरतारी ओढ़नी,
चका चौंध-सी लगी विमल आलोक की,
पुच्छमर्दिता वेणी भी थर्रा उठी।
आभूषण भी झनन-झनन कर बस रह गये। "[2]

---

१ महाराणा का महत्त्व, पृ० ६ (२) वही, पृ० १२

इसी प्रकार अकबर और खान खाना के वार्तालाप में, मनोभावों के चित्रण में प्रसाद जी अत्यंत सफल कहे जा सकते हैं।[1]

चित्राधार :

चित्राधार में संकलित रचनाओं की विषयगत विविधता को पूर्ववर्ती अध्याय के अंतर्गत लक्ष्य किया जा चुका है। इन रचनाओं का बहुत बड़ा भाग परंपरागत प्रभावों से युक्त, इतिवृत्तात्मक अथवा वर्णनात्मक है। डा॰ गणेश खरे के शब्दों में " इसका महत्त्व प्रसाद जी के काव्य-विकास के सूत्रों की सन्निहिति अथवा उनके प्रौढ़ काव्य-चित्रों को मूलाधार भित्ति-रूप में ही निहित है और इसी दृष्टि से इस कृति का नामकरण भी सार्थक है।[2] आरम्भ की उर्वशी, बभ्रुवाहन, अयोध्या का उद्धार, वन-मिलन तथा प्रेमराज्य जैसी कविताओं की सामग्री पौराणिक या ऐतिहासिक है और ये विवरण-प्रधान ही है। " मकरंद-विन्दु " के अंतर्गत संकलित कवित्त, सवैये और पद मध्यकालीन काव्य-शैली का अनुगमन करते हैं। इनमें कुछ तो समस्या पूर्ति के लिए लिखे गये जान पड़ते हैं और उनमें अभिव्यक्ति शिल्प को देखा जा सकता है जो कि हमारे परवर्ती अनुशीलन का विषय है। ऐसी रचनाओं में कहीं कहीं भावाभिव्यक्ति की यत्किंचित छटा देखने को मिल जाती है। उदाहरण स्वरूप गोपी विरह की ये पंक्तियां यहां उल्लेखनीय हैं:-

" प्रेम की प्रतीति उर उपजी सुभाइ सुख ;
जान्यो न भूलि याहि छलना अनंग की ।।
खैंचि मनमोहन ले काट-पेंच कौन करै,
चली अब ढीली बाढ़, प्रेम के पतंग की ।। "[3]

---

१ महाराणा का महत्त्व, पृ॰ २१ से २४

२ डा॰ गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ॰ २८

३ चित्राधार, पृ॰ १८३ (तृतीय संस्करण)

(६) झरना :

भावपक्ष के दृष्टिकोण से " झरना " के गीत प्रसाद जी के कवि व्यक्तित्व के नये मोड़ के द्योतक है। गीतों की दृष्टि से " झरना " एक प्रयोगशाला है, भावना की गहराई में कवि जाने लगा है। उसे प्रेरणा का एक ऐसा स्रोत प्राप्त हो गया, जो कभी शुष्क नहीं हो सकता। धीरे धीरे कवि आत्माभिव्यक्ति की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार झरना में सुन्दर गीति काव्य की आशा दिखाई देने लगती है। इन छोटे छोटे गीतों में व्यक्तिवाद को व्यापक बनाने का प्रयत्न है। उसने प्रकृति और मानव का भेद समाप्त कर दिया है। प्रकृति के प्रत्येक क्रिया व्यापार में परमसत्ता की छाया दिखाई देने लगती है। कवि जीवन के प्रति एक उदात्त भावना बना लेता है। उस पर अद्वैत बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। झरना के कवि ने एक नवीन दिशा ग्रहण की है। " झरना " का प्रेम अधिक स्वाभाविक, सजीव और मांसल है। मंदाकिनी की भाँति उछलती कुदती इन भावनाओं में गति है, जीवन है, आवेग है, किन्तु लक्ष्य का आभास नहीं मिलता। स्वयं कवि के हृदय में अनेक शंकाएं उठ रही है जिनका समाधान नहीं हुआ। "झरना " में निर्झर की सी स्वच्छन्दता है, जो जीवन से अनुप्राणित है। परिष्कृत कल्पना, सुन्दर उपमा, सरस भावना उसमें आभासित है।[1]

" झरना " प्रतीकार्थ नाम है। उसमें आशय प्रेमानुभूतियों के अनवरत प्रवाह से है। इसी शीर्षक (झरना) रचना से भी यह प्रतीकार्थ स्पष्ट हो जाता है। इसमें प्रेमपरक रचनाओं की संख्या सर्वाधिक हैं। इसके बाद प्रकृतिमूलक रचनाएं आती है। कुछ प्रगीत विनयमूलक हैं।

प्रेम संबंधी रचनाओं में कवि की विरहानुभूतियों की स्वच्छन्द और मार्मिक अभिव्यक्ति है। उनमें प्रेम की एकनिष्ठता, तीव्रता, गहनता और स्वाभाविकता विद्यमान है।

१ डा० प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य, पृ० २३१

" झरना " में १५ के लगभग कविताएं प्रकृतिपरक हैं , इनमें प्रकृति का चित्रण आलंबन, उद्दीपन, पृष्ठभूमि, मानवीकरण, रहस्यमूलक उद्देश्यात्मक और अन्योक्ति के रूप में किया गया है । आलम्बनगत चित्रों में किसी न किसी रूप में उद्दीपन के तत्त्व भी आ गये हैं । मानवीकरण की प्रवृत्ति भी सर्वत्र उपलब्ध होती है । प्रसादजी प्रेमाकुल भावनाओं से रंजित होने के कारण ये प्रगीत अत्यन्त सजीव और प्रभाविक रूप में प्रस्तुत हुए हैं । कवि प्राकृतिक सौंदर्य का भावपूर्ण अन्वेता है । पंक्तियां [१] दृष्टव्य है :-

" एक से एक मनोहर दृश्य, प्रकृति की क्रीडा के सब छंद पुष्टि में सब कुछ है। अभिराम, सभी में है उन्मत्तियां हास बना लो अपना हृदय प्रशान्त, तनिक तब देखो वह सौन्दर्य चन्द्रिका से उज्ज्वल आलोक मल्लिका-सा मोहन मृदुहास ।"

प्रकृति सौन्दर्य के विषय में प्रसाद जी की व्यापक एवं सहानुभूतिमयी विचारधारा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । कवि प्राकृतिक सौन्दर्य में सरलता, दिव्यता तथा शालीनता निहारता है । प्रसाद जी के समस्त प्रकृति प्रगीत भाव देदीप्त है । इनमें विमुग्धता कम, तन्मयता, अधिक है । कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ तन्मयता प्राप्त करता है । उसके स हर्ष के साथ पुलकित होती है, वेदना में अनुविगलित भावों को सुकोमल पृष्ठभूमि प्रदान करती है और अभिव्यक्ति को प्रतीकात्मकता ।[२]

कवि की नियति में परम प्रीति और प्रतीति है । वह उसे विराट शक्ति भूमा के रूप में मानता है । कवि घोर पुरुषार्थी होते हुए भी नियति की महानसत्ता का परम पुजारी है । कवि की भक्तिपरक और रहस्यपरक रचनाओं पर रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि का प्रभाव लक्षित होता है । कवि के चिन्मय और

---

१ प्रसाद, " झरना ", हृदय का सौन्दर्य, पृ०

२ डा० खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० १०२

दार्शनिक प्रगीतों में छायावादी शैली की विशेषताएं मिलती है ।

कवि में सूक्ष्म भावों को मानवीय रूप में प्रस्तुत करने की पूर्ण क्षमता है ।

इन रचनाओं में उन भावनाओं का आकलन हुआ है, जिन भावनाओं को प्रेम की संज्ञा दी जाती है । मांसल सौन्दर्य से जब भी प्रेमवृत्ति का योग होता है तब नाना प्रकार के मनोभाव क्षण क्षण परिवर्तित हो, मानस में जीवन पाते हैं । किन्तु हृदय से उनका लगाव इतना तीव्र होता है कि कवि की वाणी उससे मुखरित हो उठती है । " झरना " में संकलित रचनाएं उस समय की है जब " प्रसाद " मांसल सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हुए । यह रस बरबस एक बार जीवन में सब को अपनी ओर आकर्षित करता है ।[1]

उस समय जो जितना अधिक रस मानस पात्र में भर पाता है उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक रसमय हो पाती है । प्रेम की तीव्रता के कारण हृदय में उभरे हुए भावों का तीव्र और भावस्पर्शी वर्णन प्रेम परक कविताओं में मिलते हैं । प्रेम के ये सामान्य बाह्य उपकरण है ।

उपेक्षा, मिलना, वेदना की तीव्रता, प्यास लगना, निवेदन करना, अनुनय विनय, समझाना, बुझाना, विषाद, करुणा, प्रतीक्षा, अव्यवस्थितता, स्वप्नलोक बसाना, ये सब उपकरण प्रेमपरक प्रगीतों में उपलब्ध हैं ।

प्रिय आत्म-समर्पण करने पर भी प्रियतम न तो आदेश देता है और न प्रेमी को सत्कारता है । इतनी घोर उपेक्षा भी प्रिय को सहन करनी पड़ती है और इसी समय व्यक्ति का हृदय कसौटी पर कसा जाता है । प्रसाद जी ने अपने जीवन के अनुभव से " झरना " के प्रगीतों की रचना की है । उसमें भावाभिव्यक्ति के साथ आत्माभिव्यक्ति भी लक्षित होती है ।

---

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० १०९–११०

कवि ने प्रेम को प्राकृतिक धर्म के रूप में सदैव से पूजित, प्रतिष्ठित और स्वयंभू माना है। उसकी अभिव्यक्ति स्वस्थ रूप में होती है। कवि के "झरना" के प्रेमपरक प्रगीतों में उपरोक्त विभिन्न मनोभावों की अभिव्यक्ति है जिनमें कहीं कवि का भावुक हृदय अत्यन्त सरल रूप से सादगी में साफ प्रकट हुआ है, कहीं मर्म की वाणी उपेक्षा की मार से कराह उठी है, कहीं अनुनय है, कहीं विनय है। अतएव इन रचनाओं को जीवन के प्रकृत-धर्म पर ही आधृत मानना चाहिये।[1]

इन कविताओं में जहां तक भावना का प्रश्न है इनमें प्रेम संबंधी अनेक-विध की भावनाएं तो है ही, साथ ही प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन एवं आकुल हृदय की प्रार्थनाएं भी हैं। कुछ भाव चित्र भी है -

" हृदय गुफा भी शून्य, रहा घर सूना,
इसे बसाऊं शीघ्र, बढ़ा मन दूना,
जिसे चाह लूं, उसे न कर आंखों से कुछ भी दूर,
मिला रहे मन मन से, छाती छाती से भरपूर,
तुम्हारा शीतल सुख परिरम्भ,
मिलेगा न मुझे कहीं,
विश्व भर का भी हो व्यवधान
आज वह बात बराबर नहीं "[2]

प्रेम में प्रेमी बिलकुल ऐसी बातों कह जाता है जो एक अबोध मन के स्नेह-उद्गार की भांति है। कभी कभी वह उलाहना भी दे उठता है। यथा -

" किसी पर मरना, यही तो दुःख है,
उपेक्षा करना, मुझे भी सुख है
यही है प्रार्थना हमारी "[3]

---

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० ११०
२ प्रसाद-झरना, पृ० ६१
३ वही, पृ० ८६

मांसल भावों की तीव्रता यत्रतत्र बतलाई है यथा –

" डरो नहीं, जो तुमको मेरा उपालम्भ सुनना होगा ।
केवल एक तुम्हारा चुम्बन इस मुख को चुपकर देगा । " [1]

प्रेम की मादकता तीव्रता, आत्मसमर्पण तितिक्षा, आदि भाव भी बतलाये है :-

" औरे के प्रति प्रेम तुम्हारा, इसका मुझ को दुःख नहीं,
जिसके तुम हो एक सहारा वही न भूला जाय कहीं,
निर्दय होकर अपने प्रति, अपने को तुमको सौंप दिया,
प्रेम नहीं, करुणा करने को क्षणभर तुमने समय दिया,
अब से भी तो अच्छा है अब और न मुझे करो बदनाम,
क्रीडा तो हो चुकी तुम्हारी, मेरा क्या होता है काम,
स्मृति को लिए हुए अन्तर में, जीवन कर देंगे निःशेष,
छोड़ो अब दिखलाओ मत, मिल जानेका यह लोभ विशेष,
कुछ भी मत दो अपना ही जो मुझे बना लो यही करो,
रक्खा जब तक आंखों में फिर और ढार पर नहीं ढरो,
कोर बरौनी का न लगे हां, इस कोमल मन को मेरे,
पुतली बनकर रहे चमकते प्रियतम । हम दृग में तेरे । " [2]

कवि ने प्रियतमा के रूप का वर्णन भी एक कलाकार की भांति किया है । तथा कवि आशा और विश्वास से कहीं भी विरत नहीं हुआ है । यह उसके पौरुष का परिचायक है । इसके साथ ही प्रकृति से संबंधित कुछ रचनाएं भी इसमें संकलित है जिनमें प्रकृति का मानवीकरण लिया गया है । सौन्दर्य-प्रदर्शन उन रचनाओं के मूल में है । कुछ मनोभावों के सुन्दर चित्र भी है, यथा विषाद इन मनोभावों के

ooooooooooooooooo

१ प्रसाद, झरना, पृ० ४६

२ प्रसाद, झरना, पृ० ४४

चित्रों में गंभीर तथ्य की काव्यात्मक मूर्तिमयी वाणी है। प्रसाद जी की रचनाएं जहां प्रणय संबंधी भावनाओं के समस्त पुरुषोचित मनोभावों की सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति करती है वहीं छायावाद और रहस्यवाद के बीज भी इनमें दीखते हैं। प्रकृति चित्रण के प्रगीत बड़े सजीव और मदभरे हैं।[1] इस प्रकार झरना प्रसाद की रचनाओं में विकास की नयी दिशा का संकेत देता है, जिसमें प्रकृति, प्रणय, स्नेह, और छायावादी रचनाओं का संकलन है।

जहां एक ओर भावों की सहज प्रांजल अभिव्यक्ति है वहां रहस्य भावना का हल्का-सा आवरण भी है। युवा कवि की आवेगमयी भाव व्यंजना सहृदय को तुरंत प्रभावित कर लेती है। इन कविताओं का प्रधान विषय " प्रेम " है। संयोगकालीन मधुर-मादक दशाओं के वर्णन के साथ साथ विरहाकुल अंतर की मार्मिक अनुनय भावना का प्रकाशन भी है। इन कविताओं में छायावादी काव्य का हृदयस्पर्शी प्रतिबिंब है। आलोचकों ने " झरना " को छायावादी कविता का प्रथम संग्रह माना है। इस बात से काव्य विकास में इस कृति का महत्त्व सिद्ध है।[2]

(७) आंसू :

आंसू खण्ड काव्य है किन्तु भावपक्ष की दृष्टि से विरह काव्य है। इसमें भावनाओं का उद्वेग और विरह पीडा का मुक्त क्रंदन है, वह अपने प्रिय की स्मृति में सिसकता है और घनीभूत रूप से अनुपात करता है, उपालंभ देता है, अनुनय करता है तो और फिर भी उनकी प्राप्ति न होने पर आंसू बहाता है। वेदना के साम्राज्य में वह किंचित क्षणों को अपने प्रिय का विस्मरण कर गया है। वह पीडा और वेदना को भोगता है और आंसू बहाता है। इसमें कवि अपने

१ सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० ११४-११७

२ डा० सुरेन्द्रनाथ सिन्हा, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १२

" करुणा-कलित हृदय में " झंकृत होनेवाली " विकल रागिनी " को प्रस्तुत करता है । इस तरह इसका भाव-पक्ष एक-उत्कृष्ट प्रगीत काव्य की गरिमा से युक्त है । आंसू की वस्तु योजना विप्रलम्भ शृंगार से आरंभ होकर करुण रस की ओर अग्रसर हुई है ।

आंसू प्रसाद के अंतरतम का छाया-चित्र कहा जा सकता है और आरंभ के छंदों में उनका हृदय पक्ष प्रधान है । अन्त में बुद्धि आकर अपने चिन्तन से कथानक को मोड देती है । प्रसाद के मानसिक चित्रण में प्रकृति भी सहयोग देती है । आंसू में केवल साधारण प्रणय के ही दर्शन नहीं होते, किन्तु उसमें एक गहन अनुभूति भी है । कवि वेदना सागर का मन्थन कर रत्न निकालने का प्रयत्न करता है । इसमें अन्तर का, बाह्य जगत् के साथ एक सामंजस्य स्थापित हो जाता है जो साधारणीकरण में सहायक होता है । " आंसू " इस दृष्टि से एक सफल कृति है । उसका कवि एक ऐसे स्वस्थ और विस्तृत रंगमंच पर खडा है । जहां से उसका मानवतावाद स्पष्ट दिखाई देने लगता है । आंसू के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत :[1]

" आंसू " की उक्तियों के भीतर वही ही रंजनकारिणी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बडा ही अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यंत सुकुमार योजना मिलती है । अभिव्यंजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम वेदना का दिव्य विभूति का, विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का सुख और दुःख दोनों को अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौन्दर्य और मंगल के संगम का भी आभास पाया जाता है । नियतिवाद और विषण्णवाद का स्वर भी सुनाई पडता है ।[2]

---

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० १६६

२ आ० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४८, ६४९

श्री इलाचन्द्र जोशी के शब्दों में प्रसाद जी की आंसुओं की पंक्तियों ने हिन्दी जगत् को प्रथम बार उस वेदनावाद की मादकता से विभोर किया जिससे बाद में सारा छायावादी युग-मतवाला हो उठा था। वेदना की भयंकर बाढ में सारे युग को परिप्लावित कर देने की जैसी क्षमता " प्रसाद " जी के इन आंसुओंमें रही है, वह हमारे साहित्य के इतिहास में वास्तव में अतुलनीय है।

आंसू काव्य की दो प्रमुख उपलब्धियां हैं :-

(१) सौन्दर्य चित्रण (२) विरहावस्थाओं की मार्मिक एवं जीवंत अभिव्यंजना

(१) सौन्दर्य चित्रण :

प्रिय के प्रथम दर्शन पर कवि को जो अनुभूति हुई उसका चित्रात्मक वर्णन पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" मधु राका मुस्क्याती थी, पहले देखा जब तुमको,
परिचय से जाने कब के, तुम लगे उसी क्षण हमको,[1]

उसका प्रिय उसके जीवन की गोधूली में एक कौतूहल-सा प्रकट हुआ उसकी छवि कवि जीवन में उसी प्रकार बस गई जैसे बादलों में सुन्दर बिजली, बिजली में चपल, चमक, आंखों में काली पुतली में श्याम पलक बसी रहती है। उसकी सुन्दरता की रूपरेखा एक विशिष्ट ही थी जिसे लाखों में भी सरलता से पहिचाना जा सकता था।

आगे कवि ने उसका शिख-नख-वर्णन भी किया है। उसे आश्चर्य है कि किसने विधुको काली काली जंजीरों से जकड दिया है और मणिवाले फणियों का मुख हीरों से क्यों भरा हुआ है।

कवि ने नायिका की मांग में हीरे की बिंदिया या आभूषण का भी चित्रोपम वर्णन किया है। उसकी काली आंखों में यौवन के मद की लाली ऐसी

१ आंसू, पृ० १७

दिखाई देती है जैसे किसी ने नीलम की प्याली को माणिक्य-मदिरा से भर दिया है। आगे वह इसी संदर्भ में आंख की पुतली को " नीलम की नाव " कहता है जो रूप सौन्दर्य एवं यौवन सुलभ अतृप्त कामनाओं के सागर में तिर रही है।[1] नेत्रों में लगे अंजन की उपमा- कवि पानी वेला से देता है जिस प्रकार एक बार काले पानी के तट पर पहुंच कर मनुष्य फिर वापिस नहीं आ सकता उसी प्रकार जिसने प्रिय के नेत्र में लगी संमोहक अंजन रेखा को देख लिया फिर वह अपनी चेतना वापिस नहीं पा सकता। ये पंक्तियां सौन्दर्य चित्रण को प्रभावशाली बनाने में अत्यंत सार्थक है। कवि ने प्रिय के बंकिम कटाक्षों का भी वर्णन किया है। वे न जाने कितने मनुष्यों को सहसा ही घायल करने में सक्षम है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" काली आंखों में किसनी यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली "[2]
" प्रतिमा में सजीवता की बस गई सुछवि आंखों में
थी एक लकीर हृदय में जो अलग रही लाखों में "[3]

प्रिय स्मृति का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है कि यद्यपि कोमल कपोलों के बीच उसकी हंसी बहुत ही सीधी-सादी दिखाई देती है किन्तु उसकी कुटिलता वही समझ सकता है जिसने उसके कटाक्षों का विलोकन किया हो। फिर मोतियों सी दंतावली और शुक-नासिका का एक परंपरागत वैचित्र्यपूर्ण संयोग प्रस्तुत किया गया है।

कोमल कपोल पाली में, सीधी सादी स्मित रेखा,
जानेगा वही कुटिलता जिसने मौं में बल देखा,
विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे ?[4]

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० ११९
२ प्रसाद, आंसू, पृ० २१
३ वही, पृ० ३०
४ वही, पृ० ३१

है हंस न, शुक यह, फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे ?

नायिका की उल्लासमयी हंसी का भी एक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि कहता है कि मधु ऊषा के अंक में विकसित यह वैभव भी अपना उपहास करायेगा यदि वह उसकी हंसी को एक क्षण भी देख लें। उभय कानों का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्हें दो पुरइन के पात कहा गया है। उसके तन्वंगी शरीर के चित्रण के प्रसंग में कवि ने उसे अनंग के धनु की शिथिल शिंजिनी और बाहुलताओं को तनु छवि सर की नवीन लहरियां कहा है। नायिका के शरीर की उज्ज्वलता और पावनता का भी वर्णन किया है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" विकसित सरसिज वन वैभव मधु ऊषा के अंक में,
उपहास करावे अपना जो हंसी देख ले पलमें,
मुख-कमल समीप सजे थे हो किसलय से पुरइन के,
जल बिन्दु सदृश ठहरे कब उन कानों में दुःख बिन के,
थी किस अनंग के धनु की वह शिथिल शिंजिनी दुहरी,
अलबेली बाहुलता या तनु छवि-सर की नव लहरी ?
चंचला स्नान कर आवे चंद्रिका पर्व में जैसी ;
उस पावन तनकी शोभा आलोक मधुर थी ऐसी, "[1]

प्रसाद जी का यह रूप सौन्दर्य चित्रण निश्चित ही हिन्दी जगत् में अनूठा है।

(२) बिरहावरणा :

आंसू कवि हृदय का पुंजीभूत हाहाकार है। इसमें वियोग की दसों काम दशाओं - अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण, कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृत्यु का सम्यक् ढंग से विनियोग मिलता है। कवि की वेदना

1 प्रसाद-आंसू, पृ० २३-२४

अपने प्रकर्ष पर जीवन चेतना रूप में परिवर्तित हो जाती है। डा० प्रेमशंकर जी के शब्दों में " हिन्दी जीवन साहित्य में वेदना की परंपरा अनादि है पर उसमें जीवन दर्शन का यह विनियोग प्रसाद जी की ही देन है। [1]

विरह दशाओं का वर्णन - असौष्ठव - पंक्तियां -

" बुलबुले सिंधु के फूटे, नक्षत्र मालिका टूटी।
नभ मुक्त कुंतला धरणी दिखलाई देती लूटी। " (पृ० १०)

इस छंद में अंगों की मलिनता स्पष्ट की गई है जिसे असौष्ठव कहते हैं।

संताप : पंक्तियां -

" छिल छिल कर छाले फोड़े
मल मल कर मृदुल चरण से
धुल धुल कर बह रहे नाले
आंसू करुणा के कण से " (पृ० ११)

इसमें विरह ज्वर की तीव्रता वर्तमान है जिसे संताप कहते हैं।

अधृति : पंक्तियां -

" अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना, " (पृ० ११)

इसमें कहीं भी जी न लगने का भाव स्पष्ट है, इसे अधृति कहते हैं।

अरुचि : पंक्तियां -

" सुख आहत शांत उमंगे, बेगार सांस ढोने में,
यह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कोने में, " (पृ० १२)

---

[1] डा० प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य - आंसू

इसमें अरुचि या अनिच्छा वर्तमान है ।

स्मरण : पंक्तियाँ -

" ये सब स्फुलिंग है मेरी, इस ज्वालामुखी जलन के,
कुछ शेष चिह्न है केवल, मेरे उस महा मिलन के, " (पृ० ९)
प्यासी मछली-सी आँखें थीं विकल रूप के जल में,
मादक थी मौहमयी थी मन बहलाने की क्रीडा, (पृ० १०)
गौरव था नीचे आये, प्रियतम मिलने को मेरे,
मधुराका मुस्काती थी पहले देखा जब तुमको, (पृ० १७)

उपर्युक्त सभी पंक्तियाँ में स्मरण का अच्छा स्वरूप देखा जा सकता है । वैसे तो आँसू स्मृति काव्य ही है ।

गुण-कथन : पंक्तियाँ -

" चंचला स्नान कर आवे, चंद्रिका पर्व में जैसी ।
उस पावन तन की शोभा, आलोक मधुर थी ऐसी । "(पृ० २४)

यहाँ पर प्रिय सौन्दर्य के गुण कथन में विरहावस्था दृष्टव्य है ।

उद्वेग : पंक्तियाँ -

" रो रो कर सिसक सिसक कर कहता मैं करुण कहानी,
तुम सुमन नोचते फिरते, करते जानी अनजानी, " (पृ० १५)

यहाँ " सुमन नोचने " अर्थात् रिझाने की स्थिति से उद्वेगावस्था का अच्छा चित्रण किया है ।

विस्मृति और मूर्छा : पंक्तियाँ -

" विस्मृति है, मादकता है, मूर्छना भरी है मन में,
कल्पना रही, सपना था, मुरली बजती निर्जन में, " (पृ० २१)

व्याकुलता :

प्रिय वियोग की व्याकुलता में कवि बिलख रहा है और उसके आगमन की प्रतीक्षा में तारे गिन गिन कर रातें व्यतीत करता है, पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।

" मधुमालतियाँ सोती हैं, कोमल उपधान सहारे,
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर, गिनता अंबर के तारे, " (पृ० १६)

वह प्रिय की निर्ममता के कारण उसे उपालंभ भी देता है

" निष्ठुर। यह क्या छिप जाना, मेरा भी कोई होगा।
प्रत्याशा विरह-निशा की, हम होंगे औ' दुःख होगा। "(पृ० २६)

अनुनय : उपालंभ में अनुनय के स्वर भी मिलते हैं।

" यदि दो घड़ियों का जीवन, कोमल वृन्तों में बीते,
कुछ हानि तुम्हारी है क्या चुपचाप चू पड़े जीते, " (पृ० ४५)

निरवलंबता : वियोग में निरवलंबता की स्थिति भी आती है।

" अवकाश शून्य फैला है है शक्ति और न सहारा।
अपदार्थ तिरंगा मैं क्या, हो भी कुछ कूल किनारा। "[1] (पृ० ४१)

तन्मयता : छायानट छवि परदे में, संमोहन-बेणु बजाता,
संध्या कुहिकिनी आँचल में, कौतुक अपना कर जाता, (पृ० २२)

यहाँ पर कवि अपने प्रिय को तन्मयता के कारण समस्त प्रकृति में देखता है।

विरह में आत्मनिष्ठा और विश्वास के तत्त्वों के योग ने उसे सर्वथा नया रूप प्रदान कर दिया है।

---

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० १२१-२२

" इस शिथिल आह से खिंचकर तुम आओगे आओगे " (पृ० ५२)

" चमकूंगा धूल-कणों में सौरभ हो उड़ जाऊंगा । " (पृ० ४१)

आगे चल कर कवि सुख दुःख को आंख और मन का खेल मानने लगता है और दोनों से तटस्थ होने का प्रयत्न करता है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" हो उदासीन दोनों से, सुख दुःख से मेल करायें,

कवि क्रम क्रम से समरसता की ओर अग्रसर है -

वह हंसी और यह आंसू ।
घुलने दे मिल जाने दे ।
बरसात नयी होने दे ।
कलियों को खिल जाने दे । (पृ० ५०)

अपनी चरमावस्था पर वेदना उदात्त रूप धारण कर लेती है ।

इस व्यथित विश्व पतझड़ की, तुम जलती हो मृदु होली
हे अरुणे सदा सुहागिन, मानवता सिर की रोली, (पृ० ६१)

और अंत में कवि अपने आंसुओं को संबोधित करते हुए कहता है :

" सबका निचोड़, लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में,
बरसो प्रभात हिमकन-सा-आंसू इस विश्व सदन में,"(पृ० ७५)

इस तरह आंसू में विरह की अवस्थाओं का विकास वस्तुतः कवि के व्यक्तित्व का विकास है । इसमें निराशा नहीं, प्रवृत्ति मुखी जीवन-दर्शन का पल्लवन है ।[1]

<u>वेदना दर्शन</u> : वेदना दर्शन कवि के सच्चे जीवन के जागरण में अंतर्निहित है । <u>पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-</u>

---

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० १२२-२३

" वेदना मधुर हो जावे, मेरी निर्दय तन्मयता,
मिल जावे आज हृदय को, पाऊं मैं भी सहृदयता ।"(पृ० ९९)
मेरी अनामिका संगिनी, सुन्दर कठोर कोमल से,
हम दोनों रहे सखा ही, जीवन पथ चलते चलते । (पृ० ९९)

वेदना का यह चिर संगिनी रूप में वरण और उससे जीवन के माधुर्य की प्राप्ति की आकांक्षा मानवीय जीवन जागृति का महत्त्वपूर्ण लक्षण है ।

कवि अपनी वेदना रानी को संबोधित करके उसे जीवन जगत के चिर वंचित भूखे, उपकरणों को दिखाता है और उससे अपने जीवन का सर्वस्व निचोड़ लेकर इस विश्व सदन पर बरसने का अनुरोध भी करता है । यह मानवीय जीवन का ही उज्ज्वल और पावनतम रूप है ।

नियतिवाद :

प्रसाद जी नियति को पूर्व जन्म के कर्मों का प्रारब्ध मानते हैं । उनकी दृष्टि में कर्मफल नियत होने से ही मनुष्य नियति का दास है । परन्नियतिवादी होने से वे कर्म के त्याग नहीं प्रत्युत उसके ग्रहण पर सर्वाधिक बल देते हैं । आंसू में कवि कहता है कि जब हृदय से वेदना का रंग छुटाने पर भी नहीं छुटता, तब इसका उपचार यही है कि उसे अपनी नियति पर छोड़ दिया जाय । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

" अब छूटता नहीं छुटाये रंग गया हृदय है ऐसा,
आंसू से धुला निखरता यह रंग अनोखा वैसा, "(पृ० १७)

यह कवि की पहली काव्य रचना है जिसने बहुत से सहृदयों को अपनी ओर आकृष्ट किया । प्रणयाकुल अंतर की रमणीय विवृत्ति की दृष्टि से यह हिन्दी की बेजोड़ रचना है । मन में जैसे जैसे भावनाएं उठती गयी है कवि उनका निबंधन करता चला

गया है। क्रमिक संयोजन न होते हुए भी द्रवीभूत करने वाली मार्मिकता है। इसमें भावानुभूतियों का क्रमिक संयोजन है। विरहाकुल अंतर की कसकती वेदना, प्रियतमा का मनोरम रूपांकन एवं संयोग कालीन मादक मधुर स्मृतियां, कातर अंतर की अनुनय भरी पुकार और उसके साथ ही प्रियपात्र के अनुकूल हो जाने का विश्वास सभी कुछ है। कवि ने अपनी व्यक्तिगत वेदना को उदात्तीकृत रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो करुणाप्लावित होकर विश्व सदन में आशामय-जीवन का संचार कर सके। इस कृति में ऐन्द्रिय अनुभूतियों का गहरा भावभीना अंकन हुआ है। इसमें कल्पना का अनंत वैभव है।[1]

(८) लहर :

लहर प्रसाद की रसमय गीत सृष्टि है। इसकी विषय वस्तु का निरूपण तृतीय अध्याय में किया जा चुका है। इसके भावपक्ष पर विचार करने से पूर्व विद्वान आलोचकों की एतद्विषयक मान्यताओं का संक्षिप्त अनुशीलन यहां आवश्यक है।

नन्द दुलारे वाजपेयी - " नया साहित्य नये प्रश्न "

लहर में अधिक परिष्कृत सौन्दर्य-चित्रण और संयमित भावना धारा है। इसी लहर में " बीती विभावरी जागरी " शीर्षक वह जागरण का गीत है जो कदाचित् प्रसाद जी का सम्पूर्ण काव्य प्रयास के साथ उनकी युग चेतना का परिचायक प्रतिनिधि गीत कहा जा सकता है।

डा० प्रेमशंकर प्रसाद का काव्य :

" झरना " यदि सृष्टि का प्रयोग है तो " लहर " उसका उत्कर्ष भावना प्रसार की दृष्टि से भी परिणति द्वितीय में दिखाई देती है। " लहर "

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १२-१३

की अधिकांश रचनाओं में एक जीवन दर्शन का नियोजन है। कवि बीती विभावरी को जागते हुए देखता है वह जीवन के प्रभात का जागरण लाने के लिये उद्बोधन गीत गाता है। अतीत की प्रेरणा आज उसके जीवन का पाथेय बन गई है। अपने सजीव चित्रों में प्रसाद के गीत सर्वोपरी है। प्रेम और सौन्दर्य के साथ ही ऐतिहासिक घटनाओं के द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन कवि ने किया है।

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि " लहर " के गीत युगीन-चेतना तथा कवि की परिष्कृत सौन्दर्य चेतना का साक्ष्य उपस्थित करते हैं। इनकी दूसरी विशेषता व्यापक भाव-भूमि की है। आत्मपरक गीतों में सर्व प्रथम कवि की आत्म-कथा की ओर बरबस ध्यान खींच जाता है। यह गीत इस बात का साक्षी है। कवि औरों को सुनना चाहता है पर विगत जीवन की स्मृति अब भी उसके गीतों की प्रेरणा है। साथ ही कवि संकेत सूत्रों में यह भी संदेश देता है कि अभी आत्म-कथा कहने का समय नहीं आया है क्योंकि अभी उनके प्रयत्न की पूर्णता हृदय की कामना के अनुसार अपनी सृष्टि-रचना नहीं कर पायी है। यह जिज्ञासावृत्ति सतत् गतिशील चेतन के मंगल विकास का मणिदीप है। उसके मोलेपन की हंसी बराबर उड़ाई गई। लेकिन वह तटस्थ रहा। उसने दूसरों की प्रवंचना नहीं की। यह एक सच्चे साहित्यकार की बहुत बड़ी विशेषता है।[1] आत्मपरक गीतों में से " ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक। धीरे धीरे "[2] इस गीत के आधार पर कुछ लोग प्रसाद जी को पलायनवादी कहते हैं। लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि कवि इस गीत में समरसता के सिद्धांत का संकेत करता है। दुःख सुख के नग-सत्य द्वारा अमर जागरण का नव संदेश कवि देता है।[3]

अपने आत्मपरक गीतों में डूबा कवि आंख खोल कर विश्व के सुख-दुःख

---

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० २००

२ प्रसाद, लहर, पृ० १४

३ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० २००

से अपने हृदय का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये मचलता दीख पड़ता है। इस तीव्र भावोद्रेक के कारण प्रसाद की काव्य-माधुर्य खिलता है जो दो रूपों में प्रस्फुटित है, एक तो लोकपरक है और दूसरा अपने में अलौकिक हो गया है। इस अलौकिकता के मूल में लौकिक प्रेम का अपूतदर्शन या रहस्यवाद है। लोकपरक कविताओं में करुणा एवं चेतना के वे गीत है जिनका संबंध अतीत के व्यक्तित्व और कृतित्व से है जो लोकमंगल के लिए विभूतिमय है।

मानव जीवन को नये रूप में कवि देखता है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

" आलस-निराशा में हलचल, वेदना और सुख में विह्वल,
यह क्या है रे मानवजीवन, कितना है रहा निखर। "[1]

मानव के निखरे जीवन की ओर कवि का ध्यान जाता है तथा वह सुख और दुःख की विह्वलता का अनुमान लगाता है। मानव के इस प्रेम ने उसके आत्मपरक व्यक्तित्व को विराट मानव सत्ता के शुभचिन्तन के रूप में प्रस्फुटित किया है।

कवि ने अशोक की चिन्ता काव्य के माध्यम से युद्ध के दुष्परिणाम और जय पराजय का कुढंग छोड़ने के लिये कहा है। इसमें " विजयिनी मानवता हो जाये " की भूमिका बंधी है। इसमें अशोक का अन्तर्द्वन्द्व अत्यंत सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कवि का भाव-पक्ष करुणा की भावना तथा ऐतिहासिक चिन्तन से उभर कर प्रस्फुटित हुआ है।

शेरसिंह का शस्त्र समर्पण और पेशोला की प्रतिध्वनि में राष्ट्रीय भावना का दृढ़ मूल्यांकन किया गया है। इन काव्यों का सन्देश राष्ट्रीय होते हुए भी मानवता का विरोधी नहीं है। यह कवि की चरम सफलता है। दूसरी बहुत बड़ी सफलता यह है कि कवि का यह सन्देश युग-युगीन है। सनातन है कालातीत

ooooooooooooooo

1 प्रसाद, लहर, पृ० २०

है प्रलय की छाया काव्य में अंतर्द्वन्द्व और मनोवैज्ञानिक विशेषताएं लक्षित होती है। स्मरणीय रूप और अनंत यौवन की पल-पल परिवर्तित भावनाओं को सुन्दर प्रतीकों के माध्यम से चित्रित करने का प्रयत्न, ऐतिहासिक कथा वस्तु के आधार पर कवि ने किया है। [1]

लहर में रहस्यवाद से सम्बद्ध अनेक गीत भी है। इन गीतों में अद्वैत सौन्दर्य की अभिव्यंजना वर्तमान है। अहं से इदं का समन्वय - रहस्यवाद की सर्वमान्य संस्थिति तो इनमें है ही। इन गीतों में कवि वेदना के आधार पर मिलन का साधन उपस्थित करता है। इन गीतों में प्रकृति प्रतीक विधान द्वारा अपरोक्ष सत्ता की एवं समरसता की स्थापना मिलेगी। भावनाओं, अनुभूतियों तथा अभिव्यक्ति की तादात्म्य स्थिति अनेक गीतों में समन्वित होकर साकार हुई है।[3] पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" तुम हो कौन और मैं क्या हूं इसमें क्या है धरा सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुम्बित मेरे क्षितिज उदार बनो।"[2]

यह पूरा प्रगीत रहस्यात्मक है। प्रसाद जी के प्रगीतों में सर्वाधिक संख्या प्रेम, यौवन और शृंगार मूलक रचनाओं की है। शृंगार में भी संयोग की अपेक्षा विप्रलंभ पक्ष अत्याधिक व्यंजित हुआ है। प्रकृति परक प्रगीतों के मूल में राग तत्त्व की प्रमुखता होने के कारण ये रचनायें भी शृंगार रस के अंतर्गत आ जाती है। प्रसाद जी के अधिकांश प्रकृति चित्र भाव वेष्टित है। भाव अधिकतर शृंगारपरक ही है। प्रसाद जी के काव्य में भक्ति और विनयपरक गीतों की भी पर्याप्त संख्या है। उनके ये प्रगीत एक श्रद्धालु कवि की भावनाओं की उपज है जिसमें एक परम शक्ति के प्रति आस्था, विश्वास, श्रद्धा और प्रेम की भावना है। प्रसाद की प्रेम भावना व्यष्टि परक ही नहीं अपितु समष्टि परक बन गई है। शृंगार के अतिरिक्त वीर रस

---

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० २०६
२ वही, पृ० २१०
३ प्रसाद, लहर, पृ० १०

की भी व्यंजना आपके राष्ट्रीय अभियान गीतों में दिखाई देती है । [1]

निष्कर्ष :

" लहर " में प्रसाद की काव्य चेतना का भावाप्लावित चिंतनमय रूप लक्षित होता है । कविताओं के विषय में मर्मस्पर्शिनी अन्विति के साथ साथ पर्याप्त विस्तार है । जहां एक ओर आवेगमय अंतर का सहज उछल है वहां उस ज्वार के उतर जाने पर अनुभव के रूप में प्राप्त स्मृति-संपृक्त प्रशांत वेदना भी है । आत्म-परक गीतों प्रगीतों में प्रेमपात्र की रमणीय चेष्टाओं के सहज पूर्ण चित्रण में, प्रेमी की वेदना-व्यथित मनोदशाओं एवं स्थितियों के सजीव वर्णन में कवि-कौशल देखते ही बनता है । दार्शनिक चेतना से अनुप्राणित कविताओं में रहस्यवादी संस्पर्श से अभिव्यक्ति में जिज्ञासा उत्पन्न कर देनेवाली भंगिमा आ गई है । गौतम बुद्ध विषयक कविताओं में मानवता का कवित्वमय मंगलघोष है । " अशोक की चिन्ता " में मनमोहक सांसारिक वैभव की निस्सारता एवं मानव-जीवन के उद्देश्य का निरूपण है । मुक्त छंद में विरचित अंतिम तीनों रचनाएं प्रतिपाद्य विषय की महत्ता एवं विलक्षण कला-वैभव के कारण अविस्मरणीय है । " लहर " में पायी जानेवाली भाव विचार की प्रौढता तथा प्रतिपादन शैली की समर्थता कवि " प्रसाद " को विशेष गुरुत्व प्रदान करती है । [2]

कामायनी :

" कामायनी " प्रसाद जी की अन्तिम ही नहीं अन्यतम कृति भी है । इसे आधुनिक हिन्दी कविता का श्रेष्ठ महाकाव्य कहा जा सकता है । आनन्दवर्द्धनाचार्य ने जो आवश्यक तत्त्व बतलाये हैं, वे किसी भी प्रबन्ध-कृति के

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० १४१

२ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १३

भावपक्ष के विचार से इस प्रकार है :-[1]

(१) विभाव, भाव, अनुभाव और संचारी भाव के औचित्य से सुन्दर ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथा-शरीर का निर्माण ।

(२) केवल शास्त्रीय-विधान के परिपालन के लिए नहीं, अपितु रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से संधि और संध्यंगों की रचना ।

(३) यथावसर रस के उद्दीपन तथा प्रकाशन की योजना और विश्रान्त होते हुए प्रधान रस का अनुसंधान ।

(४) अलंकारों के यथेष्ट की पूर्ण शक्ति होने पर भी रसानुरूप अलंकारों की योजना ।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि आचार्य आनन्दवर्द्धन प्रबन्धात्मकता के रसाभिव्यक्ति को अत्यन्त आवश्यक माना है । आचार्य शुक्ल ने भी प्रबन्ध काव्य के लिए मार्मिक स्थलों की पहचान पर बल देते हुए यह स्पष्ट किया है कि इसके अभाव में वह काव्य न हो कर इतिवृत्त-कथन मात्र रह जायगा । " कामायनी " के काव्य-रूप की चर्चा प्रसंगानुसार आगे की जायगी । यहाँ पर भावयोजना की दृष्टि से कवि की उपलब्धि का संक्षिप्त अनुशीलन अभिप्रेत है ।

भाव व्यंजना द्वारा रस-निबंधन किसी भी कृति की सफलता का द्योतक है, किन्तु इसके अतिरिक्त प्रबन्ध कृति में रसात्मक वर्णन भी भावोत्कर्ष में सहायक हुआ करते है, क्योंकि प्रत्येक भाव को सर्वत्र रस-दशा को पहुंचाना किसी सफल प्रबन्ध-कृति में सम्भव नहीं है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार[2] ये ऐसे विराम स्थल हैं जो मनुष्य की रागात्मक प्रकृति का उद्बोधन कर सकते हैं, उसके हृदय को भाव-मग्न कर सकते हैं तथा उनके परिणामस्वरूप सारे प्रबन्ध काव्य में रसात्मकता आ जाती है । अतः यहाँ सर्व प्रथम कामायनी के रसात्मक वस्तु-वर्णन पर विचार किया जा रहा है ।

oooooooooooooo

१ हिन्दी ध्वन्यालोक, २०।१०-१४

२ जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ७१

रसात्मक-वस्तु-वर्णन :

" कामायनी " के वर्णनों में मानव जीवन की सुख दुःख पूर्ण अवस्थाओं के भव्य चित्र दिये जाते हैं, जिन्हें पढते ही हमारी रागात्मक वृत्ति मुक्त हो उठती है। कामायनी के कवि ने ऐसे ही रसात्मक वर्णनों को अधिक अपनाया है, जो हमारे मनोभावों का सुंदर रूप प्रस्तुत करते हैं तथा जो रसोद्बोधन में पूर्ण सहायक हैं। " चिन्ता " सर्ग का चिन्ता नामक मनोभाव का वर्णन देवों की विलास-वासना तथा जल प्लावन- आदि के चित्रण- आशा सर्ग के उषाकाल, हिमालय, चन्द्र, ज्योत्स्ना, पूर्ण रजनी आदि के साथ साथ मनु के अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन "श्रद्धा" सर्ग का श्रद्धा का रूप चित्रण मानवता का सन्देश आदि और काम सर्ग का यौवन एवं वसंत का मिला-जुला वर्णन अत्यंत सरस एवं मनमोहक है। ऐसे ही " लज्जा " सर्ग में लज्जा का चित्रण " कर्म " सर्ग का मानवती श्रद्धा का चित्रण इडा सर्ग का इडा सौन्दर्य चित्रण संघर्ष सर्ग का क्रान्तिवर्णन, " दर्शन " सर्ग का ताडंव-नृत्य वर्णन, " आनन्द " सर्ग का कैलास-सुषमा-वर्णन आदि कितने ही ऐसे स्थल कवि ने चुने हैं जहां जीवन की विविधता के साथ साथ मनोभावों के सुंदर चित्र अंकित किये गये है।[1] उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

यौवन और वसंत का आल्हादकारी वर्णन

" मधुमय वसंत जीवन वन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में।
कब आये थे चुपके से रजनी के पिछले पहरों में।
क्या तुम्हे, देख कर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आंखे खोली थी।
जब लीला से तुम सीख रहे, कोरक कोने में लुक रहना।
तब शिथील सुरभि से धरणी में बिछल न हुई थी। सब कहना। "

---

1 डा० द्वारका प्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य-संस्कृति और दर्शन, पृ० १२९-३०

जब लिखते थे तुम सरस हंसी अपनी, फूलों के अंक में।
अपना कलकंठ मिलाते थे, झरनों के कोमल कलकल में।
निश्चित आह। वह था किसना उल्लास काकली के स्वर में।
आनंद प्रतिध्वनि गूंज रही जीवन दिगंत के अंबर में। [1]

ऐसे ही अनेक रसात्मक वर्णन " कामायनी " में मिलते हैं। " प्रसाद " ने बारंबार रस के असाधारण महत्त्व की स्थापना की है वे रसात्मक अनुभूति को आनंद से संपन्न मानते हैं। [2]

अभिनव गुप्त आदि की तरह उनकी दृष्टि में भी रस आभ्यंतरिक है उसी में लोक-सामान्य-प्रकाशानंदमय आत्मचैतन्य की प्रतिष्ठा होती है। शैव आगमों की दृष्टि से " प्रसाद " सहमत हैं कि साधारणीकरण द्वारा आत्म-चैतन्य की रसानुभूति में, पूर्ण अहंपद में, विश्रांति हो जाती है। यही वह सम-रसता की स्थिति है जहां पहुंचकर रस पूर्ण चमत्कार को प्राप्त होता है। [3] यही साहित्य और दर्शन का मिलन बिंदु है। इसलिये " प्रसाद " कहते है वास्तव में भारतीय दर्शन और साहित्य दोनों का समन्वय रस में हुआ था और यह साहित्यिक रस दार्शनिक रहस्यवाद से अनुप्राणित है। [4] रसग्रहण की प्रक्रिया में साधारणी-करण का विशेष स्थान है क्योंकि उसी के द्वारा लोक सामान्य आनंद और आत्मचैतन्य का प्रादुर्भाव होता है। महाकवि ने इसका स्पष्ट कथन किया है " रसवाद में वासनात्मकतया स्थित मनोवृत्तियां जिनके द्वारा चरित्र की सृष्टि होती है साधारणीकरण के द्वारा आनंदमय बना दी जाती है। इसलिये वह वासना का संशोधन करके उनका साधारणीकरण करता है। इस समीकरण के द्वारा जिस अभिन्नता की रस-सृष्टि वह करता है। उसमें व्यक्ति की विभिन्नता

---

१ प्रसाद, कामायनी, काम सर्ग, पृ० ७१
२ काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ७०
३ वही, पृ० ७४-७६
४ वही, पृ० ७९

विशिष्टता हट जाती है, और साथ ही इस तरह की भावनाओं को एक धरातल पर हम एक मानवीय वस्तु कह सकते हैं। इस प्रकार के भाव एवं एक-दूसरे के पूरक बनकर चरित्र और वैचित्र्य के आधार पर रूपक बनकर रस की सृष्टि करते हैं, रसवाद की यही पूर्णता है। [१] यश और अर्थ से आगे काव्य सर्जन के पश्चात् होनेवाले आनंद की स्थिति कवि के केन्द्र बिंदु से कहीं अधिक गौरवपूर्ण है। " प्रसाद " ने तो उसे " भूखे का आहार " तक कह दिया है। [२] वे आनंद की उपलब्धि को ही काव्य का प्रमुख फल मानते हैं। [३] वह आनंद श्रेयस्कर और प्रेममय होता है। उसके स्वरूप की यह विशेषता होती है कि वह प्रमाता की असद वृत्ति का अवसान करके सद्वृत्ति को उद्बुद्ध करनेवाला होता है। [४] काव्य-प्रयोजन के विषय में प्रसाद की दृष्टि समन्वयवादी है। वह मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा पर भी बल देते हैं। उनकी दृष्टि में सत्कविता में दोनों स्थितियां अनिवार्यतः पायी जाती है। [५] उनकी यह दृढ धारणा थी कि काव्य का आस्वादन वही कर सकता है जो सहृदय है। उसमें सज्जनता का होना आवश्यक है। [६]

" प्रसाद " की अधिकांश कविताओं में वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति हुई है। [७] आंतरिक स्पर्श से पुलकित सूक्ष्म भाव गोपनता के साथ नवीन वक्रतापूर्ण शैली में व्यंजित हुए हैं। शब्दों में नवीन अर्थ उत्पन्न करनेवाला तड़पन है। [८] जीवन जगत् के नाना रूपों का अंकन आत्मा के रंग में रंग कर किया गया है। उसमें विश्वात्मा की छाया का प्रतिबिंबन है। [९] अभिव्यंजना

ठठठठठठठठठठठठठठठठठ

१ काव्य और कला तथा अन्य निबंध, प्रसाद, पृ० ८५
२ प्रसाद, स्कन्द गुप्त, पृ० ३१
३ इन्दु, कार्तिक सं० १९६७, पृ० १२३-२४ तथा काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ०९५
४ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २२
५ इन्दुकला, १, किरण, ११, ज्येष्ठ सं० १९८७, पृ० १८१-८२
६ प्रसाद, चित्राधार, पृ० ९९
७ काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२१
८ वही, पृ० १२२, १२९ (९) वही, पृ० १२५, १२६

की उस छायात्मकता के कारण उन कविताओं को छायावादी कविता कहा गया और उस काव्यधारा को " छायावाद " ।

प्रसाद के काव्य मत का आयाम अत्यंत व्यापक है । वे कवि का गौरव इस बात में मानते हैं कि वह विभिन्न-प्रवृत्तियों का सुखद संमंजन करते हुए प्रमाता की चेतना को प्रसन्न करे ।[1] उक्त मुख्य पहलुओं के अतिरिक्त काव्य रचना संबंधी अन्य बातों पर भी " प्रसाद " ने अपना विचार व्यक्त किया है । युग के प्रति सजग रहने वाली वृत्ति से प्रेरित होकर उन्होंने कविता में केवल शृंगार रस की निबंधना को अनुपयुक्त घोषित किया । वे काव्य के लिये ऐसे वर्ण्य विषय की आकांक्षा करते है जो अपनी भावमयी उत्तेजनामयी विशिष्टता से प्रमाता को अभावों की स्थिति से दूर हटा लें जाय और उसकी चेतना में ऐसी नादीय संगीतमयी वृत्ति स्फुरित करे कि उसका आलस्य भंग हो जाय तथा मन आनंद से तरंगित होने लगे ।[2] उन्हों ने काव्य रूपों की चर्चा तो नहीं की है परंतु महाकाव्य के महत्त्व पर प्रकाश अवश्य डाला है । उनका मत है कि विविध वृत्तियों के वैचित्र्यपूर्ण आलेख एवं सुख-दुःख की गाथाओं के वर्णन से महाकाव्य में प्रभावशाली विस्तार आ जाता है । वे महत्ता को ही महाकाव्य का प्राण मानते हैं ।[3]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि " प्रसाद " की काव्यधारणा मन की मौज पर आधृत न होकर सुचिंतित शास्त्र अनुशीलन पर प्रतिष्ठित है । वे अनेक स्थानों पर पूर्ववर्ती काव्यादर्श से प्रभावित है परंतु युग की आवश्यकता के अनुसार उनकी चिंतन दृष्टि में नवीनता एवं मौलिकता भी है ।[4] प्रसाद ने इसको ही काव्य की आत्मा माना है । उनका संपूर्ण कृतित्व इसी बातों को स्पष्ट रूप से प्रभावित करता है । उनके काव्यों में चित्तगत विविध मनोवृत्तियों का प्रकाशन इतना वक्रतापूर्ण

---

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २४

२ इन्दु, श्रावण सं० १९९७, पृ० २४

३ काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ११२

४ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २५

है कि उनका भावन करके सहृदय विमुग्ध हो जाता है।[1]

भाव और रस :

" कामायनी " में भावों का अत्यंत सजीव चित्रण मिलता है। कहीं-कहीं तो कवि भाव वर्णन में इतना लीन हो गया है, कि उसके निरूपण में ही पूरा का पूरा सर्ग लिख गया है। " कामायनी " का लज्जा सर्ग इसका ज्वलंत प्रमाण है। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

" छूने में हिचक देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं
संकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजती खड़ी रही
भाषा बन भौंहों की काली रेखा सी भ्रम में पड़ी रही "[2]

यहाँ पर लज्जा के उत्पन्न होने पर हिचकना, पलकों का झुकना, संकुचित होना आदि अनुभावों का सुन्दर चित्रण किया गया है। शेष सर्गों में मानवजीवन संबंधित चिन्ता, आशा, काम, वासना आदि भावों का चित्रण है जिनमें भाव शांति, भावोदय, भाव-संधि और भाव-शबलता के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

" सुख को सीमित कर अपने में केवल दुख छोड़ोगे
इतर प्राणियों की पीड़ा लख अपना मुँह मोड़ोगे
सुख अपने संतोष के लिए संग्रह मूल नहीं है
उसमें एक प्रदर्शन जिसको देखें अन्य वही है,
उधर सोम का पात्र लिये मनु समय देखकर बोले
श्रद्धे पी लो इसे बुद्धि के बन्धन को जो खोले
वही करूँगा जो कहती हो सत्य, अकेला सुख क्या "[3]

---

१ डा॰ सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ॰ २७
२ प्रसाद, कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ॰ १०७
३ वही, कर्म सर्ग, पृ॰ १४१-१४२

यहां पर कोप की शांति दिखा कर जो चमत्कार उत्पन्न किया गया है। उसमें भाव-शान्ति का सुन्दर उदाहरण मिलता है। दूसरे भावोदय का सुन्दर वर्णन " कामायनी " के काम सर्ग में मिलता है ; जहां मनु पहले तो श्रद्धा के आत्म-समर्पण पर संकल्प-विकल्प युक्त दिखाई देते हैं ; परंतु स्वप्न में जैसे ही वे काम का सन्देश तथा श्रद्धा के गुणों की प्रशंसा सुनते हैं, वैसे ही तुरंत श्रद्धा को अपनाने के लिये तैयार हो जाते हैं। यहां पर उनके हृदय में निर्वेद के स्थान पर जो आवेश एवं औत्सुक्य दिखलाया गया है, वह भावोदय का सुन्दर उदाहरण है। तीसरे भाव संधि का वर्णन " निर्वेद " सर्ग में मिलता है। जब मनु घायल होकर मुर्च्छित हो जाते है, और श्रद्धा उन्हें ढूंढती हुई उनके पास आ पहुंचती है तब मनु के हृदय में दो प्रबल भावों की संधि दिखाई गई है, एक तो श्रद्धा के आगमन एवं उसके शीतल स्पर्शादि से मनु में प्रबल हर्ष का भाव दिखाई देता है, और दूसरे, अपनी इस स्थिति पर तथा इडा को पुनः अपने समीप देखकर उनमें घृणा का भाव भी प्रबलता के साथ दिखाई देता है। चौथे, भाव- शबलता का सुन्दर स्वरूप " कामायनी " के " ईर्ष्या " सर्ग के अन्त में ~~मिल~~ मिलता है, जहां श्रद्धा को अपने गर्भस्थ शिशु के प्रति अधिक स्नेह भाव में लीन देखकर पहले तो मनु के हृदय में गर्भस्थ शिशु के लिए ईर्ष्या दिखलाई गई है और उसके उपरांत जब श्रद्धा मनु को सुन्दर कुटीर एवं अपने शिशु के लिए बनाये हुए वस्त्र आदि दिखाती है, तथा उत्तेजित होकर श्रद्धा के इस स्नेह-भाव को अपने प्रेम को बांटनेवाला बतलाते हैं तथा श्रद्धा के इन सभी कार्यों की कटु आलोचना करते हुए गुफा से भाग खड़े होते है ; वहां पर असूया, आवेग, गर्व, अमर्ष, उग्रता, आदि संचारी भावों का एक साथ चित्रण करके जो चमत्कार उत्पन्न किया है, उनमें भाव-शबलता के सुंदर दर्शन होते है। परंतु " कामायनी " में केवल भावों का ही वर्णन नहीं है, उनको स्थायित्व प्रदान करके रस की कोटि में भी पहुंचाने का प्रयत्न हुआ है।[१]

---

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० १५०

शृंगार :

समस्त रसों में " शृंगार " रसराज कहलाता है । ~~क्योंकि~~ इसके संयोग-वियोग दो भेद होते हैं और इन दोनों भेदों में लगभग सभी संचारी भावों का समावेश हो जाता है । इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी रस में इतने अधिक संचारी भाव नहीं आते । प्रसाद ने भी " कामायनी " में शृंगार के दोनों भेदों का अत्यन्त सजीवता के साथ चित्रण किया है । संयोग शृंगार का रूप - पंक्तियां दृष्टव्य है :-

" मनु निरखने लगे ज्यों-ज्यों यामिनि का रूप
वह अनन्त प्रगाढ छाया फैलती अपरूप
वरसता था मंदिर कण सा स्वच्छ सतत अनन्त
मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमंत ।
छूटती चिनगारियां उत्तेजना उद्भ्रान्त
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत,
वात चक्र समान कुछ था बांधता आवेश "
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश,"[1]

यहां पर श्रद्धा आलंबन है, ज्योत्स्ना पूर्ण रात्रि तथा श्रद्धा का सौंदर्य उद्दीपन है । चिनगारियां छूटना, हृदय में मधुर ज्वाला धधकना, मनु का विकल, अशान्त एवं मधुर होना अनुभाव है । आवेग, चंचलता, औत्सुक्य, उन्माद आदि संचारी भाव है और इन सब से पुष्ट रति स्थायीभाव द्वारा संयोग-शृंगार की व्यंजना हो रही है ।

दूसरे वियोग का विप्रलंभ शृंगार को चार प्रकार का बतलाया गया है, पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण ।[2] इसमें पूर्वराग तथा करुण विप्रलंभ

---

१ प्रसाद, कामायनी - वासना सर्ग, पृ० ९९, १००

२ काव्य दर्पण, पृ० २३९

के दर्शन " कामायनी " में नहीं होते, मान-विप्रलंभ का चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में है :-

" श्रद्धा अपनी शयन गुहा में दुखी लौट कर आयी,
एक विरक्ति बोझ सी ढोती मन ही मन बिलखायी,
मधुर विरक्ति भरी आकुलता घिरती हृदय गगन में,
अन्तर्दाह स्नेह का तब भी होता था उस मन में, "[1]

यहां पर मनु आलंबन है। पशु-वध उद्दीपन है। दुःखी लौट आना मन में बिलखना, आकुल होना, मनमें स्नेह का अन्तर्दाह होना अनुभाव है, अमर्ष, आवेश, विषाद, आदि संचारी भाव हैं और इन सब से पुष्ट रति स्थायी भाव है। इसके साथ ही प्रवास विप्रलम्भ का वर्णन " स्वप्न " सर्ग के आरंभ में बड़ी मार्मिकता के साथ किया गया है। पंक्तियां द्रष्टव्य -

" वन बालाओं के निकुंज सब भरे वेणु के मधु स्वर से,
लौट चुके थे आनेवाले सुन-पुकार अपने घर से।
किन्तु न आया वह परदेशी युग छिप गया प्रतीक्षा में,
रजनी की भींगी पलकों से तुहिनबिंदु कण कण बरसे।"[2]

यहां पर मनु आलंबन विभाव है, वन-बालाओं के निकुंजों में वेणु-स्वर का गुंजन तथा अन्य सभी का लौट आना उद्दीपन विभाव है। श्रद्धा का मनु की प्रतीक्षा करना, उनके लौटने के बारे में सोचना, आदि अनुभाव है और स्मृति, दैन्य, चिन्ता, विषाद, वितर्क, आदि संचारी भाव है, इन सभी भावों से पुष्ट रति स्थायी भाव यहां प्रवास जन्य विप्रलंभ शृंगार के रूप में ध्वनित है।

---

१ कामायनी, कर्म सर्ग, ५, पृ० १२६-१२७

२ कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ० १८६

वीर :

" कामायनी " में दो-एक स्थलों पर वीर रस की भी सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है, जैसे, सारस्वत नगर की जनक्रान्ति के समय जनता का नेतृत्व करने वाले आकुलि-क्लात नामक असुर पुरो-हितों को जब मनु ललकारते है । पंक्तियां दृष्टव्य :

" कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया,
अरे, समझ कर जिनको अपना था अपनाया,
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि,
रण-मह, यज्ञ पुरोहित । ओ क्लात " औ " आकुलि " [1]

यहां क्लात आकुलि आलंबन है, उनका उत्पात मचाना उद्दीपन है । मनु का ललकारना, युद्ध करना आदि अनुभाव है । गर्व, आवेग, औत्सुक्य, चपलता, अमर्ष, आदि संचारी भाव है और इन सभी भावों से पुष्ट " उत्साह " स्थायी भाव द्वारा यहां वीर रस की अभिव्यंजना हुई है ।

रौद्र :

" कामायनी " में संघर्ष सर्ग के अंतर्गत रौद्र रस के भी दर्शन होते हैं । देव-शक्तियों एवं प्रजाजनों के साथ मनु के युद्ध का वर्णन करते हुए कवि प्रसाद ने रौद्र रस की अभिव्यक्ति की है । पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

" अन्धड था, बढ रहा, प्रजा दल था झुंझलाता,
रण वर्षा में शस्त्रों-सा बिजली चमकाता ।
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन वाणों को,
बढे कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को " [2]

१ प्रसाद, कामायनी, संघर्ष सर्ग, पृ० २०९

२ वही, पृ० २०८

यहां पर प्रजा आलम्बन विभाव, प्रजादल का झुंझलाना, तथा शस्त्रों से प्रहार करना उद्दीपन विभाव, मनु का खड्ग से प्रजाजनों को कुचलना । युद्ध में बाण वर्षा करते हुए आगे बढ़ना आदि अनुभाव और आवेग उग्रता असूया, मद आदि, संचारी भाव है जिनसे पुष्ट होकर " क्रोध " स्थायी भाव रौद्र रस के रूप में लक्षित होता है ।

भयानक :

" कामायनी " के कुछ स्थलों पर भयानक रस की भी अभिव्यक्ति है । मनु के अनैतिक आचरण के कारण अचानक प्राकृतिक शक्तियां के क्षुब्ध हो जाने पर " स्वप्न " सर्ग में भयानक रस का वर्णन किया गया है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" प्रकृति त्रस्त थी भूतनाथ ने नृत्य विकम्पित पद ~~अब~~ अपना
उधर उठाया, भूत, सृष्टि सब होने जाती थी सपना
आश्रय पाने को सब व्याकुल, स्वयं कलुष में मनु संदिग्ध
फिर कुछ होगा यही समझ कर वसुधा का थर थर कंपना । "[1]

यहां पर कुछ क्रुद्ध होकर भूतनाथ का नृत्य विकम्पित पद उठाना आलम्बन है । प्रकृति का त्रास-प्रजा का व्याकुल होकर आश्रय पाने के लिए आना, पृथ्वी का थर थर कांपना उद्दीपन विभाव है । मनु का संदिग्ध होना, फिर कुछ होने की आशंका करना अनुभाव है और शंका त्रास, चिन्ता आदि संचारी भाव हैं । इनसे पुष्ट भय स्थायी भाव भयानक रस के रूप में व्यंजित है ।

अद्भुत :

" कामायनी " में दो एक स्थलों पर अद्भुत रस की व्यंजना हुई है । तपस्या में निरत मनु जिस समय भगवान भूतनाथ के अलौकिक तांडव नृत्य का

१ प्रसाद, कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ० १९१

दर्शन करते है, उस समय अद्भुत रस की अभिव्यक्ति मिलती है जैसे ।

> " देखा मनु ने नर्तित नटेश हतचेत पुकार उठे विशेष [1]
> यह क्या । श्रद्धे । बस तू ले चल, उन चरणों तक, दे निज संबल
> ~~[illegible]~~ सब पाप पुण्य जिसमें जलजल, पावन बन जाते है निर्मल ।"

यहां पर नर्तित नटेश आलम्बन, उनका अद्भुत तांडव नृत्य उद्दीपन, मनु का साश्चर्य देखना, हतचेत पुकार उठना, वहां तक चलने की इच्छा प्रकट करना आदि अनुभाव और औत्सुक्य चपलता आवेग आदि संचारी है । इन सभी से पुष्ट " आश्चर्य " स्थायी भाव यहां अद्भुत रस के रूप में अभिव्यंजित हुआ है ।

करुण :

" कामायनी " के प्रारंभिक चिन्ता सर्ग में अपने प्रियजनों का व्यापक विनाश देखकर मनु को जो शोक उत्पन्न हुआ है वहां करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है । पंक्तियां दृष्टव्य है :-

> " प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में,
> भोले थे हां तिरते केवल सब विलासिता के न   में,
> वे सब डूबे डूबा उनका विभव, बन गया पारावार,
> उमड रहा है देव सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार " [2]

यहां पर देवों का विनाश आलंबन है, उनके वैभव, विलासिता, प्रकृति को जीतने की शक्ति आदि का स्मरण उद्दीपन विभाव है । मनु का आहें भरना, चिन्ता करना आदि अनुभाव हैं । चिन्ता, ग्लानि, विषाद, स्मृति, दैन्य आदि संचारी भाव हैं और स्थायी भाव शोक है जिससे करुण रस की पुष्टि हुई है ।

---

1 प्रसाद, कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० २६२

2 वही, चिन्ता सर्ग, पृ० १५-१६

बीभत्स :

" कामायनी " में " बीभत्स " का वर्णन भी मिलता है । मनु द्वारा किये गये पशु-यज्ञ के अवसर पर घृणास्पद वस्तुओं का वर्णन करते हुए इस रस की अभिव्यक्ति हुई है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी धधक रही थी ज्वाला
दारुण दृश्य । रुधिर के छींटे अस्थि खंड की माला ।
वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी "[1]

यहां पर पशु-यज्ञ आलम्बन है । रुधिर के छींटे, अस्थि खंड की माला आदि उद्दीपन विभाव है । पशु का कातर वाणी से चिल्लाना वेदी पर निर्ममता से उसका वध करना आदि अनुभाव है और निर्वेद ग्लानि, आवेग, आदि संचारी भाव है जिससे पुष्ट जुगुप्सा स्थायी भाव बीभत्स रस के रूप में वर्णित है ।

शान्त :

" कामायनी " के अंतिम चार सर्गों में शांत रस की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है क्योंकि निर्वेद सर्ग में मनु को संसार से विरक्त दिखलाया गया है । " दर्शन " सर्ग में उन्हें नटराज शिव के दर्शन कराये गये है । " रहस्य " सर्ग में संसार की वास्तविकता एवं तत्वज्ञान का परिचय कराया गया है और अन्तिम आनंद सर्ग में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति दिखलाई गई है । पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

" सोच रहे थे, जीवन सुख है । ना यह विकट पहेली है
भागे अरे मनु । इन्द्रजाल से कितनी व्यथा न फैली है,
श्रद्धा के रहते यह संभव नहीं कि कुछ कर पाऊंगा,
तो फिर शान्ति मिलेगी मुझको जहां, खोजता जाऊंगा । "[2]

---

१ प्रसाद, कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० १२१

२ प्रसाद, कामायनी, निर्वेद सर्ग, पृ० २१७-१८

यहां पर इन्द्रजाल रूपी संसार आलंबन है। जीवन का विकट पहेली बन जाना, सुख का न होना, उद्दीपन विभाव है। मनु का भाग में का विचार करना शान्ति की खोज के लिए उत्सुक होना आदि अनुभाव हैं और मति ग्लानि दैन्य, निर्वेद, आदि संचारी भाव है। इन सभी से पुष्ट शम स्थायी भाव यहां शांत रस के रूप में वर्णित हुआ है।

वात्सल्य :

" कामायनी " में दो-एक स्थलों पर वात्सल्य रस के भी दर्शन हो जाते हैं। " स्वप्न " सर्ग के अंतर्गत श्रद्धा के पुत्र " कुमार " की किलक भरी गूंज के वर्णन के अवसर पर वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई है। पंक्तियां :

" मां-फिर एक किलक दुरागत गूंज उठी कुटिया सूनी,
मां ऊठ दौडी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी।
लुटरी खुली अलक, रज धूसर बाहें आकर लिपट गई।
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी ,"[1]

यहां पर कुमार आलम्बन है। उसकी किलकारी, लुटरी खुली अलक, धूल धूसरित बाहें आदि उद्दीपन विभाव है। मां का उठकर पुत्र को गोद में लेने के लिये दौडना, दूनी उत्कंठा से भर जाना आदि अनुभाव हैं और हर्ष, आवेग, गर्व, औत्सुक्य आदि संचारी भाव हैं। इन सभी से पुष्ट वत्सलता पूर्ण स्नेह की यहां वात्सल्य रस के रूप में अभिव्यंजित हुआ है।[2]

अंग - अंगीरस :

" कामायनी " का पूर्वार्द्ध शृंगार रस की व्याप्ति से है और उत्तरार्द्ध प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर आधृत शान्त रस संपन्न। " कामायनी " में

१ प्रसाद, कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ० १०७
२ डा० द्वारका प्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० १५०-५१

हास्य को छोडकर शेष समस्त प्रमुख रसों की सृष्टि हुई हैं। किन्तु शृंगार और शान्त को छोडकर शेष समस्त अल्प व्यापी है, अतएव अंगी रस के रूप में उनके विचारार्थ का प्रश्न ही नहीं उठता। वे अंग रूप में ही प्रस्तुत है। " शान्त " का विरोधी होने के कारण शृंगार अंग रस नहीं बन सकता। इस ग्रंथ में निर्वेद मूलक शान्त के स्थल भी अत्यंत अल्प नीवी है। " निर्वेद " में उसकी स्थिति रस की अपेक्षा निर्वेद, प्रतिहिंसा, घृणा, आदि भावों के बीच संधि की ही अधिक है। इस दृष्टि से भी शांत रस न तो प्रमुख माना जा सकता है और न शृंगार को उसका अंगभूत रस।

आनंद रस :

आत्म-विश्रांति जन्य आनंद केवल शान्त रस का नहीं समस्त रसों का लक्षण है। इसी दृष्टिकोण को आधार बनाकर अभिनवगुप्त ने शांतरस को मूल रस माना है और रति आदिक स्थायी भावों को उसका विकार मात्र कहा है। इस अर्थ में यह शान्त रस आद्याशक्ति के साथ समरस होने के कारण काव्य-शास्त्रीय शांत रस से सर्वथा पृथक है। अभिनवगुप्त ने नाट्य रसों की व्याख्या में इसी अद्वैतमय शान्त रस को आनंद रस कहा है। " कामायनी " का मूल प्रतिपाद्य रस है और इसे ही अंगी भी माना जायगा।

आनंदवादी दार्शनिक विचारधारा को लेकर चलनेवाले आचार्यों में अभिनवगुप्त प्रमुख है। प्रसाद जी अभिनवगुप्त से सहमत होकर चित की आनंदमयी तल्लीनता को ही रस कहते है। वही समाधि सुख है। उसमें और ब्रह्मास्वाद में कोई तात्त्विक भेद नहीं रहता।[2] इसी भूमिका पर वे रसों की बहुसंख्या का कोई विशेष अर्थ नहीं मानते क्योंकि आनंद की भूमिका पर सभी एक में परिणत हो जाते हैं। वहाँ विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता। इस तरह समरसता का सिद्धांत

१ डा० गणेश खरे, युगकवि प्रसाद, पृ० २७७

२ प्रसाद, काव्य कला तथा अन्य निबंध, पृ०

रसानुभूति में भी लागु हो जाता है। रसानुभूति को " अखंड " तथा " ब्रह्मानंद सहोदरा " कहने का आशय भी इस भूमिका पर स्पष्ट होता है। प्रसाद जी की इसी मान्यता के आधार पर " कामायनी " के अंग अंगीरस की समस्या का निराकरण हो जाता है।

महाकाव्य की प्रमुख पात्र श्रद्धा के समस्त कार्य व्यापार " भेद में अभेदता " " विषमता में समरसता " लानेवाला है वही मनु की पथदर्शिका बनकर उन्हें अखंड आनंद में तन्मय कराती है। इस तरह उसके जीवन के सारे प्रणय व्यापार इस भूमिका पर अन्वय के माध्यम से आनंद रस के अंग तत्त्व बन जाते हैं। उसका मनु के प्रति आत्म समर्पण कर्तव्यवश विगत विकार रूप में ही हुआ था। उसका संयोग शृंगार भी सृष्टि-विकास की कामना से युक्त है। उसका विप्रलम्भ शृंगार का चित्रण तो स्वल्प और संकेतमात्र है, उसमें भी मनु की क्षेम चिंता ही प्रमुख है। इस तरह कामायनी का शृंगार रस आनंद की ओर प्रत्यावर्तित है। उसमें और आनंद में परस्पर कोई विरोध न होकर अंग-अंगी संबंध है। अपनी उदात्तावस्था तथा समरसतापूर्ण स्थिति में शृंगार आनंद में लय होकर अखंडता सृष्टि की सिद्धि में सहायक होता है।

इस प्रकार आनंद रस, जिसे अभिनव अर्थ में शान्तरस भी कह सकते हैं, समस्त दृष्टियों से कामायनी का अंगीरस ठहरता है। उसकी दार्शनिक पीठिका समस्त विरोधों का लय कर देती है और इस स्तर पर भी समरसता की प्रक्रिया को लागू कर संकल्पनात्मक आनंद रस को प्रस्तुत करती है।[1] सारांश यह है कि " कामायनी " में अनेक भावों और रसों का समावेश स्वाभाविक रूप से हो गया है। इसमें " शृंगार " और " शान्त " दो प्रमुख रस है। और सभी रस उसके अंग रूप में आये हैं। इसमें हास्य रस का अभाव है क्योंकि प्रसाद का स्वभाव गंभीर और चिन्तनशील था।

---

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० २७१

प्रसाद-संगीत :

इस लघु पुस्तक में कविताओं का संकलन श्री रत्नशंकर प्रसाद ने किया है। इसका प्रकाशन सं० २०११ में भारती भंडार प्रयाग से हुआ है। इस संग्रहीत गीतों का परिचय तृतीय अध्याय में दिया जा चुका है। इस अध्याय में उसके भावपक्ष का वर्णन समाहित है।

वस्तु की दृष्टि से आपके सभी नाटकों में आये हुए गीत प्रमुखतः प्रेम, शक्ति, राष्ट्रीय प्रेम, और आत्मपरक रूपों में मिलते है। संख्या प्रेम प्रधान गीतों की सार्वधिक है, क्योंकि कवि प्रसाद प्रेम और सौंदर्य के कवि ही माने जाते हैं। प्रेम के उभय पक्षों में संयोग कालीन अवस्थाओं प्रस्तुत करनेवाले कम और वियोगजन्य वेदना, स्मृति, उपालंभ, अनुनय, आदि को व्यंजित करनेवाले गीत सार्वधिक है। ये गीत अधिकांश रूप में प्रेम, प्रेमिकाओं के द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। नारी पात्रायें भावुक होने के कारण अपनी विभिन्न मनःस्थितियों का प्रकाशन गीत-रूपों में अधिकतर करती है। गीतों की आत्मा नारी हृदय से तदरूप होकर चलती है। अतएव प्रसाद जी के श्रेष्ठ गीत नारी-कंठों से ही निसृत हुए हैं। इन गीतों में पूर्वराग से लेकर विराट विनोद और अखंड विलास की कामनायें सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रण वयःसंधि तथा यौवनागम की विभिन्न मनःस्थितियों और वियोग की विविध कामावस्थायें बड़ी ही कलात्मकता, सूक्ष्मता, प्रतीकात्मकता, तथा उच्छ्वासपूर्ण आवेगों के साथ व्यक्त हुई है। नारी हृदय में उत्पन्न होनेवाली प्रेम जन्य विविध भावनायें कवि जीवन के साथ घुलमिल गई है। पंक्तियां दृष्टव्य :

१) " संभाले कोई कैसे प्यार — प्रेमकी तीव्रता
मचल-मचल उठता है चंचल
भर लाता है आंखों में जल
बिछलकर, चलता है उस पर लिये व्यथा का भार (राज्यश्री)

२. सुख देख सभी दुख को दिया था, दुख मोल इसी सुख को लिया था ।
सर्वस्व ही तो हमने दिया था, तुम देखने को तरसाने लगे ।
(आत्म-समर्पण की भावना) (राज्यश्री)

३) आज मधु पीले यौवन वसन्त खिला - प्रेमपथक
चन्दन वनकी छांह चल कर मन्द समीर - विशाख
अब मेरा निश्वास हो करता किसे अधीर -
तुम्हारी प्रेम धारा में बहूंगा
हृदय अपना तुम्ही को दे दिया है
नहीं, तुमने स्वयं ही ले लिया है,

४) मिले दो हृदय-उत्पल अछूते, दो शरीर एक प्रान,
मेरे मनको चुरा के कहां ले चले,
अकेली छोडकर जाने न दूंगी,
प्रणय को तोडकर जाने न दूंगी,
बनाकर आंख की पुतली तुम्हें बस,
तुम्हारे साथ में खेला करूंगी ।
मचल ~~उठेगी~~ उठेगी सकरुण वीणा, किसी हृदय को होगी पीडा,
नृत्य करेगी नग्न विकलता, परदे के उस पार, - अजातशत्रु
पलकें झुकीं यवनिका -सोयीं अन्तस्तल के अभिनय में
इधर वेदना श्रम-सीकर आंसू की बूंदें परिचय में,
राग-रक्त होने क्योल हैं ले ले ही नाम बताओगे कैसे - अजातशत्रु
आंखें कहेंगी - कामना
उस सुख का आलिंगन करने कभी भूल कर आ जाना,
मिलन- क्षितिज-तट-मधु-जलनिधि में मृदु हिलकोर उठा जाना
आह । वेदना मिली बिदाई - स्कंद गुप्त
मैं ने भ्रमवश जीवन संचित मधुकरियों की भीख लुटाई - स्कंद गुप्त

हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो मौन बने रहते हो क्यों - स्कंद गुप्त
निकल मत बाहर-दुर्बल आह, लगेगा तुझे हँसी का शीत - चन्द्रगुप्त
कोर बरौनी का न लगे हाँ, इस कोमल मन को मेरे
पुतली बनकर रहें चमकने, प्रियतम ! हम दृग में तेरे - इन्दु (सितम्बर, १९१४)

राष्ट्रीय, भावना-परक :

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार
~~दे उपहार~~ उषा ने हंस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार - स्कन्द गुप्त

" अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा " - चन्द्रगुप्त
हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती -
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती - चन्द्रगुप्त
जननी जिसकी जन्मभूमि हो, वसंधरा ही काशी हो,
विश्व-स्वदेश, भ्रातृ मानव हो, पिता परम अविनाशी हो, कानन कुसुम

मानवता परक गीत :

जीवन भर आनंद मनावे, खाये पीये जो कुछ पावे - विशाख
सीधी राह पकड़कर सीधे चले चलो छले न जाओ औरों को भी मत छलना - विशाख
दीन दुःखी न रहे कोई सुखी हों सब लोग - विशाख,
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके दिपन्न - स्कन्द गुप्त

यह कसक अरे आंसू सह जा ,
बनकर विनम्र अभिमान मुझे ,
मेरा अस्तित्व, बता, रह जा, } ध्रुवस्वामिनी

भक्ति परक :

जय जगति करुणा सिन्धु, जय दीनजन के बन्धु - राज्यश्री

तू खोजता किसे अरे आनंद रूप है — विशाख
मान लूं क्यों न उसे भगवन ? — विशाख
आओ, हिय में अहो प्राण प्यारे — — अजातशत्रु
तुम्हारी मोहिनी छवि पर निछावर प्राण है मेरे — अजातशत्रु
जय हो उसकी, जिसने अपना, विश्व रूप विस्तार किया,
(जनमेजय का नागयज्ञ) यश

जलाओगे अब कब तू भार — — स्कन्द गुप्त
जीवन-वन में उजियाली है — — एक घूंट
मन मन्दिर में नाथ तुम्हारी, अर्चना, — [illegible]
हुई उपेक्षित तुम से, हंसती है हमें, — इन्दु-फरवरी, १९१९
हे करुणा-सिन्धु, नियन्ता विश्व के
हे प्रतिपालक तृण, वीरुध के, सबके, — करुणालय

नर्तकियों के माध्यम से भी विपुल मात्रा में शृंगार गीत प्रस्तुत कराये गये हैं। ये अधिकतर व्यवसायिक वृत्ति प्रधान होने के कारण कामद गुणों एवं भोगविलास की मादक-पृष्ठभूमियों से युक्त हैं।

विकास और प्रौढकालीन नाटकों में आये शृंगारिक गीत पात्रों की मनःस्थितियों के ज्ञापक तो है ही। उनकी चारित्रिक विशेषताओं को भी स्पष्ट करनेवाले हैं।

विचारात्मक गीत अधिकतर महान पुरुषपात्रों द्वारा या तो प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत कराये गये हैं। इन गीतों में जीवन की क्षणभंगुरता, परिवर्तनशीलता, असारता, आदि पर विचार प्रकट किये हैं, साथ ही इनमें सांसारिक माया मोह के बंधनों से मुक्त होकर दुःख से धरा पर प्रेम और करुणा की वृष्टि करने का संकेत भी है। कुछ वैचारिक गीतों में करुणा-सिंधु प्रभु आदि का स्तवन नमन भी किया गया है। प्रसादजी के नाटकों में स्वतंत्र रूप से भक्ति और

विनय प्रधान गीतों की भी एक अच्छी संख्या है पर स्वर भक्ति न होकर मानवतावादी श्रद्धालु कवि का है । अत्याचारों, नृशंस हत्यारों आदि से समाज की रक्षा हेतु की गई प्रार्थनाओं में करुणाकातर स्वर की अधिकता है ।

राष्ट्रीय गीतों में भारतीय सांस्कृतिक गरिमा, दार्शनिक उदात्तता वसुधैव कुटुम्बकम् की भावनाएं आर्य जाति और सभ्यता पर गर्व, देश पर सर्वस्व त्याग की भावना, पूर्ण पुरुषार्थ, आशावादिता, वीरता, आदि के व्यापक चित्रों की संयोजना हुई है । इन गीतों में प्रसाद जीकी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव लक्षित होता है । उनके ये गीत देश की नवचेतना में जागृति के अग्रदूत भी सिद्ध हुए हैं । राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से ये गीत बड़े महत्त्व-पूर्ण है । प्रसाद जी के प्रायः सभी राष्ट्रीय गीत उदात्त नारी पात्रों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं ।

आत्म परक गीतों की संख्या स्वल्प हैं । जिनमें जीवन की निराशा, दुःख और संघर्षमय जीवन की अभिव्यंजनायें हुई हैं ।

इन " प्रसाद-संगीत " कविताओं में कवि की काव्य चेतना निरंतर उत्कर्ष को प्राप्त होती गई है । प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली दोनों का परिष्कार होता चला गया है । नाटकों में इन गीतों में भावाकुल अंतर की विविध स्थितियों की मार्मिक व्यंजना है, सुविचारित चिंतन मनन का प्रभावशाली आधार है, मन को चमत्कृत कर देने वाली वक्रताओं का वैचित्र्य है, रंगीन कल्पनाओं का स्वच्छंद प्रसार हैं, नयनाभिराम, रूपांकन की मधुरिम प्रभा है, अंतर को झंकृत करती जानेवाली संगीत मयता है, और साथ ही साथ पूरे परिवेश को इंद्रियगम्य बना देने वाली अपूर्व शक्तिमता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि " प्रसाद " की काव्य-चेतना निरंतर विकास शील रही है । उनका सर्जक कवि प्रारंभ से ही एक निश्चित आधार लेकर आगे बढ़ा है । चाहे प्रबंध, निबंध और अबंध काव्य हो या प्रगीत-गीत और अगीत हो - सभी उत्तरोत्तर समृद्धि प्राप्त करते गये हैं ।[1]

ooooooooooooooo

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १९

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में प्रसाद-काव्य की भाव-योजना का जो अनुशीलन किया गया है उससे कवि के काव्य-विकास के सोपान स्पष्टतः प्रकाश में आते हैं। " चित्राधार " से प्रकृति-प्रेम की कविता आरम्भ होकर क्रमशः सूक्ष्म शिल्प योजना के साथ गतिशील होती हुई " कामायनी " में आकर चरम विकास को प्राप्त करती है। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि आरम्भिक पाँच कृतियों में कवि की चेतना भावाभिव्यक्ति के सन्धान में रत दिखाई पड़ती है। परवर्ती चारों कृतियों में उक्त सन्धान उत्तरोत्तर प्रकृष्टतर होता गया। इस संदर्भ में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का निम्नलिखित कथन लेखक को अत्यंत-समीचीन प्रतीत होता है :-

" प्रातःकालीन स्वच्छ वनवायु की भाँति, प्रथम यौवन की मधुर कल्पना की भाँति उन्होंने साहित्य में अपना आगम जनाया और क्रमशः गहनतर और उच्चतर भूमि पर पहुंचते गये। यदि वे " कामायनी " में उच्चतम अध्यात्म की झलक दिखाते हैं, तो वह भी जीवन की सर्वांदिक अनुभूतियों के अंतराल से प्रकट हुए निष्कर्ष के रूप में।"[1]

तीसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि समग्रतया देखने पर प्रसाद जी सर्वत्र मानवीय भावनाओं के कवि के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। शैव प्रकृति के साथ उनका आकर्षण अवश्य है, किन्तु वह निःसंदिग्ध रूप से मनुष्य सापेक्ष्य है। उपरिनिर्दिष्ट विकास-भूमि भी मनुष्यता के प्रति तीव्र आकर्षण से परिपूर्ण है। " कामायनी " में आकर यह आकर्षण एक सुनिश्चित जीवन-दर्शन को प्राप्त करता है।

प्रसाद जी की भाव-योजना के साथ-साथ उनका चिन्तन और जीवन-दर्शन गतिशील रहा है। इन्हें अन्योन्याश्रित भी कहा जा सकता है। पाँचवें उनकी

---

१ नन्द दुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, भूमिका, पृ० २

कृतियों में रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हुई है। कहीं वह सौन्दर्य परक है तो कहीं प्रकृति सम्बन्धी साथ ही कहीं कहीं प्रेमपरक भी है। विद्वानों ने इसे प्राकृतिक रहस्यवाद की संज्ञा दी है।[1]

प्रसाद जी प्राचीन आख्यानों को अपनी रुचि के अनुरूप चुन कर एक निश्चित योजनानुसार रखने में यत्नशील दिखाई देते हैं। इस चयन में एक ओर उनकी सांस्कृतिक चेतना कार्यशील कही जा सकती है, तो दूसरी ओर उनकी रुचि या प्रकृति भी उतनी उत्तरदायी है। प्रसाद जी की भाव-व्यंजना की यह छठी विशेषता कही जा सकती है।

इस उपर्युक्त अध्ययन सूत्रों के आधार पर उनकी रचनाओं की विकास-भूमि के तीन सोपान माने जाते हैं। प्रथम वे आरम्भिक रचनाएं जो ब्रजभाषा की परम्परा सेवित कृतियां है। द्वितीय सोपान में आकर कवि प्रेम और सौन्दर्य की ओर - एक ओर आकृष्ट होता है तो दूसरी ओर प्राचीन आख्यानों को लेकर नयी अभिव्यक्ति प्रणाली का मार्ग बनाने के लिए सचेष्ट दिखाई पड़ता है। तृतीय सोपान में आकर वह उन सभी प्रवृत्तियों को संतुलित रूप में नियोजित करते हुए विकासभूमि पर सुदृढ पदन्यास करता हुआ दिखाई पड़ता है। झरना, आंसू, लहर तथा कामायनी इस पुष्ट विकासभूमि की ओर क्रमशः गतिशील कवि की काव्य-चेतना के परिचायक कहे जा सकते हैं।

०००

---

१ नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ६४ शीर्षक, आरंभिक काव्य विकास

कवि न्हानालाल के काव्य की भाव योजना :

आमुख :

पूर्ववर्ती अध्याय के अन्तर्गत कवि न्हानालाल की सभी काव्य-कृतियों की विषय-वस्तु का जो अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है, उससे प्रकट है कि उनकी अनेक रचनाएं भाव-योजना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकतीं। उदाहरणार्थ। राजपूतों की काव्य त्रिपुटी (१९०१ ई०) में रणगीतों को छोडकर शेष समस्त रचनाएं प्रायः विचार या विवरण प्रधान हैं, जिन्हें काव्य के स्थान पर पद्य कहना अधिक उपयुक्त होगा। " गीत मंजरी " (सन् १९२८) अनेक काव्य-कृतियों या संग्रहों से संकलित गीतों का संग्रह मात्र है। इसे स्वतंत्र कृति नहीं माना जा सकता। भाव-व्यंजना की दृष्टि से इन गीतों का महत्त्व अवश्य है, जिनकी चर्चा सम्बद्ध कृतियों पर विचार करते समय की जायगी। इसी प्रकार " हरि संहिता " भाग १-२-३ का अधिकांश भाग उपदेश और विचारधारा प्रधान है, जिसमें तत्त्व-चिन्तन का आधिक्य है। कवि न्हानालाल के काव्य के इस पक्ष पर स्वतंत्र अध्याय में विचार किया जायगा। अतः प्रस्तुत अध्याय में उक्त कृति के केवल उतने ही अंश पर विचार किया जा सकता है जिसे भाव-व्यंजना के दृष्टिकोण से यत्किंचित भी महत्त्व है।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में प्रस्तुत अध्ययन में उपरनिर्दिष्ट कृतियों के अतिरिक्त शेष काव्य कृतियों ही विवेचन के लिए उपयुक्त समझी गयी है। पूर्ववर्ती अध्याय के कवि की कृतियों से सम्बन्धित विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृतियों का वैशिष्ट्य परिस्थिति विशेष में उनकी रचनाओं से बहुत कुछ सम्बद्ध रहा है। अतः विवेचनगत सुविधा के विचार से उनकी भाव-व्यंजना का रचना के अनुसार ही विवेचन करना लेखक ने अधिक उपयुक्त समझा है। एतद्विषयक स्वतंत्र अनुशीलन के पूर्व सर्व प्रथम प्रथम रचना में संकलित " रणगीतों " की भाव-योजना पर संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा। इन शौर्य गीतों की कुल संख्या २२ हैं। जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय के विवेचन से प्रकट है कि इनकी विषय वस्तु पौराणिक

या ऐतिहासिक है किन्तु इनके माध्यम से कवि ने वीरता, राष्ट्र प्रेम तथा देश के लिए बलिदान की भावना जगाने का कार्य किया है। इनमें वीर रस का पूर्ण परिपाक भले ही न हो ; किन्तु वीरोल्लास भरी उक्तियाँ पाठक या श्रोता में अपूर्व प्रेरणा का संचार करती हैं। उदाहरणार्थ निम्न लिखित पंक्तियाँ आत्म-गौरव की भावना के साथ-साथ मार्मिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में सक्षम कहा जा सकता है :-[1]

" म्हारा केसरभीना कंथ हो ।
सिधावो जी रण वाट - - - - "

इसी प्रकार " कुन्ता-सन्देश " ओजस्वी एवं अधिकार की रक्षा के लिए शौर्य का संचार करनेवाला है। भाव या रस की दृष्टि से इन सभी रणगीतों को वीर-भाव परक कहा जा सकता है।

(१) केटलाक काव्यो भाग-१ (१९०३)

आलोच्य काव्य-कृतियों में से यह प्रथम काव्य-संकलन प्रधानतया प्रेम और सौन्दर्य प्रधान प्रगीतों से परिपूर्ण है। इस तथ्य के अपवाद रूप में नियति-परक तथा शोक-प्रशस्ति के तीन गीत रखे जा सकते हैं। प्रथम प्रकार के गीतों में भक्ति और आत्म-समर्पण के भावों की प्रधानता है। इनमें कवि का विचार-पक्ष ही अधिक उभर कर आता है जिसकी चर्चा यहाँ अप्रासंगिक है। प्रकृति-प्रेम-परक गीतों में प्रकृति का वर्णन आलम्बन, उद्दीपन, तथा मानवीकरण इन तीन रूपों में हुआ है। कहीं-कहीं पर लोक-जीवन के बड़े ही सजीव- चित्र उरेहे गये हैं। जैसे " धण " शीर्षक काव्य में ग्वालों द्वारा पशु-चारण आनन्द की मस्ती में आकर गीत गाने और गोधूली वेला में घर लौटने के दृश्य प्रांजलता के

१ न्हानालाल, राजसूत्रोंनी काव्य त्रिपुटी, पृ० ५४

साथ अंकित हुए हैं । " भमरो " शीर्षक काव्य में कवि उपदेशक बन जाता है । ऐसे स्थलों पर भाव-योजना का प्रायः अभाव है किन्तु शेष गीतों में कवि प्राकृतिक दृश्यों के साथ तादात्म्य स्थापित करता है, अतः ऐसे वर्णन अत्यंत रमणीय बन पड़े है :

" प्रकृति सागर । सखी चन्दानी सुशील कला
मींचजे तुज अनन्त ताना गान मां रे लोल
" सिन्धुने "
अलौकिक नील पर सन्ध्या लहने, प्रशान्त निद्रित बाळ प्रभात
अन्तरिक्षना रंग धरी सूतुं
" सरोवर "

भाव-व्यंजना के दृष्टिकोण से दाम्पत्य-भाव परक १७ गीतों तथा शोक-प्रशस्ति के तीन गीतों का सर्वाधिक महत्त्व है । वैयक्तिक ५ गीत भी इन्हीं के अंतर्गत आ जाते हैं । इन गीतों में दाम्पत्य भावना का भावपूर्ण और चित्रात्मक वर्णन है । वैसे कवि ने " दाम्पत्य-स्तोत्रो " नाम से एक स्वतंत्र काव्य-ग्रन्थ भी लिखा है । एतद्विषयक कवि की मान्यता इस प्रकार प्रस्तुत हुई है :-

" नर नारी नां जोडलां पण तेनी दिलनी दोरी एक "
(संसार मंथन, पृ० १)

यौवन के मुक्त प्रदेश में विहार करनेवाले कवि ने प्रेम को जीवन में केन्द्रस्थ बना कर विवाह-संस्कार की उज्ज्वलता प्रकाशित की है । इसमें जीवन की वास्तविकता है । कवि विवाह को जीवन की श्रृंखला नहीं अपितु मानव जीवन को दिव्य और अनुपम बनानेवाली दिव्य सामाजिक और धार्मिक योजना है जो शुभ गुणों से संचलित है । कवि ने इन प्रगीतों में आदर्श, शुचिता, आत्म समर्पण आदि भावों का चित्रण किया है :-

" मळ्युं सौभाग्य, चिर त्हारुं विराजो
वधावीशुं वही आनंद व्हाली (केटलांक काव्यो, पृ० ५७)

कवि ने मानव जीवन की उच्चता, दिव्यता, और सामाजिकता का आधार दाम्पत्य जीवन को बतलाया है। इसमें कवि ने प्रेम भाव, वात्सल्य भाव और मानवता मूलक सामाजिकता जो गृहस्थाश्रम का मूल मंत्र है यह बतलाया है। आर्य नारी की दाम्पत्य भावना, लग्न की प्रभुता और दाम्पत्य की मंगलता के भाव प्रस्फुटित किये हैं। कवि ने आर्य नारी के प्रति प्रेम सौन्दर्य और शीलता के भाव उभारे हैं जो इन गीतों में प्रक्षिप्त हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि भाव योजना में कवि स्थान स्थान पर आदर्शवाद की ओर मुड जाता है। उसका यह मोड मर्मस्पर्शिता में बाधक अवश्य कहा जा सकता है। यह अवश्य है कि यहां कवि न्हानालाल की नारी विषयक दृष्टि प्रसादजी से बहुत कुछ साम्य रखती है।

वैयक्तिक गीतों की मूल चेतना स्मृति की है। जीवन के सुख-दुःख पूर्ण अनुभवों को उसने कुशलता के साथ अभिव्यक्त करना चाहा है :

" कृपा अशु प्रियनां मध्यां हतां ते :
करुणा गीतो रहुं के न रहुं तोय शुं "[1]

इनमें बचपन की स्मृतियां हैं। दूसरी ओर शृंगारी भावों के प्रांजल चित्र हैं। मुख्यता दाम्पत्य भावना की है जिसे शृंगार रस के अंतर्गत लिया जा सकता है। कवि की पत्नी विषयक स्मृतियाँ रसपूर्ण हैं। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ यहां उल्लेखनीय हैं :-

" ते स्नेह सुन्दरनुं हृदय तुजमां वसे हुं ओढुं छुं
मुज उर पण तुजमां - अलभ्य अभेदवती हुं स्होउं छुं "[2]

करुणा के भाव को अभिव्यक्त करनेवाले तीन गीत भी प्रस्तुत संकलन में प्राप्त होते हैं- श्रावणी अमास, ब्रह्म दीक्षा और स्मरण। ये वैयक्तिक अनुभूतियों पर आधारित है ; अतः इनकी मार्मिकता भी उतनी ही गहरी

ccccccccccccccccccc

१ केटलांक काव्यो, अनुभव माळा, पृ० ११२

२ केटलांक काव्यो, पत्र वांचन, पृ० ४७

है। " ब्रह्म दीक्षा " में मृत्यु के समय का भावपूर्ण चित्र अंकित हुआ है। मृत शरीर सामने पड़ा है और शोक मग्न स्नेही एवं स्वजनों में किस प्रकार करुणार्द्र भावोर्मियां उठ सकती हैं, इसे कवि ने बड़ी स्वाभाविकता के साथ साकार कर दिया है :-

" विदाय लेशो, वीर !
दुनियानो अंत विदाय ज छे,
एक छेल्ली मीट थी जगत ने जोइ ल्यो !
शुं जगत वह्यु जोयुं ?
छेल्लेवुं स्नान करीं ल्यो संसारना मल धोई नाखो
अशुद्ध बनीं विशुद्ध ओढो । "[1]

वसन्तोत्सव : सन् १९०५

डोलन शैली में लिखी गई कवि की यह सर्वप्रथम कृति है। इसमें प्रणय के रंग, उल्लास और समाज के प्रत्येक नये दृष्टिकोण का संकेत है। यह शृंगार रस से पूर्ण रचना है। शृंगार के संयोग पक्ष का इसमें चित्रात्मक और भावपूर्ण वर्णन है। इसमें स्वयंभू प्रणय की कथा है जिसकी अंत में परिणति विवाह में होती है। कवि ने इसमें मुग्ध और विशुद्ध प्रेम का आलेखन किया है। समाज के नियमों से जो स्नेह का उच्छेदन होता है उसे बचाना है इसमें कवि की भावदृष्टि सामाजिक है। कवि ने इसमें निर्मल आत्म भावना से सुरभित प्रेम का मूल्यांकन किया है। संयोग शृंगार के वर्णन में भाव की निम्न लिखित पंक्तियाँ उत्तम प्रेम का अंकन सफलतापूर्वक करती है :-

" सुवासित तनुदेशने आलिंगतो
कुंकमोथी अभिषेकतो

१ केटलांक काव्यो, ब्रह्म दीक्षा, पृ० १०४

ऊंडा भावे आरत रचतो -------- पृ० १६

उमराड़ जतां मुग्ध प्रेमने चोळीमां भाली राखतो पृ० २२

त्हेना सहस्त्र कोटी रोम रोममांथी प्रेम प्रेम नितरतो हतो पृ० २४

जिज्ञासा की तीव्रता :

" पछी ए केवो भयंकर शब्द छे " पृ० २५

प्रणय की तीव्रता :

फूलफूलनी पांखडीए त्हमें मारां आंसू लोयां
नानकडा भुजबन्धे म्हें त्हमने वींटी लीधा
बाल कपोल, कोमल नयनो चुम्बन धारा थी रातां कीधां
आपणा स्नेह जीवननी अमीवेल रोपी पृ० २७
त्हेंना गाल उपरथी लज्जा रेखाओ धोई
त्हेंना मुखनुं सुधापान लीधुं पृ० ३०

इस प्रकार संयोग शृंगार से प्रस्फुटित कितनी ही उक्तियाँ प्रस्तुत कृति से उद्धृत की जा सकती है । प्रस्तुत काव्य कृति के विषय में स्वयं कवि की निम्न-लिखित उक्ति यहां उल्लेखनीय है ।

" ए वसन्तोत्सव गुर्जर देशनो छे, भरत खंडनो छे, पृथ्वीनी प्रजा प्रजानो छे, विराटनो छे, वसंत एटले संजीवन ने नवजुवन वसन्तोत्सव संजीवननुं, नवजुवननुं काव्य छे "[1]

वसन्तोत्सव गुजरात के कवि की कृति होते हुए भी उसके भाव राष्ट्रीय है । पंक्तियां दृष्टव्य :-

" लीलम लीली घटाओंमांथी (गुजरात के प्रति संकेत)

---

१ वसन्तोत्सव, कृतिनो संदेश, पृ० ५२

ठंडी ठंडी गिरिकंदराओमांथी (विन्ध्य और सह्याद्री के प्रति संकेत)
उघाडा रण पथार उपरथी (राजस्थान)
अगर चंदनना वन वनमांथी (मलयाचल)
महानद ने पुण्य पुराण आरे थी (गंगा प्रदेश)
रजत सरोवरनी कुंजोमांथी (काश्मीर)
ते नव वसंत गीतना घेरा प्रतिघोष थवा लाग्या
प्रशस्त मेव कांगरीसमा धवल गिरि शृंगो उपरथी
(हिमाद्रीमाला)[1]

कवि ने अपने शब्दों में कहा है कि " वसन्तोत्सवमांनी म्हारी भावना राष्ट्रीय छे खरी राष्ट्रीय छे पण मात्र राष्ट्रीय नथी आंतरराष्ट्रीय पण छे "।[2] उसकी यह व्यापक चेतना निम्नलिखित उक्तियों में दृष्टिगत की जा सकती है -

ग्रेटब्रिटन जेवडा नानकडा पहेलं सरोवरियाने वधाव्युं (ब्रिटन)
शृंगार श्री शो कान्त मांडवडो (फ्रान्स)
गंभीर सोहागवंती धनकुंज (जर्मनी)
हिमालयनी शुभ्र सखी शमी (स्वीट्झर लेन्ड)
वृक्षवृक्षमांनी वादळ छाया, विलोल विभूतिवंता -
मालव कूना सुन्दरताना मंडपो (ग्रीस ने रोम)
पहेली ज वार म्होरतो यौवन ने ऊंबरे पग मूकतो
मनोहरी न्हानकडो सहकार (युनाइटेड स्टेट्स)
ने तेनी पाछळ अनेरा पमरतुं, लघु मुग्ध चंदनवृक्ष (जापान)
वसंतनी विशुद्ध लीला ने कुमारिकाओ
फूलडे अभिनंदती[3]

ठठठठठठठठठठठठठठठठठ

१ वसन्तोत्सव, पृ० ५०

२ वसंतनो टहेलियो - ए व्याख्यानमांथी

३ वसंतोत्सव, पृ० ५७-५८

इस प्रकार कवि ने वसंतोत्सव समस्त विराट का बतलाकर उसमें आंतरराष्ट्रीय भावनाएं, प्रेम,एकता, सहानुभूति उभारे हैं ।

केटलाक काव्यो - भाग-२ : (१९०८)

इस काव्य संकलन में अनेक प्रकार के काव्य हैं - प्रेम परक, प्राकृतिक सौंदर्य परक, दाम्पत्य परक, भक्ति परक, नियति परक, वीरता परक आदि । इन गीतों में कवि का भाव-स्रोत अनेक विधाधाराएं करके अंत में भक्ति की तीव्रता से आनंद प्राप्त करना चाहता है । मुख्यता प्रेमपरक गीतों की है । इस प्रकार प्रस्तुत संकलन वस्तु और भाव-योजना की दृष्टि केटलाक काव्यो भाग-१ से बहुत कुछ साम्य रखता है । इनमें कवि ने प्रेम की तीव्रता का चित्रात्मक और कलात्मक वर्णन किया है, कवि ने प्रेम को आत्मा की मौलिक भूख बतलाई है और हृदय में उद्दाम वासनाओं का जागृत होना अवस्था विशेष का धर्म बतलाया है । कवि ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मनोरम वर्णन किया है ।

संयोग :

" यौवना शुं विचारती ? प्राणनी मरती लोचनमां डोलती [१]
फूल गुलाबी तारी ओढणी, त्हेमां छूपला छाया मोर :
ढाळी दृष्टे त्हेने प्रेरता, ए तो मुग्ध हृदय ना चोर "[२]

वियोग पक्ष :

" नयनोमां नयनो ढळीने हेतशुं
उजव्यो (उत्सव) स्हमनो परम प्रसंग जो :
एवा दिवस हता ते प्रियतम ! वही गया : "[३]

१ केटलाक काव्यो, पृ० २७

२ वही, पृ० ३०

३ वही, पृ० ३३

इसी प्रकार भावपूर्ण अनेक गीत है जिनके कारण कवि को " रसका कवि " या " ऊर्मिका कवि " आदि उपनाम दिये गये हैं ।

कवि की दाम्पत्य भावना आदर्श, दिव्य, सामाजिक और राष्ट्रीय थी । उद्दाम वासनाओं की उच्छृंखलता को रन्जु और गतिशील बनाने के लिये " दाम्पत्य जीवन ", मानव का अनिवार्य और स्पृहणीय अंग बतलाया है । दाम्पत्य परक गीतों में " लग्न तिथि " , " पुनर्लग्न ", " प्रेमनो संसार ", " सौभाग्यवती " आदि में उत्कृष्ट दाम्पत्य भावनाओं का चित्रात्मक और कला-पूर्ण वर्णन है । इस प्रेम स्वरूप में प्रणय की मस्तीभरी तीव्रता आत्मा से तादात्म्य प्राप्त कर सौंदर्यदर्शन के अनेक क्षेत्रों में प्रक्षिप्त हो जाता है । इस क्षेत्र में प्रेम, जीवन में केन्द्रस्थ बन कर समाज को गतिशील करता है ।

संक्षेप में कवि ने इसमें प्रेम सौंदर्य और अनेक विध सामाजिक भावनाओं का चित्रण किया है । उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" डोले ए नीरमां व्हाली । आपणुं न्हानुं नावडुं
स्थो तूफान, तरावी ब थौं पूर संसारनुं वहुं "[1]

इन पंक्तियों में पत्नी की महत्ता का यशोगान किया है :

" लेशुं पुनः प्रियतमे । निज लग्न दीक्षा,
पीशुं पुनः परम कोमल लग्न भावो :
नै एम देवि । प्रतिवर्ष सुलग्न योगे
लग्न व्रते प्रिय । धरीशुं पुनः पुनः ते "[2]

भक्ति परक :

गीतों में कवि न्हानालाल की तन्मयता तथा प्रभु-मिलन की आतुरता

1 केटलांक काव्यो, पृ० ५०
2 वही, पृ० ४८

अभिव्यक्त हुई है। यहां तक कि उनकी आंखों में आंसु भी आ जाते थे। इन गीतों में हरिदर्शन की तीव्रता, विनय, आत्म समर्पण, मानव की असमर्थता, उन्नतिशील जीवन के लिये प्रार्थना की है। इन पंक्तियों में कवि की समर्पण भावना दर्शनीय हैं :

" पिता पेलो आघे जगत वींटतो सागर रहे,
अने बेघे पाणी सकल नदीना ते गम वहे,
वहो ऐवी नित्ये अम जीवननी सर्व झरणी
दयाना, पुण्योना तुज प्रभु। महासागर भणी " [1]

इससे स्पष्ट है कि कवि की भक्ति भावना स्वार्थ परक न होकर भाव परक रही है।

प्रकृति परक गीतों में कवि ने प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन आलंबन और उद्दीपन के रूप में किया है। प्रेम की तीव्रता के अतिरेक में कवि प्राकृतिक सौंदर्य से ~~उद्~~ उद्दीप्त होते थे।

" सौभाग्यना सुधाकर सरिखडी, सुन्दरतानी वसन्त जेवी
स्वामी स्नेहनी प्रतिमा समी गृहलक्ष्मी गृहद्वारे डोलती " [2]

उपर्युक्त उदाहरण में कवि की भाव-योजना प्रभावात्मकता से संयुक्त है। इसी प्रकार " गिरनारने चरणे " शीर्षक प्राकृतिक सौंदर्य का गीत पूर्ण रूप से चित्रात्मक, कलात्मक और नियति के प्रति श्रद्धा-भाव वेष्टित है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह काव्य-पुष्प अनेक सुवासित सौरभ भाव युक्त पंक्तियों का मनोरम संकलन है। " वीरनी विदाय " गीत में पूरा वीर रस पूर्ण वर्णन है और " स्वदेशनी दाभन " राष्ट्रीय भावना परक गीत है। इस प्रकार कवि की लेखनी विविध क्षेत्रों में प्रवाह मयी रही है।

---

१ केटलाक काव्यो, पृ० १६

२ वही, पृ० ४१

चित्रदर्शनो : सन् १९२१

इस संकलन में काव्यात्मक १९ रेखाचित्र हैं जो अनेक भावरंगी और कलारंगी है। गीतों का परिचय इसके पूर्व के अध्याय में दिया जा चुका है, जिससे प्रकट है कि ये गीत इतिवृत्तात्मक होते हुए भी भावात्मक हैं। अपनी जन्मभूमि के प्रति कवि की भावनाएं लक्षित होती है। इसके साथ ही प्रकृति-चित्रण के भी इनमें भावपूर्ण वर्णन मिलते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से वे नियति की सत्ता का प्रभाव निहारते थे। उस नियामक सत्ता या भूमा का प्रभाव प्रकृति परक गीतों में लक्षित होता है। अनेक जगहों पर मानवीकरण और प्रतीक योजना लक्षित होती है -

" वदन पुनमचंद शुं विहासे
जलधरनुं धरी ओढणुं विलासे
परिमल प्रगटावती उमंगे
शरद सुहाय रसीली अंगअंगे। " [1]

तथा

" उदार लोचन, प्रसन्नवदन शीळ शीतल
चन्द्रिका विस्तरती पूर्णिमा जेवी
उरदेहनी वसन्त विस्तरती "[2]

युवावस्था के प्रणय-प्रेम की भावना से प्रेरित एवं उद्दाम वासना के प्रभाव से प्रभावित होकर कवि ने प्रणय-प्रेमपरक " सौभाग्यवती " और " नवयौवना " काव्य लिखे हैं जिनका उल्लेख " बैठलाक काव्यो भाग-२ " में भी किया गया है। इसमें प्रणय-प्रेम का मौलिक रूप और तज्जनित भावनाओं का वर्णन है। " कुलयोगिनी " गीत में दाम्पत्य भावनाओं की तीव्रता और ओजस्विता है। कवि ने यत्र तत्र दाम्पत्य

१ चित्रदर्शनो, पृ० ७
२ वही, पृ० १४

भाव को ही संसार का मूल भाव माना है। और अंत में पत्नी को वंदना भी की है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" करीने सेवना म्हारी कीधो त्हैं नित्यनो ऋणी
नमेरो-नगुणो छुं हुं, तुं तो साध्वी महागुणी
म्हारा कुलमां, बीजे ज्हां हो त्हां ओ तपस्विनि।
नमो-नमो, म्हादेवी। ॐ नमो, कुल योगिनी। " [1]

कवि ने " ताजमहल " को प्रेम के प्रतीक का रूप मानकर निर्व्याज प्रेम का प्रभाव और शृंगार रस की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" प्रेमनी कविता केरो ? के ए जाहोजलालीनो ?
सौन्दर्यनो ? कलानो ? के ताज आ मुगलाईनो ? " [2]

यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि कवि अपनी काव्य प्रसादी या काव्य सफलता माता, पिता और गुरु प्रताप से ही मानते थे। वे पूर्ण संस्कारी और पूर्ण भारतीय थे। कवि प्रेम, सौन्दर्य और भक्ति के ही कवि नहीं थे। वे सद्कृत्यों और महापुरुषों के प्रति पूर्ण आस्थावान भी थे। कवि ने अपनी पूर्ण आस्था भावना, प्रीति और प्रतीति श्री अमृतलाल पढियारजी के प्रति और गांधीजी के प्रति ये दो काव्यों में प्रदर्शित की है। श्री पढियार जी को उन्होंने सौराष्ट्र का साधु कहा और गांधीजी को " गुजरात का तपस्वी " कहा है। " सौराष्ट्रनो साधु " मां कवि ने ये गुण बतलाये हैं : वे पूर्णिमा समान तेजस्वी बाबाजी (साधु) परम सन्यासी, पूर्ण ब्रह्मचारी, गुजरात का परिव्राजक, पूर्ण राष्ट्र प्रेमी, भक्तराज, छोटे गुजरात का छोटा बुद्ध वैदिक ज्ञान का ज्ञानी, लोक सेवाभावी आदि। इन विशेषणों के आधार पर कवि ने अपनी पूज्य और पावनकारी भावनाएं उस संत पढियार जी के प्रति अर्पित की है। इन दो काव्यों में कवि की मानवतावादी

---

१ चित्रदर्शनो, पृ० १६
२ वही, पृ० ६१

भावना राष्ट्रीयता और सामाजिक भावना के दर्शन होते हैं ।

पितृ तर्पण :

यह करुण प्रशस्ति काव्य है । इस करुण रस प्रधान काव्य को वैयक्तिक अनुभूति का काव्य कहा जा सकता है । कवि ने अपने स्व० पिता दलपतराम के प्रति हार्दिक पश्चात्ताप की भावनाएं व्यक्त करके " पितृ तर्पण " किया है । अपनी अनघडता के कारण कवि ने पिता के प्रति जो जो भूलें की उनका तीव्र पश्चात्ताप इसमें वर्णित है । इसमें भारतीय संस्कृति के अनुरूप पिता के प्रति पूज्य भावनाएं और पश्चात्ताप के भाव बतला कर करुण रस प्राधान्य कृति की विशेषताएं बतलाई है । इसमें शब्दचित्र और भावचित्र भी है । कवि की पश्चात्ताप की वाणी में भावनाओं की प्रामाणिकता की गूंज है । इसका चौथा खंड श्रेष्ठ है । इसमें पार्थिवता के साथ दार्शनिकता का भी चित्रण है । " आपना मृत्यु ए तात । आशां नीर ऊंडा कीधां " अने जल्ना ए ऊंडाणनुं दर्शन कवितामां थाय छे पिता के प्रति किये अन्याय कवि को इतने कष्ट देते हैं कि कवि का कंठ स्वयं पर तिरस्कार व्यक्त करता चिल्ला उठता है :-

> " बहु अवगण्या, तात । असत्कार्यां, अनादर्यां
> ने अपमान ने मारे आ हाथे देव अर्चिया " [1]

उपर्युक्त उक्तियों के एक-एक शब्द के साथ मानों रचयिता का हृदय सहज रूप से निकल पडता है । यह प्रत्यक्षतः पश्चात्ताप वस्तुतः सम्बन्ध-भावना जनित वियोग-करुण का परिचायक है ।

कवि न्हानालाल का यह बहुत प्रसिद्ध काव्य है । इसके संबंध में गुजराती में ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" शोक अने शान्तिना बे कांठा वच्चे आ " करुण प्रशस्ति " नो प्रवाह

---

१ चित्रदर्शनो, पृ० १११

घुघवे छे । जे प्रवाहमां जीवन अने मृत्युना चिंतननी सरितानी धाराओ अकळ रीते मळी गई छे । आ करुण प्रशस्तिमां घुघवाटने जोवा जेवो छे अने जेना भावचित्रोने सांभळवा जेवा छे ।"[1]

इस प्रकार इस काव्य में करुण और शान्त दोनों रसों का सम्यक् मिश्रण है। इसी काव्य संकलन में कवि ने परमधर्मोपदेशक, भारतीय आर्य धर्म उद्धारक, महर्षि दयानंद सरस्वती के प्रति भी विशुद्ध प्रेम की पूज्यभाव की, सामाजिकता की और राष्ट्रीयता की भावनाएं व्यक्त की है। इस प्रकार राजा के दिव्य गुणों की चर्चा करके महाराजा सयाजीराव के प्रति भी भावपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। संक्षेप में कवि ने यत्र तत्र भाव सौन्दर्य, चित्रसौन्दर्य और प्राकृतिक सौन्दर्य का त्रिवेणी संगम सा उपस्थित कर दिया है।

प्रेम भक्ति भजनावली : सन् १९२४

तृतीय अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि कवि द्वारा अलग अलग लिखे हुए यह भजनों का संकलन है। इन गीतों में कवि की भक्ति भावना और उस भावना से प्रेरित प्रतीक्षा, जिज्ञासा, तितिक्षा, उद्विग्नता, तीव्रता आदि भावों की व्यंजना हुई है। भक्ति के साथ-साथ मानव-जीवन की गहराइयों के भी काव्य इसमें संकलित है। भक्ति का मूल्यांकन करते हुए कवि ने बतलाया है कि भक्ति आत्मा का भोजन है। भक्ति के बिना आत्मा भूखा रहता है। कविने ब्रह्म परायणता को ही भजन कहा है। हरि का दर्शन प्राप्त करने की कवि की आतुरता यहाँ दर्शनीय है।

" म्हारे सूनी आयुष्यनी शेरीओ, हरि। आवो ने
म्हारे सूनी सौ जीवननी वाट हवे तो हरि आवो ने। "[2]

---

१ आपणी कविता समृद्धि, त्रीजी आवृत्ति, पृ० १७२-७३

२ प्रेम भक्ति भजनावळी, पृ० ३२

इसमें " हवे " शब्द कितना प्रभाव पूर्ण और तीव्र आतुरतापरक है। कवि ने पवित्र प्रेम की तुलना परब्रह्म के साथ की है। निर्व्याज प्रेम को दिव्य, अनुपम और ब्रह्म के समकक्ष माना है। परम प्रेम परब्रह्म से संबंधित ये गीत हैं :-

" प्रेमने हिंडोळे, प्रेमनो पदारथ, प्रेमनो संचार, प्रेमानंद ज्योत,
ब्रह्मांड कहे छे के ब्रह्म छे, ब्रह्मानंद, ब्रह्मानंद खेला विराटनो
हिन्डोळो, शतदल पद्ममां पोढेलो आदि भजनों में प्रेम का अलौकिक और आध्यात्मिक रूप प्रदर्शित किया है। कवि पार्थिव भावभूमिका से आगे बढकर अपार्थिव या आध्यात्मिक की ओर अग्रसर होता है।

कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से भी नियति की महानता, दिव्यता और भूमा के प्रभाव से प्रभावित होता है और भावोद्रेक में नियति के प्रति अपनी दीन वाणी में कोमल और मधुर भावों को व्यक्त करता है।

इस प्रकार ये भजन भक्ति की भावना से भरे हैं और भारतीय संस्कृति के आधार पर कवि ने आध्यात्मिक प्रेम का निरूपण कर आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। विषय-वस्तु से ही स्पष्ट है कि ऐसी रचनाओं में मार्मिक भाव-योजना की गुंजाइश कम ही है। किन्तु जहां कवि नियति के प्रति कृतज्ञता तथा समर्पण की भावना से प्रेरित होकर भावाभिव्यक्ति करता है वहां वह मार्मिक बन पडी है।

महाना महाना रास भाग-१-२-३ : १९१०-१९२८-१९३७

प्रथम भाग में ८० रास हैं, द्वितीय में ५७ रास हैं और तृतीय भाग में ७१ रासडा (Ballads) हैं। रास के सभी गीत भावमय और संगीतमय है। रास में वाणी का उर्मिमय देह भावना का लक्षित सौन्दर्य और कलात्मक संगीत ये तीन मुख्य तत्त्व होते हैं। न्हानालाल के पूर्ववर्ती कवि मीरांबाई प्रेमानंद दयाराम, दलपतराम इस कला में निपुण थे। किन्तु इनके रासमंदिर पर मानों न्हानालाल ने सुवर्ण कलश चढाया। न्हानालाल ने रास में कल्पना की

तीव्रता के साथ काव्य प्रतिमा को भी प्रामाणित कर दिया है । उनके रास संगीतमय, नृत्यवाहक और कलादर्शी हैं । उनमें कविता, संगीत, ध्वनि, लय, रस, वाणी ये पूर्ण रूप से भरे हुए हैं । इन तत्त्वों का इतना सामंजस्य है कि उन्हें हम अलग नहीं कर सकते । कविता और कला, संगीत और नृत्य, डोलन और हींच और भाव और वर्णन में पूर्ण अद्वैत न्हानालाल के रास के गीतों में लक्षित होता है । इसके साथ साथ तत्कालीन परिस्थिति का भी ध्वन्यात्मक वर्णन मिलता है ।

न्हानालाल की रास कविता में प्रस्फुटित एक भी भाव ऐसा नहीं है जिसमें व्यापक सौन्दर्य न हो अर्थात् उनके सब रास सौन्दर्य प्रधान और ऊर्मिप्रधान है । उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" सूनो हिन्डोलो म्हारा स्नेहनो, ने कांइ सूनो आ देहनो हिन्डोल रे
स्नेह धाम सूनां सूनां रे ।
व्हालानी वागे दूर वांसळी, नाथ । आवो ओलो एक ओल रे ।"[1]

" कोई स्नेहीना पालव लोचन लूवे रे लोल
नीचे ळळके ऊर स्नेह आत्म ए जूवे रे लोल " [2]

" हुं तो वगडानी वाटे चाली कदंबना फूल लेवा
एह आव्या जाणे बने वनमाळी कदंबना फूल लेवा " [3]

" पियुजी म्हारा भवसागरनुं नाव जो ।
ए नावे हुं अजब सुकानी अलबेलडी " [4]

" हरि । होम्यां हुताश मां शे फूलो ? ने देवनां दान दीधां,
ए तो आप के ब्रह्माजी मूल्यो ? के धारकां केम कीधां ? " [5]

ooooooooooooooooo

१ न्हाना न्हाना रास भाग-१, पृ० ८४ (२) वही, पृ० ११२
३ वही, पृ० २१ (४) वही, भाग- २, पृ० ८०
५ वही, भाग-२, पृ० ४२

न्हाना न्हाना रास भाग-१ में रासडा का संकलन है। रास में प्रेम और माधुर्य की भावनाओं की तीव्रता रहती है। वे शृंगार रस परक होते हैं। " रासडा " वीर रस परक होते हैं। रासडा का भाव-सौन्दर्य, शौर्य, और ओजस्विता लिये हुए हैं। जिनमें यत्र-तत्र सहायक रूप में शृंगार परक उक्तियाँ भी आ जाती हैं :-

" पुण्यना प्रकाशमां के पापना अन्धारमां
हैयाना रत्न केरी लाण सुनाण। ल्हमें शां शां जाण्यां रे ?
सलूणा स्हवारनी के शीळी मीठी स्हांजनी
प्रेमीओना प्रेमनी रसमाण
सुनाण। ल्हमें शां शां जाण्यां रे ? " [1]

इन गीतों का भाव सौन्दर्य, कल्पना सौन्दर्य और ध्वनि, अब कन का अद्भुत सौन्दर्य है। कवि का काव्य रसोन्मत्त स्वरूप की सर्जना करता है जो प्रेरणादायी और शाश्वत भावनामय है। इनके रास के गीतों में व्यापक स दर्शन की झांकी मिलती है। प्रकृति चित्रण मानव जीवन के साथ सामंजस्य प्राप्त करता है।

नारी के हृदय में जो भाव केन्द्रित होते हैं उनका यथार्थ और भावपूर्ण वर्णन कवि ने यत्र-तत्र इन रास के गीतों में किया है। नारी-हृदय की मृदुता, उसकी कतुता तथा सुकुमार भावनाएं, उसके प्रकृत सौन्दर्य को दीप्ति प्रदान करती हैं। इनके अतिरिक्त उसकी मुग्ध कामनाएं, उसकी उद्वेलित ऊर्मियां, लावण्य की विशिष्टता, उसकी गहरी सौभाग्य वांछना, आशा-निराशाएं और सहयोग के लिये उसकी तीव्र उफनती भावनाएं - ये सभी भावपूर्ण तत्व न्हानालाल के रास गीतों में मूर्त हुए हैं। प्रत्येक भाव, प्रत्येक वृत्ति उनका भावपूर्ण चित्र लेकर हमारे समक्ष आता है अर्थात् इनमें भावों का चित्रात्मक वर्णन है, जिनके निर्मल दर्पण में व्यक्ति अपना प्रतिबिंब निहारता है। अर्थात् उनके रासों में साधारणीकरण का

---

१ न्हाना न्हाना, रास भाग-१, पृ० २१

पूर्ण प्रभाव है। कवि के रास ऊर्मियों का आत्मलक्षी निरूपण मानव हृदय की व्यापक रसानुभूति का शास्वत सहभागी बनता है। इतना ही नहीं परंतु समग्रतया जीवन के केन्द्रस्थ रसानुभूति में से मुक्त होकर प्रभुता का मंगलात्मक दर्शन गढ़ने में भी पूर्ण रूप से हाथ बंटाते हैं। इस प्रकार न्हानालाल के रास जो रस दृष्टि से गुजराती की रास-कविता का उच्च शिखर है वे व्यापक दृष्टि से कवि के मांगल्यमय जीवनदर्शन रूपी महासागर में चिरंतन बहती एक सौभाग्यशाली सरिता के समान घुल मिल जाते हैं। संक्षेप में निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" युग युग ध्यान विलीन, उर्मीमे काठ सिन्धुने तीर
बजावे वंशरी मध्य सुधीर - "[1]

इस प्रकार न्हाना न्हाना रास भाग-१-२-३ में कवि ने अपने हृदय के संपूर्ण प्रेम, माधुर्य और सौन्दर्य के भावों को प्रवाहित किया है।

गीत मंजरी :

इस संकलन में गीतों की भावसृष्टि प्राणवान और प्रेरणा परक है। प्रेम और माधुर्य के भाव जो इन गीतों के प्राण हैं, बिखरे पडे हैं। गीतों को पढ कर सामाजिकों का साधारणीकरण होता है और ये गीत प्रेम के गीत, भावना के गीत, मानवता परक गीत, प्राकृतिक सौंदर्य परक गीत आदि सब प्रकार के हैं। कवि ने नियति की महान सत्ता का भी अपने गीतों में स्वीकार किया है।

दाम्पत्य स्तोत्रो, सोहागण तथा पानेतर :

ये तीन काव्य संकलन भाव साम्य के कारण एक साथ लिये जा रहे हैं। इस साम्य को तृतीय अध्याय के अंतर्गत लक्ष्य किया जा चुका है।

---

१ रस दृष्टा कविवर, बालचन्द्र परीख, पृ० ६०-६१ का हिन्दी अनुवाद

इन वाक्यों में कवि ने यह बतलाया है कि युवावस्था का उद्दाम और उच्छृंखल प्रेम वैवाहिक जीवन में परिणति पाकर किस प्रकार सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवीय बन जाता है। इसके पूर्व की अवस्था बड़ी, क्रान्तिकारी होती है, जिसमें प्रणय की मस्ती से युक्त आकांक्षाएं जीवन की परितृप्ति के लिये मार्ग ढूंढती हैं। इस अवस्था में प्रेमी उद्दाम वासना-पूर्ति की लालसा में आत्मा से निःसृत एक रससृष्टि की तृप्ति चाहता है। दाम्पत्य जीवन में, प्रेम केन्द्रस्थ बनता है और लग्न भावना का पुण्योज्ज्वल शुचि स्वरूप प्रकट होता है। ऐसा प्रेम, जीवन की वास्तविक भूमि पर केन्द्रित होता है और माया मोह के सांसारिक बंधनों को जीवन की शृंखला रूप में नहीं अपितु प्रेम को दिव्य सामाजिक प्रगति के रूप में प्रतिस्थापित करता है। इस प्रकार यौवन का मुक्त प्रेम, मानवता का केन्द्र प्राप्त करके जीवन की सार्थकता के लिये लग्न द्वारा प्रगतिशील रहता है। फलतः दाम्पत्य की कृतार्थता का अनिवार्य प्रतीक उसके सर्वांगी विकास का श्रेष्ठ साधन बन जाता है। सांसारिक परिस्थितियों में, जगत् के सुख-दुःख में जीवन की कठिनाइयों में लग्न आत्मा की एकता के माध्यम से नर नारी को सदा प्रेम के एक सूत्र में बांध कर रखता है और सृष्टि के द्वैत में अद्वैत का अनुपम दर्शन प्राप्त करने के लिये पतिपत्नी को आमंत्रण देता है। प्रेम की यह एकात्मताव्यष्टिपरक होते हुए भी समष्टि परक होती है। यदि ये भाव सिर्फ व्यष्टि पारक ही रहे तो जीवन संकुचित बन जाता है और समष्टि परक होने से जीवन में उदारता आती है और मनुष्य मानवीय गुणों का सत्कार कर जीवन विकास करता है।[1]

ऐसी प्रेम की रसभरी भावनाएं, एकात्मता पतिपत्नी के हृदय में सदा प्रफुल्लित रहती है, और वही जीवन सामाजिक, मानवीय और राष्ट्रीय बन जाता है। इस प्रकार के जीवन में प्रेम और प्रसन्नता का उत्कंठा और सौम्यता का, मुक्त विहारी आत्मा स्वेच्छा से बंधन स्वीकारता है। आदर्श निष्ठा बलिदान का

---

१ बालचन्द्र परीस, रसदृष्टा कविवर, पृ० १२६ के आधार पर

स्वागत करती है, जहाँ समर्पण शुचिता प्रकट करती है। उपर्युक्त दृष्टिकोण एवं भावमूलक चेतना को कवि न्हानालाल ने अपनी कृतियाँ, इन्दुकुमार, जयाजयंत, जहाँगीर, नुरजहाँन, आदि नाटकों में और " ताजमहल " और " संस्कृतिनुं पुष्प " जैसे काव्यों में प्रवाहित किया है जिसे पढकर सामाजिकों का साधारणीकरण होता है। दाम्पत्य स्तोत्र की भावनापूर्ण पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं :-

" दाम्पत्य भावों जनना छाया देवभावनी ;
पूरो वसन्तनी राणी सौना सौ सदमनोरथो ; "

कवि ने स्त्री का मूल्यांकन तीनों रूपों में किया है ; कुमारिका, सौभाग्यवती और माता।

सोहागण - आत्मलक्षी भाव काव्य है। इसमें कवि ने अपनी पत्नी माणेकबहन के संबंध में ही पूरा संकलन तैयार किया है। इसमें माणेक बहन की बाल्यावस्था से लेकर मातृअवस्था तक का भावपूर्ण चित्रण है।

" पानेतर " संकलन में भी वैवाहिक जीवन का ही महत्त्व कवि ने बतलाया है लेकिन इसमें कवि ने विज्ञान का सहारा लेकर पुरुष और स्त्री को Positive और Negative ends के रूप में बताकर प्रकाश के लिये दोनों की एकता सूचित की है, उदाहरणार्थ -

भावपूर्ण पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :
" आत्मन् फूवारानी सेरो उछाळवी
ने आरती आंखडीथी उतारवी
आतिथ्य तो छे उर ढोळ्यां हले।
महेमानी छे भव्य महानुभाविता। " [1]

---

1 सोहागन, पृ० २१

सौभाग्यवती स्त्री के प्रतीक :-

" सौभाग्य कंकणों हाथे, माले सौभाग्य चन्द्रक:
कंठमां मंगलसुत्र, देहे सौभाग्य चुन्दडी, "[1]

पानेतर में भी कवि ने द्वैत भावों का अद्वैत में समाहार किया है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" विचरे चन्द्रनी साथे चन्द्रनी चारु चन्दनी
देहशुं संचरे जेम देहनी छांय माधुरी।
पग कीधी अग्निचर्चा पगलीमां पगली पूरी "[2]

आँज अने आगर : (१९२२)

यह एक लघु कथा काव्य है। इसमें प्रणय का मधुर निरूपण तो है ही साथ साथ ग्राम-जीवन के अनेक प्रश्नों का भी निरूपण किया है जिसका सारांश पूर्व के अध्याय में दिया गया है। इसमें शृंगार रस का चित्रण है। इस रस से संबंधित संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण कवि ने किया है। कवि ने प्रेम और स्नेह प्राकृतिक सौन्दर्य का एक उपकरण भी माना है उसीके आधार पर कवि ने काल्पनिक शरद और मेघ की भी कथा प्रस्तुत की है। कवि ने भूमिका में ही लिखा है :-

" स्नेहीओ सौ निजनिजना यमुना घाटे
निजनिजना ताजमहेल बांधे छे "

" शृंगार रस में नायक-नायिका आलंबन आश्रय हैं। रसों में केवल शृंगार ऐसा रस है जिसके आलंबन एवं आश्रय में परस्पर विनिमय हो जाता है। आश्रय आलंबन भी बन जाता है और आलंबन आश्रय। आश्रय नायक या नायिका की मानसिक, वाचिक,

१ सोहागन, पृ० ४४ (२) पानेतर, पृ० ११

कायिक, (चुंबन, परिरंभण, स्वेद, कंप, आदि) चेष्टाएं अनुभाव हैं तथा मद, व्रीडा, आवेग, चपलता, गर्व, आदि संचारी भाव हैं। उद्दीपन विभाव के अंतर्गत एक ओर तो पात्र (नायक-नायिका)-गत वेशभूषा एवं उनकी विलास भंगिमाएं हैं तथा दूसरी ओर बहिर्गत चंद्रमा, ज्योत्स्ना, वसंत, पावस, आदि परिवेश है। शृंगार रस की सम्यक् निष्पत्ति के लिए नायक-नायिका दोनों का परस्पर अनुराग आवश्यक है "।[1]

प्रस्तुत कृति के नायक-नायिका ओज और अगर हैं। दोनों में समान रूप से प्रणय की तीव्रता लक्षित होती है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" अगर " सिवाय अन्य शब्दभंडार
ओज जाणे भूली गयो हतो।
वंटोळमां पांदडां वटो : ळी जाय
एम नाम एनी लोचनाती "[1]

"नींदमां नींदरता आभ ने जोई जोई ने अगर थाकी,
हैयुं भराई -उभराई ज्युं थयुं त्यहारे नमननी सीम उपर
ओजना ओछायो उग्यो "[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में " ओज " और " अगर " के संयोग शृंगार का भावपूर्ण वर्णन है। दोनों में समान रूप से भावों की तीव्रता लक्षित होती है।

" शृंगार रस के आचार्यों ने शृंगार के पक्ष में वियोग या विप्रलंभ का बहुत प्रभाव बतलाया है। उसी से ही प्रेम की परीक्षा होती है। कवि न्हानालाल मुख्यतया प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। अनुराग के प्रबल रहते हुए भी प्रिय-संयोग में बाधा होने पर प्रेमी

---

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २९

२ न्हानालाल, " ओज अने अगर ", पृ० २०

मन की निर्बाधित व्याकुलता वियोग शृंगार है। प्रिय प्रिया की मनः प्रतिकूलता इसकी अनिवार्य शर्त है। सान्निध्य में बाधा रहने के कारण इसका स्वरूप दुःखात्मक होता है। वियोग वेला में चित की वृत्ति तीव्र हो जाती है। प्रेमी मन प्रेम पात्र से संबंधित अतीत का लेखा-जोखा करने लगता है। उसकी विभिन्न चित्ताकर्षक रूप-मुद्राएं मानस में अंकित होने लगती है। उसके सान्निध्य में प्राप्त मधुर सुखात्मक क्षण मन को मथने लगते हैं। प्रकृति के मादक परिवेश व्याकुलता को और बढ़ा देते हैं। भावों के तुमुल आलोडन से मन उन्माद की दशा पर पहुंच जाता है। "[1]

न्हानालाल के कथा काव्य " ओज और अगर " में इस वियोगवृत्ति का प्रकाशन अनंत मधुरिमा के साथ हुआ है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियां उल्लेखनीय हैं :-

" केटलाय ने शश पर झूलुं लाग्युं
ओज तो जोग महीए जाय ने अवध थी पाछो वळे
पना प्राण पांख वाळे-न नहि निश्वास नाभिमांथी ऊठता के
हवे स्मरणोमांज रमवानुं ? आज दर्शनना ये सौभाग्य नहि ? "[2]

" त्हारो अगर आथमी म्हारीए शरदे आथमी
ए शरद वीजळता हती, अन्धकार दर्शावीने फबकी गई
अल्पायुषी, जीवन सकैल विमुख, अगर माता म्होरतां मुइ "[3]

" अगरना समस्त आत्माए पोकार्युं के " हुं भूली " " हुं भूली "
अगरनी रसलोलुप आंखडली ओजने शोधवाने नीसरी
वण निर्जन गुफाओ सभी दिशाओमां भटकी पाछी वली
ए भूलना प्रायश्चित्तनां अगरे के आंसु पाड्यां " [4]

---

1 डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २४
2 न्हानालाल, ओज अने अगर, पृ० ५६
3 वही, पृ० ११६
4 वही, पृ० २४

यह दुःखान्त लघु कथा है । " अगर " माता बनने से पहले ही मर जाती है । ओज जीवित रहता है और अगर की याद में करुण कल्पांत करता है –

" कुळना पूतळा समो ओज कल्याणीने कुंकुम घाटे बेठो हतो,
पाळे जाणे जडाइ गयो हतो
कल्याणीने आ आरेथी कोयल बोली, ने पेले आरेथी मोरलो टहूक्यो
ओजने कल्याणीना बोल संभळाया, गेबी गहन अगोचर
जाणे उरना भाव उच्चरता होय, जाणे अमृना हार तूटता होय,
जाणे कल्याणीमां जळ बोलतां होय, जाणे कळकळता चक्रवाकने
चक्रवाकी प्रत्युत्तर आपती होय
स्नेहना समणा समा सुकोमळ
मुग्धाना मार्दव समा मनोगम
प्रेमोच्छ्वास समा प्रेरणामयां
हवामांथी ओज अगरना शब्द सुणतो
हैयुं ठालवतो जाय ने नयणां धोतो जाय
आन्हिक ~~आह्निक~~ मूळी ओज अन्तरिक्षमां उडतो
आंसुने आशा सूझ्यां त्यहारे निराशानी खाख चोळतो ओज
" ए तो अगर बोलावे छे " कही
अगरनी चिताए जइ बेठो
तेज ढोळी ढोळीने आम त्यहां ओजने न्हवरावतां हतां " [१]

इस प्रकार शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष से संबंधित काल्पनिक शरद और मेघ की कथा की भी रचना करके कवि ने प्रेम के प्रतीकों का कल्पित रूप खड़ा कर दिया है ।

__वेणुनाद काव्यो भाग–२ : सन् १९..__

इस काव्य संकलन में चार पंखुडियां हैं । म्हारो मोर, कुंकुम जन्म,

---

१ न्हानालाल, ओज अने अगर, पृ० ९०

पारेवडां, संस्कृतिनुं पुष्प । इन पंखुडियों का परिचय तृतीय अध्याय में दिया गया है । ब्रह्म जन्म चिन्तन प्रधान कृति है जिसे छोड कर शेष खंडों का अलग अलग भाव होने से इस अध्याय में हरेक का भाव सौन्दर्य स्पष्ट किया है ।

म्हारो मोर :

इस कथा काव्य में मोर की हत्या के कारण रानी का करुण कल्पांत करुण रस का द्योतक है । मरे हुए मोर को देख कर रानी के अंतर में जो शोक की तीव्रता लक्षित होती है उसे पढकर मन द्रवीभूत हो जाता है । रानी का करुण विलाप सुनकर और शोकग्रस्त दशा देखकर जोगी भी प्रभावित हो जाता है । इस कथा में आवेग और बुद्धि का प्रभाव बतलाया है । यह मनोवैज्ञानिक स्तर पर लिखी गई कथा है । रानी के अंतर में तीव्र आवेग है, योगी रानी की शोक ग्रस्त दशा को देखकर अपनी बुद्धि का संतुलन बनाये रखता है और रानी को बौद्धिक मदद से और बडी समझदारी से समझाता है कि संसार का जीवन मरण का तत्त्व क्या है । तीव्र शोकावेग के कारण रानी के मनोवेगों की तीव्रता यहां दृष्टव्य है :-

" भावना ये मागशे म्हारी ? सहकार म्हारा सूना थशे ?
आज वेडाइ म्हारी आशावेल आज आथम्या म्हारा आत्माना कोड "[1]

इसमें यत्र-तत्र दार्शनिक भाव भी व्यक्त किये गये हैं । इसमें जोगी ने मानव जीवन की जन्म मरण विषयक शाश्वत अवस्थाएं मार्मिकता के साथ प्रस्तुत की हैं ।[2]

इस प्रकार इस लघु कथा काव्य में करुण रस के भाव, दार्शनिक भाव-संसार, माया, जन्म, मरण, सुख, दुःख आदि का स्थायित्व और मानव कल्याण की भावनाएं उभारी गयी हैं । यह पूरा कथा काव्य भावात्मक और चित्रात्मक है ।

१ केटलांक काव्यो, भाग-२, पृ० १२ (२) दृष्टव्य : केटलांक काव्यो, पृ० २१ तथा २४

पारेवडां :

इस लघु काव्य में कवि ने अपने स्वभाव के अनुसार प्रेम, माधुर्य और स्नेह का मूल्यांकन किया है। कबूतर और कबूतरी ये प्रतीक के रूप में हैं। इसके साथ मानवता के भी विचार प्रस्तुत किये हैं। कवि ने मानव जगत् का विस्तार पुरुष और स्त्री दोनों के माध्यम से माना है उसमें भी स्त्रियों का अधिक मूल्यांकन किया है। पुरुष और स्त्री को सद्भाव से, प्रेम से, माधुर्य भाव से खूब मिलकर रहने की सीख दी है। स्त्री जितना चाहे और जैसा चाहे वैसा गृहस्थाश्रम में विकास कर सकती है। यह सब स्त्री के हाथ में है। काका कालेलकर ने कवि न्हानालाल को " नारी गौरव ना कवि " कहा है। यह मुख्य तत्त्व कबूतर और कबूतरी के ब्याज से बतलाया है। पुरुष और स्त्री एक-दूसरे के पूरक बनकर रहे और यह संसार रूपी नैया को सम्हाले। कवि की निम्नांकित पंक्तियाँ भी द्योतक हैं :-

" पांखमां पांख पोढाडी चांचमां चांच आपी लोचनमां लोचन
चांपी उरथी उरने स्पर्शी स्पर्शी एक बीजाने ए निहाळी रहेता
एक बीजाना नयनोमां समाता एक बीजामां निजनी संपूर्णता समजता।"[1]

प्रेम और माधुर्य के साथ साथ कवि ने मानव सेवा के भाव भी प्रस्फुटित किये हैं। कबूतर और कबूतरी कठिन परिस्थिति में भी मैना और पोपट का स्वागत करते थे और अपनी ही तरह रहते थे। इस प्रतीक से कवि ने मानव सेवा का आदर्श व्यक्त किया है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" दुःखे दीठा हता थोडांक
दाणो, पाणी आपी ठारता ने ऊभे जोई आशीश याचता "[2]

संस्कृतिनुं पुष्प :

इस खंड काव्य में आर्य नारी का जीवन पूर्ण रूप से प्रतिफलित होता

1 वेटलाक काव्यो, पृ० ६९

2 वही

मालूम होता है । इसमें आंतरिक जीवन की भावनाओं से छलकता प्रेम प्रभाव है । इसमें दाम्पत्य भावना का परिपूर्ण विकास प्रतिबिंबित हुआ है । भारतीय सन्नारी जब अपनी संस्कारिता से पति के हृदय में प्रवेश प्राप्त कर संस्कृति के एक विकसित पुष्प की तरह पति से प्रेम प्राप्त करती है तब उस विदुषी नारी का आदर्श नारी के पूर्ण रूप में चरितार्थ होता है । कवि ने इसमें यह बतलाने का प्रयास किया है कि जब पति पत्नी का भावनात्मक तादात्म्य होता है उसमें प्राकृतिक सौन्दर्य भी हाथ बंटाकर उस आनंद को द्विगुणित करता है अर्थात् इसमें प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन उद्दीपन रूप में किया गया है । इस संदर्भ में ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

" ए कल्याणक लग्न योग तिथिनो चालीसमो चन्द्रमा
विकर्यो तो ज रसात्मा को रस भर्या सौभाग्यनी शोधमां
प्रेमोद्यान निहाळी पूज्य जगनी दाम्पत्य कुंजो फरी
आव्यो ए वेळी आज जो । अमृतनी ज्योत्स्ना कटोरी भरी "[1]

अपने भव्य जन्म दिन की खुशी मनाने के अतिरेक में कवि को प्राकृतिक सौन्दर्य भी आनंद और उल्लास पूर्ण मालूम होता है ।

कवि अपनी धर्मपत्नी माणेक बहन को " संस्कृतिनुं पुष्प " कहते थे । और कवि का अपना दाम्पत्य जीवन श्रेष्ठ था यह बतलाया है । पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

" इतिहासोने अनुप सुहावे जेनी दाम्पत्य गाथ
आर्योनी ए सनातन अमर अवतरी संस्कृतिनुं तुं पुष्प "[2]

चूंकि एतद्विषयक चिन्तन भी कवि के निजी दाम्पत्य-जीवन की अनुभूतियों से प्रेरित हैं, अतः उसे भाव-योजना के अंतर्गत स्वीकार किया जा सकता है । कवि ने दाम्पत्य भाव को विलास और वैभव के अर्थ में नहीं अपितु भावनात्मक नव सर्जन के अर्थ में माने हैं और उसी से मनुष्य मानवता, दिव्यता, महानता और परम आनंद की प्राप्ति

ठठठठठठठठठठठठठठठठठठ

१ केटलाक काव्यो, पृ० ७२
२ केटलाक काव्यो, संस्कृतिनुं पुष्प, पृ० ७८

करता है। इस पूरे काव्य में कवि की दृष्टि आत्म परक और भाव परक होते हुए भी मानवतापरक और उदारतापरक है। इस गीत में पुरुष की पुरुषता दूर करने के लिए स्त्रियों के प्रेम और माधुर्य का कितना प्रभाव है यह बतलाया है।

महेरामणनां मोती : (१९३९)

जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय के विवेचन से प्रकट है कि ये गीत एक विशेष परिस्थिति की देन है।

प्राकृतिक सौन्दर्य को निहारकर कवि को काव्य प्रेरणा मिली। सागर, सागर की लहरें, समुद्र का किनारा, प्रातःकाल, उषा, सायंकाल आदि दृश्यों को निहारकर और मानवीकरण करके भूमा की परम सता को आत्मसात् कर कवि ने अपने भाव व्यक्त किये हैं। जब मनुष्य का स्वास्थ्य गिर जाता है तब महान सता को याद करता है और उससे जीवन की स्वास्थ्य की प्रेरणा प्राप्त करता है। यह मानव स्वभाव है। कवि को भी यही अनुभव हुआ और प्रेरणा प्रेरित काव्य मुक्तक प्रस्तुत किये। इन मुक्तकों में नियति का प्रभाव और मानवीकरण लक्षित हैं —

मानवीकरण का उदाहरण :

अलि। आय आ सागर छोळ। रमवा ;
तारो सोना रुपल हिन्डोळ डोले
म्हारा उर म्हांयना उरने गमवा - (१)

भूमा की सता के प्रति : तदत्त्वन ढोळाया सागरमां
निधि ढोळायो नभमां
नभ ढोळायुं गहन गह्वरे
विराट करचलीओमां - (२)

१ महेरामणनां मोती, पृ० १२

२ वही, पृ० १५

इसके साथ साथ कवि ने वीर रस के गीतों की भी रचना की है। कवि प्रेम और सौन्दर्य के कवि होते हुए भी उनको वीरता, प्रेरणा, जागृति के प्रति तीव्र आसक्ति थी। कवि ने प्रस्तावना में ही कहा है कि " मने देह निर्बळता लागे छे पण चेतना निर्बळता नथी " अलबेलो आज युद्धे चढे रणदेव और रणगीत वीरतापरक गीत है। वीर रस पूर्ण पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" उर अग्नि थी धरणी डोले क्रोधाग्नि थी नयनेण,
भंभना निश्वी गिरि डोले एक वणडोल्यो विधि वेण,
शूरजन जागजो हो - "[1]

कवि पुरुषार्थवादी होते हुए भी उनको विधि की विचित्रता और प्रभाव में विश्वास है। कवि ने सत्कर्म करने के लिए प्रेरणा दी है और पाप से बचने के लिए उपदेश भी दिया है। अर्थात् कहीं कहीं ये गीत इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक भी बन गये हैं वहां भाव शिथिलता लक्षित होती है।

शृंगार रस के अंतर्गत विप्रलंभ के क्षेत्र में भी कवि की कलम प्रवाहित रही है " वेरण रातलडी " यह गीत विरह परक है। रात्रि का मानवीकरण किया है और कहा है " तू तो तेरे पति चन्द्र के साथ आई है अकेली आना तब तू मेरे दुःख की बात समझ सकेगी " भावार्थ यह है कि कवि अपने मन की बात एक से ही कहना चाहता है अनेकों से नहीं। इसमें प्रीति और प्रतीति का भाव व्यक्त किया है।

संक्षेप में इस लघु काव्य पुस्तक में प्रकृति परक नियतिपरक, वीरता परक, प्रेमपरक अनेक मुक्तक हैं जिसे पढ कर सामाजिकों का साधारणीकरण होता है।

हरिदर्शन - १९४२ और वेणुविहार - १९४२ :

ये दोनों, घटना विशेष पर आधारित खंड काव्य है। कवि के

---

१ म्हेरामणनां मोती, पृ० २४

आराध्य देव श्रीकृष्ण थे और उनको कृष्ण के प्रति प्रीति प्रतीति और भक्ति थी। घटना का वर्णन- वर्णन तृतीय अध्याय में वर्णित है। इस अध्याय में इन दो खंड-काव्य में निहित जो भाव समान रूप से प्रवाहित है, उसका वर्णन है।

जब कवि ने ये दो खंड काव्य लिखे तब उनकी उम्र ८५ वर्ष की थी। अंग्रेजी में कहावत है कि As a man grows old he believes in God
उसी प्रकार कवि की मति और शक्ति क्रम क्रम से ईश्वरपरक बन रही थी। "हरि-दर्शन" में जब कवि और यात्रा संघ "हरिदर्शन" के लिए निराश हुए लेकिन उनकी तीव्र भक्ति भावना के परियाचक कृष्ण ने "टेरा" गिरा दिया और सब को भगवान कृष्ण के दर्शन हुए। दर्शन की जिज्ञासा, तत्परता और दर्शन प्राप्त करने पर आनंद आदि भाव पूर्ण रूप से व्यक्त किये हैं इसलिए गीतों का शीर्षक "मधुरं" दिये हैं। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" भरी भरी नयननी प्यालीओ हरि रसना पीधा घूंट
किरण किरण मुद्राना वीणी पूर्या हरि हैयाने संपुट रे " [1]

यह पूरा खंडकाव्य भक्ति भावना परक है। कवि के अंतर की तीव्र भावना कृष्ण के प्रति प्रीति और प्रतीति व्यक्त की है।

" वेणुविहार " कवि अपनी अस्वस्थ हालत में शय्यावश थे। कुछ चैतन्य शिथीलता आ गई थी उस समय दैव योग से बंसरी बजाते हुए कृष्ण को सुना और प्रभावित हुए। अवस्था विशेष के कारण, कृष्ण दर्शन के कारण, आनंद का भी अनुभव किया —

" शब्दमां शब्दने मन्त्रमां मन्त्र, ज्यम अग्निमां अग्नि पधराया,
सागरे आभ ऊतरे, सरे बीज बने, विश्वमां विलीन हरिराया।

---

१ हरिदर्शन, पृ० ३६

हृदयमां हृदय ने नयनमां नयन ज्यम, सरितमां सरित ने गगनमां गगन
त्यम ब्रह्ममां ब्रह्म होळाई गया हो "[1]

इस प्रकार इन दोनों खंड काव्यों में कवि ने अपनी अवस्था विशेष के आधार पर और शारीरिक अस्वास्थ्य के कारण भक्ति भावना व्यक्त की है। कवि ने वेणुविहार की प्रस्तावना में लिखा है कि " अमुको समजे- समजे ने मनोले तोज हुं बोलुं एवुं पूछी प्रीछी ने कोयल के मोरलो टहुके छे क्यां ? प्रेरणा गवरावे ते गावुं ए कवि धर्म, काव्य प्रेरणा परब्रह्मनी छे। कवि तो मात्र काव्य-कलाना कलाधर्मनो पुजारी छे। "[2]

आत्मानंद के सन्निकट भक्तिभावना की तीव्रता इन दोनों काव्यों में यत्र-तत्र प्रस्फुटित है। यह अवस्था विशेष का धर्म है।

प्रज्ञाचक्षुनां प्रज्ञाबिंदु : सन् १९४२

यह भी एक घटना प्रधान मुक्तकों का संकलन है। इस काव्य संकलन का परिचय तृतीय अध्याय में दिया जा चुका है। इस संकलन के भक्ति परक गीतों में कवि ने अपनी अवस्था विशेष और धार्मिक संस्कारों के कारण तीव्र भक्ति भावना और तत्जनित विश्वास और प्रेम व्यक्त किये हैं। पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" किरीट धारे नहि त्होय भूप, ए शामळो, अद्भुत एनु रूप
राजेश्री योगेश्वर ए अनुप श्री द्वारिकाधीश पूर्ण-प्रणमुं "[3]

दूसरे प्राकृतिक सौन्दर्य परक गीत है जिसके प्रभाव से कवि ने नियति या भूमा के प्रति अपनी भावनाएं व्यक्त की है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" सप्त धातु मय वहे हिमालय नदीओ सौनलरेल
धर्मराजनां यज्ञभुवन मह्ु भरशे रेलमछेल
अवनीनां अक्षयपात्र अखूट "[4]

---

१ वेणु विहार, पृ० ४२-४३ (२) वही, प्रस्तावना, पृ० १४

३ प्रज्ञाचक्षुनां प्रज्ञाबिंदु, पृ० २८ (४) वही, पृ० २९

कवि प्रेम और सौन्दर्य कवि माने जाते हैं और उसी से संबंधित दाम्पत्य भावना के तीव्र भाव सोहागण, पानेतर और दाम्पत्य स्तोत्रों में व्यक्त किये हैं। इस संकलन में दाम्पत्य भावना से संबंधित पांच गीत है। " मांडवामां ", " लोडणीनी वेल ", " सासर संचरी "," सोहागण ", " नरलोकनी परमेश्वरी "। इन गीतों में कवि ने दाम्पत्य जीवन की महत्ता का मूल्यांकन किया है। इस भावना के अंतर्गत प्रणय प्रेम सौन्दर्य और आत्म समर्पण की अभिव्यक्ति है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" हो सुन्दरी । शील थी सोहे छे के गुणगौरवे ?
" " वेणु के वीणा तणे मधुरवे ?
" " भावनां वसे छे के तुं अंगमां ?
" " रूपमां रमे छे के तुं रंगमां ? " [1]

कवि न्हानालाल को वसंत का कवि भी कहते हैं। यह ऋतु विशेष प्रेरणा और चेतनापरक है उद्दीपन के अर्थ में कवि ने वसंत ऋतु का भी वर्णन किया है।

कवि ने मानवतामूलक सन्देश भी अपने गीतों में दिये हैं। लोक हिंसा और विनाश के प्रति अग्रसर है उसे छोडकर अहिंसा और सर्जन के कार्य में जुट जाय यही कवि का संदेश है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" तोडी संस्कार संस्कृतिना संयमो, छोडी मानव देवत्वनी दिव्यता,
कंइ मानव वंशो पशुत्वे व्हइया फूटी मानवीनी ढांकी पात्रता
मानवी । शी आ फूंटमफूंट ?
अवनीनां अक्षयपात्र अखूट "[2]

ठठठठठठठठठठठठठठठ

१ प्रज्ञाचक्षुनां प्रज्ञाबिंदु, पृ० ११ (२) वही, पृ० ४०

कवि ने कोई भी काव्य संकलन लिखा पर वे वीर रस को कभी भूले नहीं है। कवि की ऐसी अवस्था में भी जहां आंखों में मोतिया बिंद के कारण आपरेशन करवाया था फिर भी प्रेरणा और जागृति के वीरतापरक गीत लिखे हैं। पंक्तियां ~~दृष्टि~~ दृष्टव्य हैं -

" सुणो रणना पडे डंका, धरो रणमाळ, रणवंका ।
दिशाओ न्होतरां दे छे वीरोना वारणां ले छे । " [1]

एक-दो गीतों में कवि ने अपने कौटुम्बिक जीवन का पुत्र-पुत्री पौत्री आदि का परिचय देकर गृहस्थाश्रम सुखी गृहस्थाश्रम था यह बतलाया है।

संक्षेप में कवि की भावमयी कलम हरेक क्षेत्र में प्रवाहमयी और प्रभावमयी है।

कुरुक्षेत्र :

कवि न्हानालाल रचित इस महाकाव्य के प्रत्येक काण्ड का परिचय और रचनाकाल तृतीय अध्याय में दिया जा चुका है। इस अध्याय में समग्रतया भाव वैशिष्ट्य बतलाया है।

यह महाकाव्य युद्ध और संघर्ष से सम्बन्धित होने के कारण प्रधानतः वीर रस पूर्ण काव्य है अपितु इसमें - रौद्र रस, करुण रस, बीभत्स रस, शांत रस और मानवसेवा परक एवं राजनीतिज्ञता के भाव उभारे हैं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

वीर रस :

" पार्थ ने कहो चढावे बाण, हवे तो युद्ध एज कल्याण
कहो कुन्तानी छे आण, पार्थ ने कहो चढावे बाण " [2]

---

1 प्रयाचक्षुनां प्रज्ञाबिंदु, पृ० २८ (२) द्वितीय काण्ड, पृ० ५८

काळनी खंजरीना कणकार
भील जो मवरणना रमनार " [1]

ऐसे अनेकों वीर रस के उदाहरण यत्र तत्र प्रक्षिप्त है ।

रौद्र रस के उदाहरण :-

" पराक्रम पुरुषो ! क्यहां हता ए अवसरे ?
सात महारथीओए जोद्धा जोध ने वधेयों
त्यहारे शौर्यताता क्यां दिशा देश ने ? " [2]

" कृष्णदेव ! सांभळजो म्हारो निर्धार
पांडवोनुं पांडवोने आपीश :
आपीश, पण कुरुक्षेत्रमां आपीश " [3]

बीभत्स रस के उदाहरण :-

" शियाळीओ काढती योध अंगों ने
भूंडणीओ चाटती योध मुगटो ने,
डाकणीओ भरती'ती रक्त की खप्परो
ने पीती'ती रक्त अंजलिओ " [4]

" अंगे अंगे हता रुधिरना ओघराळा,
रोमे रोमे हती रुधिरनी शेडो छेने ।
मुखडे हता लोहीना लपेटा,
हैया पाटे हतो रुधिर कुंड
खोपरीनी कंकावटीमां
कंकोळेलां हतां रुधिरनां कुंकुम
आवतो'तो हर्षोन्माद पीधेलो भीमसेन " [5]

---

१ चतुर्थ काण्ड, पृ० १९ (२) सप्तम् काण्ड, पृ० ४२
३ द्वितीय काण्ड, पृ० ४३ (४) अष्टम् काण्ड, पृ० १३,१४
५ नवम काण्ड, पृ० १८

आशावाद की भावनाएं :

" ओ क्षात्र संजीवन मणि । गांडीव शाने छांड्युं ?
रणमां रण वीर था । काळ ने पी जा, विराट ने मापी ले
सूर्य चन्द्रनी गेंदो उछाळतो आयुष्य पंथे संचरतो जा
निष्काम था, इन्द्रियोने संकेल,
आकांक्षा ने आरजू ने लगाममां लाव
निष्काम कर्मयोग आचर, उठ, गांडीव ले,
हावळ पाड ने आम ने ये थरथरावतो जीत जीवनना जंगने " [1]

जब महाभारत के युद्ध की पूर्णाहुति के बाद युधिष्ठिर कृष्ण के कहने पर बाण शय्याग्रस्त भीष्म के पास जाते हैं उस समय की पंक्तियां शांत रस की द्योतक हैं । पूरा शर-शय्या काण्ड शांत रस का उदाहरण है । पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

" पार्थ । बावाफोडां वाय
पण रत्नदीप न होलवाय
प्राणने पहेरो भरजो, पुत्रो
आत्म कोटने खरवा देता मा
आत्मा अमृत मणि छे " [2]

शांत रस :

शांत रस के अंतर्गत भीष्म का उपदेश और भावनाएं भी लक्षित होते हैं । पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" पार्थ । पुण्यनां वहाज भरजे, हो
लाकळ वाध्या विना डूबे ते सन्त ;

१ चतुर्थ काण्ड, पृ० ३४-३५ (२) एकादश काण्ड, पृ० ४२-४३

उरना आगत्या उघाडे ते साधु - संसार एटले साचर शय्या ।"[1]

मानव सेवा परक भावनाएं :

" संसारमां जा ने नीलकंठ था
हसतां हसतां झेर पीने
मनुवंश नो महिमा था,
पुरनधोमां परमहंस था
विध विधना यज्ञ आदर,
ने प्रजा जनने रंजन कर "[2]

भीष्म ने अपने ज्ञान और उपदेश में युधिष्ठिर को अनेक मानव सेवा भावी भावनाएं और राजनीति परक एवं नीतिपरक उपदेश दिये हैं ।

राजनीतिज्ञता :

कृष्ण परब्रह्म होते हुए भी पूर्ण राजनीतिज्ञ थे । पूरा महाभारत कृष्ण की राजनीति का क्षेत्र था । राजनीतिज्ञता से संबंधित पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" धर्मराज । प्रारब्ध नी सीमाओ
पराक्रमी ने काने नथी
महाकालने जीते ते महारथी
युगक्षेत्रमां सैंचाय नहि ते तारो ;
युग ने घडे ते युगाधीश "[3]

राजनीतिज्ञता से भरी पंक्तियां " सहोदरनां बाण ", मायावी सन्ध्या, अध्यायों

१ शर शय्या, पृ० २७
२ वही, पृ० ४६-४७
३ वही, पृ० २२

में पूर्ण रूप से पाई जाती है ।

" महासुदर्शन " काण्ड में कवि ने आत्मा, परमात्मा, माया, संसार आदि की भावनाएं उभार कर दार्शनिकता के भाव व्यक्त किये हैं । यह पूरा काण्ड दार्शनिकता का द्योतक है । उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां -

" जन्म मृत्यु पछले जीवनलीला
दिशा चक्रावे घूमतुं विराट चक्र रहे छे
राजन् । जन्ममृत्यु थी पर जो,
त्यहां छे परमानन्दना देश "[1]

निष्कर्ष यह है कि कवि न्हानालाल ने " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य में वीर, रौद्र, करुण, बीभत्स, अद्भुत, आदि रसों का काव्योचित समन्वय साधा है और मानवता, सामाजिकता, विश्वबंधुत्व की भावना, दार्शनिकता, आशावाद, परमाणुवाद आदि भावनाओं को उभारी हैं । इसमें बंसरी बजानेवाले माधुर्य भाव के कृष्ण नहीं अपितु शंखनाद करनेवाले, वीरता के प्रतीक रूप में, सुदर्शन चक्रधारी राजनीतिज्ञ कृष्ण की पूर्ण राजनीतिज्ञता बतलाई है । इसमें आधुनिक युग से संबंधित राष्ट्रीय भावनाएं, समाजवाद और परमाणुवाद के तत्त्व भी प्राप्त होते हैं ।

द्वारिका प्रलय : सन् १९४४

इस खण्ड काव्य का सार तृतीय अध्याय में दिया जा चुका है । इसमें सिर्फ भावपक्ष का वर्णन है । इस रचना में कवि ने कौन कौन से भाव उभारे है उसका कलापूर्ण और मानस-शास्त्रीय ढंग से वर्णन है । इस काव्य कथा का भाव निरूपण श्रीमद् भागवत् के एकादश स्कंध के पहले और तीसवें अध्याय से लिया है । इस काव्य में कृष्ण का समाज सुधारवादी रूप बतला कर सदाचार

१ महासुदर्शन, पृ० ३६

की विजय और दुराचार और अनाचार की पराजय बतलाई है। इसमें बंसरी बजानेवाले कृष्ण नहीं, सुदर्शन चक्रवाले कृष्ण नहीं लेकिन राजनीतिज्ञ और समाज-सुधारक कृष्ण है। इसका केन्द्रीय विचार यही है कि " दुष्टों को और दुराचारियों को जीवन जीने का अधिकार नहीं है " । यत्र-तत्र परिस्थिति के अनुरूप प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन भी है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" आंगणे हता बे पारिजातको फुलवाडीमां फोरता'तां देववृक्षो
पल्लवोमां कल्लोलता'तां देवपंखीओ " [1]

नियति या भूमा कि सर्वोपरिता के रूप में कृष्ण के प्रति कवि ने अपनी पूज्य भावनाएं व्यक्त की है। कृष्ण सागर के जैसे विराट, धीर गंभीर और अलौकिक है। कृष्ण का अलौकिक व्यक्तित्व, कृष्ण की रसिकता की सौरभ और सौम्यता का गौरव ये तीनों भावों का सामंजस्य कवि ने बतलाया है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" सागर लहेर सम लहेरे लहेरे लडो, सागर सम गंभीर
रत्नाकर समो रत्न उछालतो रसियो अने रणधीर
वैभव माणे तोये जगनो जोगन्दर कपिवरनो भक्त ने अधीश
राजा नहीं ए द्वारिकानो धुरंधर सागर तीरनो पृथ्वीश " [2]

इसमें " वैभव माणे तोये जगनो जोगन्दर " यह पंक्ति अत्यंत भावपूर्ण है। विलास और वैभव में जीवन जीते हुए भी मनुष्य सदाचारी और योगी की तरह रहे। यादव विलास वैभव में संलग्न थे लेकिन दुराचारी, शराबी बने। कृष्ण ने यह देखा और वे स्वजन होते हुए भी उनका विनाश करवाया। एक आदर्श न्यायधीश, आदर्श राजा, आदर्श समाजसेवक के रूप में कवि ने कृष्ण का रूप चित्रित किया है।

दुराचारी और व्यभिचारी दुष्ट कर्मी होते है और इसलिए वे पृथ्वी

ooooooooooooooooo

१ द्वारिका प्रलय, पृ० २५

२ वही, पृ०

पर भार रूप होता है । पृथ्वी का बोझ उतारने के लिए अर्थात् अवतार कार्य को पूर्ण करने के लिए कृष्ण ने यादव संहार किया ।

कृष्ण को द्वारिका नगरी अत्यन्त प्रिय थी उसे " जलधि की ज्योत " कहा है । इसमें नैसर्गिक जीवन स्वरूपों की मूलभूत एकता परिलक्षित होती है । पंक्तियां -

" जलधिनी कुंवरी द्वारिका । तने जलधिना अंचोळ
दिशदिश तुजने प्रणमशे गणी मुक्तापुरीनी महन्त
युग युग ऊगता पूजशे तने पीधो काळ अनन्त " [1]

कृष्ण का पूरा लोकभावी जीवन द्वारिका से भावुक रीति से जुड़ा हुआ था ।

कवि की कल्पना महासागर के सर्वतोमुखी विराट स्वरूप का स्वीकार करती है । सागर की विराटता यही प्रभु की विराटता का प्रतीक है । इसी के माध्यम से कवि नियति के प्रति अपनी पूज्य भावनाएं व्यक्त करता है । इसमें भक्ति भावना की सर्वोपरिता भी बतलाई है । " हरि । तारे कीकीनो हिन्डोल " गीत में कवि ने भक्ति भाव से प्रेरित होकर बतलाया है कि परमात्मा की आंखों के झूले पर पूरा विश्व झूल रहा है यह दृश्य कितना प्रेरणावान और भावपूर्ण है -

" मन्दाकिनीनां महाजळ उछळे, विश्व छलकनी छोळ
हरि तारे कीकी-कीकी नो हिन्डोल - - - - "[2]

विश्व के महान सत्व भी इस विराट तत्त्व की पूजा वंदना करते हैं । यह दृश्य भी इतना ही भावपूर्ण है । पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" सूर्यने शशि पर आरती करता बोले गहनताना बोल

१ द्वारिका प्रलय, जलधिनी जय ज्योत, पृ० १११
२ वही, हरि । तारे कीकी की की ने हिन्डोल, पृ० १७

अस्तोदयमां आ विश्व लीलामां हरिवर एक अडोल
हरि । त्हारे कीकी-कीकी नो हिन्डोळ - - - -"[1]

इस खंडकाव्य में कवि ने प्रेम के साथ भक्ति का तत्त्व भी मिलाया है इसलिए कवि की रचनाएं " प्रेम भक्ति ग्रंथमाळा " के नाम से अभिहित है । कवि ने कृष्ण का अवतार का उद्देश्य मानवसेवा के लिए, दुष्टों के संहार के लिए और धर्म की स्थापना के लिए माना है ।

हरिसंहिता - भाग-१-२-३ (अपूर्ण)

कवि की यह अंतिम काव्य कृति है । यह प्रेम लक्षणा भक्ति का यशोगान है । कवि ने इसकी रचना श्रीमद् भागवत् के आधार पर की है लेकिन इसके तत्त्व अलग है । इसमें गोपियों के साथ में रहकर बंसरी बजानेवाले कृष्ण नहीं है । महाभारत युद्ध के राजनीतिज्ञ सुदर्शन चक्रवाले कृष्ण नहीं है इसमें समाज सुधारक और नीति का उपदेश देनेवाले कृष्ण है । इसमें यत्र-तत्र कृष्ण का सुधारवादी, सामाजिक और नीतिपरक रूप बतलाया है । इन्हीं तत्त्वों के आधार पर इनमें भावों की विशदता और भाव प्रेरकता लक्षित होती है । कवि स्वतः हरिसंहिता की प्रस्तावना में लिखते हैं :-

" आ तो छे गुजरातनुं विराट काव्य - - - - मारी विशाळी वैष्णवतानी प्रेमभक्तिनुं आ महागीत छे - - - आ'हरि - -संहिता " नुं विराट काव्य तो छे म्हारी काव्य यात्रानुं महातीर्थ " हरिसंहिता " छे अर्थी सदीभरनुं " प्रेमभक्ति " नुं प्रफुल्ल फलन - - - आ हरिसंहिता प्रधानतः श्री हरिना ए योगेश्वर स्वरूपनो काव्य-विस्तार छे । "[2]

१ द्वारिका प्रलय, हरि। त्हारे कीकी कीकी ने हिन्डोळ, पृ० १७
२ हरिसंहितानी प्रस्तावनामांथी

यह हम आरम्भ में लक्ष्य कर चुके हैं कि इस कृति का अधिकांश भाग चिन्तन और धर्मोपदेश प्रधान है। अतः इसमें केवल उसी अंश पर विचार किया जायगा जो मानवीय अनुभूतियों से सम्बन्धित हैं। इसमें कृष्ण की तीन प्रकार की यात्राएं बतलाई हैः - (१) शान्ति यात्रा , (२) संस्कार यात्रा, (३) कल्याण यात्रा।

योगेश्वर कृष्ण के जीवन कार्यों का यशोगान करता कवि न्हानालाल का यह भक्ति काव्य है। भक्तिभाव से संबंधित पंक्तियां -

(१) भक्तिना भेदमां श्रेष्ठ भक्ति छे प्रेमलक्षणा
आत्माए परमात्माना हैयामां हैयुं ढोळवुं
ढोळाये गंगना पूर जईने जेम सागरे " [1]

कवि की यह विशाल काव्य कृति पूरी इसी प्रकार के भक्ति के भावों से भरी हुई है। हरिभक्ति को केन्द्र में रखकर ही कवि ने यह विराट काव्य की रचना की है।

भागवत को दृष्टि समक्ष रखकर लिखा गया यह " विराट " काव्य भागवत् का अनुवाद नहीं है। उसकी प्रतिकृति भी नहीं है। लेकिन कवि ने कृष्ण की जो तीर्थयात्रा की कल्पना की है - मानी है - और उसमें जिन जिन प्रसंगों का आलेखन किया है वह कवि की स्वतंत्र प्रतिभा का निर्माण है। फिर भी यह स्वतंत्र आलेखन में भी कवि प्राचीनों को याद करता है। [2]

भक्ति के साथ-साथ कवि ने इसमें उसके प्रिय तत्त्व दाम्पत्य और वसंत प्रेम का भी भावपूर्ण चित्रण किया है। भक्ति की अतिरेकता में भी कवि दाम्पत्य और वसंतप्रेम भूला नहीं है जो उसके जीवन के साथ जुड़ा हुआ था।

---

१ हरिसंहिता, भाग-१

२ शिवशंकर प्राणशंकर शुक्ल, हरिसंहिता शब्द सुमनांजलि, पृ० ९
हरिसंहितानुं वस्तु, प्रसंग, मांडणी, शैली, इत्यादि न्हानालालनी प्रतिभानुं स्वतंत्र निर्माण छे। कविए श्रीकृष्ण पासे करावी छे एवी कोई भारतयात्रा एमणे क्यांनो उल्लेख नथी महाभारतमां के नथी भागवतमां। शताब्दी महोत्सव अने वासुदेवनी आ धर्मयात्रा ए कविश्री न्हानालालनी स्वतंत्र कल्पना छे।

हरिसंहिताना उपनिषदो :

इस " विराट " काव्य में अत्यंत प्रभावित करनेवाले तत्त्व कवि ने बतलाये हैं :- श्री कृष्ण मुख से उपनिषद के तत्त्व । यह कवि की अपनी स्वतंत्र कल्पना है । प्रत्येक उपनिषद में कौन कौन से भाव उभारे हैं उसका सार अति संक्षेप में दिया है । " जीवनोपनिषद " में जीवन को " यज्ञ " कह कर व्यापक जीवन भाव उदार चरिता, सदाचार और संस्कारिता का दृढ आग्रह किया है । ज्ञान विज्ञानोपनिषद में कवि ने ज्ञान और विज्ञान का तात्त्विक भेद बतलाया है । " सागरोपनिषद " में संसार सागर में से मंथन करके अमृत का स्वागत करने की सीख दी है । " ब्रह्म लीला उपनिषद " में परब्रह्म और उसकी लीला का महत्त्व बतलाया है । " गायत्री उपनिषद " में प्राचीन गायत्री मंत्र का रहस्य, महत्त्व और उसकी चिरंजीविता बतलाई है । कवि ने " गायत्री " को " विश्व की कामधेनु " और जगत् की संजीवनी कहा है । " गहनता उपनिषद " में कवि ने दार्शनिक तत्त्व - विश्व, माया, ब्रह्म, जीव, आत्मा - की चर्चा करके आत्मा की उच्चता बतलाई है । " सौरभोपनिषद " में श्रद्धा और पुण्य के तत्त्वों का प्रभाव व्यक्त कर विश्व बंधुत्व और मानवता की भावना व्यक्त की है । " विकासोपनिषद " में सृष्टि के विकास क्रम में नर और नारी का महत्त्व बतलाया है । "सागरोपनिषद " में सागर की असीमता और अनंत बतला कर संसार को सागर की उपमा दी है । " आम्रोपनिषद " में प्रेम और भक्ति का परम मूल्यांकन किया है और प्रेम भक्ति परम योग है यह व्यक्त किया है । " सख्योपनिषद " में कवि की अपनी वैष्णवी भावना के कारण प्रेमलक्षणा भक्ति की विशेषता और प्रभाव बतलाये हैं । " अणुबोल उपनिषद " में कवि ने परमात्मा का वास छोटे अणु में भी और विशालता में भी बतलाया है । " अमृतोपनिषद " में कवि ने आरोग्य और आयुष्य की तुलना अमृत के साथ की है । " महाकालोपनिषद " में मृत्यु की महिमा बतला कर उसे ब्रह्मांड का केन्द्र कहा है और परब्रह्म की सर्वोपरिता बतलाई है । " सर्वतोभद्र उपनिषद में " कवि ने कल्याण भावनाओं का उच्चार करके कृष्ण के मुख से आशीर्वचन प्रवाहित किये हैं ।

इस प्रकार कवि ने इन १५ उपनिषदों के माध्यम से अनेक प्रकार की प्रेम, भक्ति, मानवसेवा, जन्म, मरण, मृत्यु, नियति – आदि भावों का सर्वतो प्रकारेण उन्मेष बतलाया है । इन काव्यों में भाव सौन्दर्य का प्रवाह प्रवाहित और प्रभावित है जिसे पढ़कर सामाजिकों का साधारणीकरण होता है ।

कवि ने कविता को " समस्त आत्मा की रसवाणी " कहा है । इस विराट काव्य में शांतरस से सम्बन्धित भक्तिभावना, प्रेम का उदात्त स्वरूप और परब्रह्म की महानता और सर्वोपरिता बतलाई है । कवि की भक्ति भावना अलौकिक प्रीति और प्रतीति पर आधारित थी । इस विराट काव्य के बारे में कवि ने कहा है कि –

" जगत माने वा न माने, हरिसंहिता में लखी नथी
युग पुरुषे लखावी छे "

" हरिसंहिता " यह न्हानालाल की मुमुक्षा दशा का सर्जन है । इस काव्य में भी रास, गरबा और होंच रखे गये हैं । शांत रस के साथ साथ यत्र-तत्र शृंगार रस का और कहीं कहीं करुण रस का भी प्रभाव लक्षित होता है ।

शृंगार परक – वाघा सखी ने वर तेज तेज ना
विलोल पुष्पो धरीने वसन्तना
अनंत केरी अनिमेष आंख शी
" भरता " आंसु के सागर – – – – – –
भरिया – – – – – – इत्यादि " [१]

करुणापरक :

हरिसंहिता में भी माधुर्य भाव– प्रेम और भक्ति से संबंधित पूर्ण रूप

१ हरिसंहितानां पद्म अने पोयणां, शिवशंकर शुक्ल, पृ० १६

से भावधारा प्रवाह भरा हुआ है । इसमें मधुरता जैसे छलकती है । कवि अपनी समस्त शक्ति ईश्वर के गुणगान में न्योछावर करके स्वयं में आत्मज्योत जगाने की और ब्रह्म द्वार खोलने की आरजू के गीत गाते हैं । समस्त हरिसंहिता यह हरि-मिलन के लिये बड़ी तीव्र पुकार है । कवि ने कहा है -

" आत्मज्योत जगाडजो
आयुष्य संकेलन केरा महायोगे
के ब्रह्म बार उघाडजो "[1]

लेखक की अपनी राय में यह " हरिसंहिता " आख्यान महाप्रबन्ध है । महाप्रबन्ध की विशेषता यह है कि -

" महाप्रबन्ध में पूर्णता के साथ जीवन के विविध अंगों और घटनाओं का विशद व्यापक और सजीव चित्रण होता है । इसके लिए महाप्रबन्ध के नायक अथवा नायकों को उत्कृष्ट और उदात्त चरित्र का होना आवश्यक है । "[2]

कृष्ण के यात्रा के वर्णन से संबंधित होने के कारण यह आख्यान महाप्रबन्ध है ।

" आख्यान प्रबंध में प्रेम, नीति, भक्ति, वीरता आदि के निरूपण के लिए काल्पनिक रोचक कथानक का सरस मधुर शैली में वर्णन होता है । इसके अंतर्गत भी विभिन्न प्रसंग या खंड हो सकते हैं । आख्यान को प्रामाणिक सा बनाने के लिए इसमें कतिपय ऐतिहासिक स्थानों और नामों का समावेश भी कर लिया जाता है । इसमें एक प्रधान या प्रमुख कथा और अन्य कुछ गौण कथाएं संघटित रहती है ।"[3]

----

१ हरिसंहितानां पदुम अने पायणां, शिवशंकर शुक्ल, पृ० १९

२ काव्यशास्त्र, डा० भगीरथ मिश्र, चतुर्थ संस्करण, पृ० ४२

३ वही, पृ० ४२

उपरोक्त दो मतों के आधार पर कविश्वर की " हरिसंहिता " आख्यान महाप्रबन्ध है । इसमें जीवन की विविध घटनाओं का विशद, व्यापक और सजीव चित्रण है । इसके नायक श्रीकृष्ण उत्कृष्ट और उदात्त चरित्रवाले हैं । इसमें प्रेम, नीति, भक्ति आदि के निरूपण के लिए काल्पनिक रोचक कथानक का सरस मधुर शैली में वर्णन किया है । इसके अंतर्गत विभिन्न प्रसंग जैसे उपनिषदों के प्रसंग बतलाये हैं । आख्यान को प्रामाणिक बनाने के लिये इसमें तीर्थ स्थानों और उनका महत्व बतलाया है । इसमें एक प्रमुख कथा - कृष्ण की तीर्थयात्रा का वर्णन - मुख्य कथा है साथ साथ गौण कथाएं भी चलती है जो प्रासंगिक कथावस्तु बनकर आधिकारिक कथावस्तु को गतिशील करती है । यह उर्मिप्रधान, भक्तिप्रधान प्रबन्ध काव्य है । नायक भी विराट है । कथानक भी उदात्त है ।

कुरुक्षेत्र के महायुद्ध के बाद जैसी शांतियात्रा की भारत को आवश्यकता थी ऐसी शांति और संस्कार यात्रा कवि ने कृष्ण के पास करा करके प्राचीन परिस्थिति की अर्वाचीन संदेश के लिए गर्भित ध्वनि गुंजित की है । इसमें कवि की दर्शन चिंतन की सफलता है । कुरुक्षेत्र जैसे महायुद्ध के बाद भारत को संस्कृति और शांति प्रदान करनेवाले कृष्ण जैसे परिव्राजक की आवश्यकता थी । जगत को शांति का आध्यात्मिक पाथेय परोस सके ऐसा महान धन भारत के पास था । कृष्ण के माध्यम से कवि ने धर्म, संस्कृति और सदाचार की तीव्र भावनाएं पुनर्जागृत की और तीर्थस्थानों को भी नवीनता प्रदान की ।[1] " हरिसंहिता " के रचयिता कवि न्हानालाल सिर्फ कवि ही नहीं विरही भक्त भी है । उनकी भक्ति प्रेम लक्षणा भक्ति थी और उनमें ब्रह्म प्रेम की मस्ती थी । अर्ध शताब्दि तक जो काव्य निर्झरनियां प्रकटी वे सब अंत में " हरिसंहिता " के महानद में विलीन होकर ब्रह्मांड काव्य में ब्रह्म संबंध साधा है । प्रेम लक्षणा भक्ति प्रवाह के ऐसे विशाल सुपात्र बनकर न्हानालाल की काव्य प्रतिभा सफल उतरी है ।[2]

---

१ डा० धनवंत शाह, कवि न्हानालालमां व्यक्त थतुं जीवन दर्शन, पृ० ४२१ की ७ पंक्तियों का हिन्दी अनुवाद

२ शिवशंकर प्रा० शुक्ल, हरिसंहिता - एक शब्द सुमनांजलि, पृ० ४ की पंक्तियों का हिन्दी अनुवाद

कवि ने अपने शब्दों में विराट काव्य के लिये कहा है कि :

" हुं तो " विराट काव्य " शब्द प्रयोगनो विराटनुं, भूमानुं ब्रह्मनुं, विष्णुनुं महिमागान एवो अर्थ करु छुं ए रीते हरिसंहिता विराट काव्य छे ने अणु-काव्य पण छे " [1]

कवि के अपने ही शब्दों में भाव व्यंजना इस प्रकार है :-

" कवि कहे छे के आ विशाळी वैष्णवतानो ग्रंथ छे विष्णु ने वैष्णव ए बे शब्दोज विशाळताना द्योतक छे । जे भूमा ने अद्भुत छे । सत्य, चिन्मय ने आनंदघन छे । तेने विषेनी अनन्य श्रद्धा ने भक्ति ते वैष्णवता । तेनुं बुलंद गान ए भागवत, भागवतमां जे वैष्णवता छे ; जे नरसिंह भाई, जे वल्लभाचार्यो पोषी ने गांधीजीए जीवी जाणी ते संप्रदायना आवरणमां ढंकाई गई हती तेने कविए मुक्त करी । ते सर्वव्यापी, सर्व समन्वयी विष्णु जेटली व्यापक वैष्णवता ने कविए विशाळी वैष्णवता कही छे । वैष्णवो विषेनो कविनो आदर केटलो बधो छे । "

"वैष्णवो हरिनी वेणु, वैष्णवो हरिमंदिर
विशाळी वैष्णवतानो ग्रंथ आ हरिसंहिता "

अने विशाळी वैष्णवता प्रेमलक्षणा भक्तिनो श्रीमद् भागवतनो सनातन संदेश हरिसंहिता ए हेयामां उतार्यो छे " [2]

इस प्रकार यह " हरिसंहिता " पुरानी कथा भाग को लेकर युग को आधुनिकतम संदेश प्रदान करती है ।

---

१ शिवशंकर, प्रा० शुक्ल- हरिसंहिता एक शब्द - पुष्पांजलि, पृ० ५

२ वही, पृ० ६

तुलनात्मक विश्लेषण :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में अंकित कवि द्वय के काव्य के भावपक्ष के विवेचन से प्रकट है कि दोनों कवि प्रेम, सौंदर्य और माधुर्य भावना के कवि थे। प्राकृतिक सौन्दर्य के संदर्भ में देखा जाय तो वसन्त ऋतु और उसकी प्रतीकात्मक भावनाओं के प्रति दोनों में सहज आकर्षण था। कवि प्रसाद ने " वसंत ऋतु " से संबंधित अनेक प्रगीत भी लिखे हैं। कवि न्हानालाल ने तो " वसंतोत्सव " शीर्षक एक पूरा खण्ड-काव्य ही भावनापरक (डोलन शैली) में लिखा है। इस दृष्टिकोण से दोनों को समान काव्य प्रवृत्तियों के कवि कहा जा सकता है। युवावस्था को भी जीवन का वसन्त बताकर उसका प्रभाव इन्होंने अंकित किया है। प्रारंभ में दोनों ने प्रेम को वैयक्तिक उपकरण मान कर क्रमशः उसे व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर किया है। कवि न्हानालाल ने " वसंत-वसन्त " में परम प्रेम परब्रह्म कहा और प्रसाद ने " कामायनी " में उसका " आनंद " में पर्यवसान किया है। दोनों की प्रेम और सौंदर्य दृष्टि मांसल और विलास वैभव से हटकर आनन्द की ओर गतिशील है। प्रसाद ने " आंसू " में प्रेम की व्यापकता के बारे में कहा है कि-

" जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे
फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावे " [1]

इसी भावार्थ की पंक्तियां कवि न्हानालाल ने " ओज और अगर " में कही है।

" विश्व प्रेरणा समा सौन्दर्य ने तुं शोध छ
अनस्त, प्रभाउज्ज्वलुं, पुण्य प्रारब्धी
सूर्य पेठे हजारो हाथे पुष्टाए
जननी व्यारीए व्यारीए पाथरेलुं छे ए " [2]

१ आंसू, पृ० ७४ (२) न्हानालाल, ओज अने अगर, पृ० १३०

दोनों कवियों में राष्ट्र भक्ति - भारत की सर्वोपरिता - के विचार खूब दृढ थे। कई जगहों पर दोनों ने भारत की सर्वश्रेष्ठता व्यक्त की है। कवि प्रसाद ने " भारतवर्ष " कविता में भारत का यशोगान किया है। न्हानालाल ने " इंदुकुमार अंक-१ " में भारत की यश गाथा गाई है, यथा -

" पूर्व अने पश्चिमनी दांडी भारत छे
पृथ्वीने पोषी छे भूत काळमां अने
पोषशे भविष्यकाळमां ये आपणुं भारत " [१]

कवि प्रसाद ने बतलाया है कि -

" जगे हम लगे जगाने विश्व और लोक में
फैला फिर आलोक " [२]

दोनों को भारत, भारतीयता, भारत की संस्कृति और आध्यात्मिकता में दृढ मान्यता थी। सच्चे अर्थ में दोनों भी राष्ट्रवीर, राष्ट्रप्रेमी और राष्ट्रभक्त थे।

दोनों कवियों की मानवतावादी भावनाएं उनके काव्यों में प्रतिफलित हुई है। कवि प्रसाद की भावनाएं पूर्ण रूप से कामायनी के " कर्म " सर्ग के अंतर्गत और कवि न्हानालाल की राजसूयनी काव्य त्रिपुटि - में महाराजा एडवर्ड ने " और कुरुक्षेत्र महाकाव्य में " शरशय्या " काण्ड में एवम् हरिसंहिता विराट काव्य में यत्र तत्र फैली हुई प्राप्त होती है। न्हानालाल " वैष्णव जन तो तेने कहीए जे पीड पराई जाणे रे " इस अर्थ में परोपकारी, मानवसेवा भावी और वैष्णव थे। प्रसाद की मान्यता थी

" किसी को देख न सके विपन्न " (भारत वर्ष) काव्य

---

१ न्हानालाल, इंदुकुमार, अंक-१
२ प्रसाद, भारतवर्ष, स्कंद गुप्त

भावार्थ यह है कि दोनों कवियों के काव्यों में, गीतों में मुक्तकों में मानवतावादी वैष्णवी भावना का चित्रण है।

भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिकता से संबंधित भाव दोनों ने अपने काव्यों में उभारे हैं। कवि प्रसाद ने " कामायनी " में कवि न्हानालाल ने कुरुक्षेत्र और हरिसंहिता में। दोनों को ईश्वरभक्ति में दृढ विश्वास था और उससे संबंधित काव्य लिखे है न्हानालाल की " प्रेम भक्ति भजनावलि " और स्तुति अष्टक में भक्तिपरक गीत गुम्फित है। प्रसाद ने यत्र तत्र नियति के प्रति अपनी भावनाएं व्यक्त की हैं।

नारी की महत्ता :

दोनों भी कवि नारी की महत्ता और गौरव में मानने वाले थे। उससे संबंधित अनेक काव्य लिखे हैं। " प्रसाद " ने " कामायनी " में श्रद्धा के माध्यम से नारी की महत्ता, पत्नी के रूप में और माता के रूप में बतलाई है। कवि न्हानालाल तो " दाम्पत्य भावना " के कवि ही माने जाते थे और यत्र तत्र उन्होंने अपनी पत्नी माणेक बा की पूजा अर्चना की है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" पूजुं त्हने रसनी सुगंधे
पूजी प्रकाशुं मुज अंतर केरी वांछा " [१]

पत्नी के अर्थ में यह कवि का अर्पण काव्य है। कवि प्रसाद ने लज्जा सर्ग में बतलाया है कि -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में [२]

---

१ कैटलांक काव्यो, प्राणेश्वरी
२ कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० ११४

काका कालेलकर ने कवि न्हानालाल को " नारी गौरवनो कवि " इस पदावलि से विभूषित किया है ।

दोनों ने अपने काव्यों में नारी जीवन संबंधित भावनाएं उभारी हैं ।

दोनों के काव्यों में प्रेम और सौंदर्य से संबंधित शृंगार रस पूर्ण रचनाएं और संयोग, वियोग के भाव पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं । इसे रस राज माना है । दाम्पत्य जीवन में इसकी उपयोगिता स्वीकार कर दोनों ने आंतरिक भावों की काव्य सृष्टि की है । विप्रलंभ का महत्त्व बताला कर प्रेम का परम मूल्यांकन किया है । वियोग ही प्रेम का तप्त स्वर्ण है । आधार पर - प्रेम का भाव व्यक्त कर आंतरिक भाव सृष्टि का काव्य के उपादानों के माध्यम से व्यक्त करने का आदर्श प्रयास किया है । दोनों कवियों की शृंगार रस परक रचनाएं प्रचुर मात्रा में मिलती हैं ।

दोनों भी कवि भारत, भारत की संस्कृति और प्राचीनता के दृढ आग्रही थे फिर भी उन्होंने युग को पहचान कर प्राचीनता को आधार मान कर अपने युग की भावनाएं अपने महाकाव्यों में व्यक्त की है । कवि प्रसाद ने कामायनी में निर्वेद सर्ग में आज के समाजवादी सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से निरूपण किया है और कवि न्हानालाल ने " कुरुक्षेत्र " के " शरशय्या " काण्ड में राजा और प्रजा के धर्म के बारे में उपदेश देकर समाजवादी सिद्धान्तों को समझाये हैं । भावार्थ यह है कि समाजसुधार को आधार मानकर दोनों कवियों ने आधुनिक युग के समाजवादी सिद्धान्तों का निरूपण किया है ।

दोनों कवियों ने प्राकृतिक सौंदर्य मे शांति और आनंद की प्रेरणा की हैं । कवि न्हानालाल ने " जुहू के समुद्र किनारे " से और प्रसाद ने " सागर " से प्राकृतिक सौंदर्य को निहार कर दोनों कवि नियति की सर्वोपरिता और भूमा का महत्त्व भी स्वीकार करते हैं । इसके अतिरिक्त दोनों में काव्य सृजन के लिए भी

प्राकृतिक सौंदर्य एक आधार प्रतीत होता है जैसे आंग्ल कवि वर्डस्वर्थ ने कहा है कि :- Poetry is an imagination recollected in tranquility

दोनों कवियों ने काव्य, नाटक, निबंध आदि लिखे हैं। करुण रस का प्रभाव दोनों की रचनाओं में लक्षित होता है। कवि प्रसाद ने " आंसू " में न्हानालाल ने " ओज अने अगर " में ये दोनों प्रणय काव्य हैं। दोनों कवियों ने जीवन के अनुभवों को काव्यों में ढालने के प्रयास किये हैं।

दोनों कवियों ने इतिहास के साथ कल्पना का मेल साधा है। प्रसाद ने कामायनी में और न्हानालाल ने " हरिसंहिता " में। " हरिसंहिता " में कृष्ण की यात्रा की कल्पना कवि कल्पित है वह भागवत् अथवा महाभारत के आधार पर नहीं है।

दोनों कवि मौलिक और विशाल प्रतिभावाले थे। दोनों शक्ति-वादी, आशावादी और आनंदवादी थे। दोनों की वृत्ति जीवन के अंतिम दिनों में अध्यात्म की ओर झुकी थी। वे क्रम क्रम से ऊर्मि से भावना की तरफ झुके। भावना से आदर्शोपासक जीवनदृष्टा बने और आदर्शपूजक साहित्य सृष्टि से संस्कृति के प्रति गतिशील रहे।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दोनों कवियों की काव्य-धर्म की भावनाओं और उद्देश्य में पर्याप्त समानता है किन्तु इस समानता के होते हुए भी उनकी काव्य-चेतना में भिन्नता भी है।

असमानता :

दोनों कवियों में भाव साम्य होते हुए भी उनके काव्य में अनेक प्रकार

की भावों से सम्बन्धित भिन्नताएं लक्षित होती हैं। न्हानालाल ब्राह्मण होने के नाते उनको गायत्री से आत्मबल प्राप्त था जिसका स्वीकार उन्होंने " ब्रह्मजन्म " काव्य में किया है। प्रसाद जी शैव-दर्शन से प्रेरित थे। प्रसाद जी भक्ति को आंतरिक उपकरण (तत्त्व) मानते थे अतः वे उसकी कहीं भी चर्चा या काव्य-रचना नहीं करते थे। कवि न्हानालाल उसे प्रकट में लाते थे।

तृतीय अध्याय में कवि न्हानालाल के दाम्पत्य भाव की श्रेष्ठता व्यक्त की है। प्रसाद जी को इसका अभाव रहा। दाम्पत्य भाव की पूर्णता के कारण न्हानालाल की प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएं गतिशील रहते हुए मर्यादा के बंधनों में निबद्ध रहीं। प्रसाद जी का दाम्पत्य जीवन उजड़ा हुआ होने के कारण उनकी प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएं स्वच्छन्द, उन्मुक्त और अमर्यादित रही। " आंसू " की विरह वेदना की तीव्रता कवि प्रसाद की अपने विरह जीवन की अनुभूति है। न्हानालाल में ऐसी निजी विरहानुभूति नहीं थी। विरह-वेदना की जो उद्दाम और मार्मिक अभिव्यंजना प्रसाद के काव्य में दृष्टिगोचर होती है, वह काव्योत्कर्ष की दृष्टि से अप्रतिम है ही। साथ ही इस क्षेत्र में वे कवि न्हानालाल से आगे बढ़े हुए कहे जा सकते है।

यदि काव्य के भाव-जगत के दृष्टिकोण से दोनों की काव्य कृतियों की तुलना की जाय तो न्हानालाल में जीवन के पक्षों तथा तत्सम्बन्धी भावों की जितनी व्यापकता और विस्तार है उतना प्रसाद के काव्य में नहीं है। प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य के मार्मिक तथा भावाभिव्यंजना शक्ति में निश्चय ही कवि न्हानालाल से आगे बढ़ जाते हैं, किन्तु सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि जीवन के पक्षों से सम्बन्धित भावों का जो विस्तार न्हानालाल में मिलता है, वह एक प्रकार से गुजरात के जीवन की संपूर्ण अभिव्यक्ति में समर्थ है। एक अन्य अन्तर दोनों की भाव-योजना के प्रस्तुतीकरण का भी है। प्रसाद की भावाभिव्यक्ति में उनके दार्शनिक चिन्तन की छाप है किन्तु यह भावपक्ष को दबाती नहीं, बल्कि उसे अधिक मनोज्ञ एवं प्रभविष्णु बनाती है। दूसरी ओर कवि न्हानालाल भावों को सहज

स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करते हैं। अतः जहां भाव-योजना निजी मर्मस्पर्शी जीवनानुभूतियों से सम्बद्ध हैं, वहां वह पाठक या श्रोता को निश्चय ही रसमग्न करती है ; किन्तु जहां वे चिन्तन या विचार पक्ष के क्षेत्र में उतरते हैं वहां उनका काव्य, कविता की अपेक्षा पद्य ही कहा जा सकता है। ऐसी काव्य-कृतियों के सम्बन्ध में हम यथास्थान यह निर्दिष्ट कर चुके हैं कि भाव-योजना के दृष्टिकोण से ऐसी रचनाओं का कोई उल्लेखनीय महत्त्व नहीं हैं।

करुण रस के प्रस्तुतीकरण में दोनों के काव्य से सम्बन्धित निबन्धों की भी यहां संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। प्रसाद के निजी जीवन में ऐसे शोकदायी प्रसंग आये अवश्य किन्तु उन्होंने उसे एक प्रकार से पचा लिया। "कामायनी " में आनेवाले प्रसंग महाकाव्य की कथा के सन्दर्भ में है जिसे वैयक्तिक अनुभूति नहीं कहा जा सकता। किन्तु कथा के बीच मार्मिक प्रसंग की योजना जो मनु के आहत होने पर " संघर्ष " में हुई है वह पाठक या श्रोता पर गहरा प्रभाव डालती है। दूसरी ओर कवि न्हानालाल के " श्रावणी अमास " तथा " ब्रह्म दीक्षा " जैसे शोक गीत वैयक्तिक अनुभूति से संलग्न या सम्बद्ध है। अतः प्रभाव और मार्मिकता के दृष्टिकोण से वे उतने ही सक्षम है किन्तु कथाप्रसंग में ऐसी अवतारणा वे " कुरुक्षेत्र " शीर्षक प्रबन्ध काव्य में नहीं कर पाये।

प्रसाद जी की " कामायनी " ; " आँसू " तथा " लहर " में मनोवैज्ञानिक स्तर की ऐसी अनेक पंक्तियां उपलब्ध हैं। पूरा " कामायनी " महाकाव्य मनोवैज्ञानिक स्तर का काव्य है। उसमें मानवीय वृत्तियां — चिन्ता, आशा, श्रद्धा, लज्जा, वासना, आदि का मौलिक रूप से वर्णन है ! ऐसे मनोवैज्ञानिक ढंग के वर्णन न्हानालाल में अप्राप्य है। जो भी प्रेम और सौन्दर्य परक वर्णन मिलते हैं वे अपने निजी अनुभव पर और इतिवृत्तात्मक है।

न्हानालाल को पत्नी सुख की पूर्ण प्राप्ति के कारण वे पत्नी के प्रति पूज्य भावना ही नहीं अपितु आत्म समर्पण की भावना व्यक्त करते थे। अनेक

दिव्य भावनाओं से सत्कार करते थे जैसे " प्राणेश्वरी ", " कुलयोगिनी " "लग्न-दिक्षा " आदि काव्यों में प्रसाद नारी महत्ता के पक्षपाती थे लेकिन पत्नीमय बन कर पागल बनना उनको रुचिकर नहीं था ।

कवि प्रसाद ने मानव वृत्तियों पर आधारित " कामायनी " महा-काव्य लिखा । वीर रस और राष्ट्रीय भावना पर आधारित कवि न्हानालाल ने " कुरुक्षेत्र " लिखा । दोनों भी महाकाव्य है लेकिन दोनों की भावनाएं विभिन्न हैं । ध्येय आनंदवाद का दोनों का समान है ।

न्हानालाल ने नियति की परम सत्ता में मानते हुए कृष्ण का मंत्र तंत्र यशोगान किया है । उदा० हरिदर्शन, वेणुविहार, हरिसंहिता आदि । अतः यह निःसंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि कवि न्हानालाल के वैष्णव संस्कार काव्याभिव्यक्ति को प्रभावित करते हैं और कहीं-कहीं पर वे कविकर्म निर्वाह से अलग हो कर एक भावुक भक्त बन जाते हैं । प्रसाद का कवि व्यक्तित्व उनकी निजी मान्यताओं से कहीं भी बाधित नहीं दिखाई पडता है ।

प्रसाद नियति की सर्वोपरी सत्ता में मानते हुए भूमा का ही प्रभाव मानते थे और शिव को उसके प्रतीक के रूप में मानते थे और अपनी भावनाएं अंतर में व्यक्त करते थे । बाहर काव्य सुमन द्वारा प्रकाश में नहीं लाते थे ।

निष्कर्ष :
०००००००

भाव योजना में दृष्टिगोचर होनेवाली उपर्युक्त साम्य और वैषम्य द्वितीय तथा तृतीय अध्यायों के अनुशीलन के प्रकाश में उपर्युक्त ही कहा जायगा । प्रत्येक कवि की रुचि, प्रतिभा, काव्य-चेतना, कलागत अभिव्यक्ति अपनी निजी होती है । भाव-योजना सम्बन्धी पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है कि ये वृत्तियां दोनों की भाव-योजना की भिन्नता में पर्याप्त कार्यशील कही जा सकती हैं । दोनों

के भावपक्ष तथा उसके प्रस्तुतीकरण की आधारभूत भूमिकाएं जिन्हें हम यथास्थान दिखा आये हैं , उनके काव्य के शिल्प या कलापक्ष को भी प्रभावित करती हैं जिसका अनुशीलन परवर्ती अध्याय का विषय है ।

oooooo

Chapter-5

पंचम अध्याय

प्रसाद और नानालाल के काव्यों का कलापक्ष : शास्त्रीय अध्ययन

प्रसाद - छंद, अलंकार, गुण, दोष, भाषा, शैली (छायावादी) :

काव्य के दो पक्ष होते हैं - प्रथम अनुभूति या भावपक्ष तथा दूसरे अभिव्यक्ति या कला-पक्ष । किसी कवि के कृतित्व का समुचित मूल्यांकन इन दोनों ही पक्षों के सम्यक् अनुशीलन पर ही निर्भर करता है । इसके साथ ही यह उल्लेखनीय तथ्य है कि हमारे आलोच्य दोनों ही कवि जिस काव्य चेतना से सम्बन्धित हैं उसमें शिल्प का महत्त्व अत्यधिक है । यह अवश्य है कि इन्होंने भावोत्कर्ष की उपेक्षा यथासम्भव नहीं की है, जिसे कि पूर्ववर्ती अध्याय के अंतर्गत लक्ष्य किया जा चुका है । हृदगत भावों की प्रभावशाली एवं मनोज्ञ अभिव्यंजना के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें अनुरूप भाषा, अभिव्यंजना प्रणाली, छन्द-योजना के साथ प्रस्तुत किया जाय । जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है कि ये दोनों ही कवि आधुनिक युग की देन है और यह सर्वविदित तथ्य है कि इस युग में आकर काव्य का शिल्प एक नया मोड ले रहा है । प्रायः दोनों का कृतित्व परम्परागत अभिव्यंजना-प्रणाली से आरम्भ हुआ और आगे चल कर उन्होंने अपनी प्रतिभा और साधना के बल पर अभिनव शिल्प-प्रणाली का श्रीगणेश किया । इस दृष्टिकोण से आधुनिक हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार श्री जयशंकर प्रसाद का ऐतिहासिक महत्त्व है उसी प्रकार कवि श्री न्हानालाल भी एक नयी काव्य-चेतना के सूत्रपात्र कर्ता के रूप में ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं ।

जयशंकर प्रसाद तथा कवि न्हानालाल की साहित्य परम्पराएं भिन्न रही हैं और साथ ही दोनों की प्रेरणाएं भी पर्याप्त अन्तर रखती हैं । अतः विवेचन गत सुविधा के विचार से उनके काव्यों के शिल्प-पक्ष पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाना अपेक्षित है ।

जयशंकर प्रसाद के काव्य का कलापक्ष :

शिल्प-पक्ष की दृष्टि से प्रसाद जी की कृतियों को दो भागों में बांटा जा सकता है । प्रथम तो वे आरम्भिक कृतियां हैं जिनमें कवि की काव्य-चेतना

वस्तु-निष्ठ ही रही है। इसके अंतर्गत चित्राधार, कानन-कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्त्व तथा प्रेम-पथिक जैसी रचनाएं आती हैं। कालक्रम के दृष्टिकोण से भी ये आरम्भिक कृतियां हैं। हां, " प्रेम-पथिक " में उसका कवि शिल्प के नवीन पथ के सन्धान के लिए यत्नशील अवश्य दिखायी पड़ता है। अतः एक प्रकार से इसे सन्धिकाल की रचना कह सकते हैं। दूसरे प्रकार की वे रचनाएं हैं जो छायावादी काव्य का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रसाद के कवि-व्यक्तित्व को अक्षर और अमर बनानेवाली वस्तुतः यही कृतियाँ मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। अतः इन तथ्यों के प्रकाश में दोनों प्रकार की रचनाओं पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जायगा।

आरम्भिक कृतियां :

भाषा, छन्द, अलंकार-योजना तथा शैली आदि के दृष्टिकोण से प्रसाद जी की आरम्भिक रचनाएं कला-पक्ष के विविध आयामों की द्योतिका हैं। उदाहरण स्वरूप " चित्राधार " में संकलित रचनाएं कवि ने बीस वर्ष की अवस्था तक की है, जिनमें कुछ छोटे-मोटे कथा-काव्य हैं अन्य और शेष मुक्तक रचनाएं हैं जिनकी भाषा ब्रज है, जब शेष कृतियों की भाषा खड़ी बोली है। इतना ही नहीं, अपितु एक के बाद दूसरे में कलापक्ष का विन्यासक्रम बदलता हुआ क्रमशः विकासशील होता गया है। अतः इस स्थिति के प्रकाश में प्रत्येक कृति के अभिव्यंजना-शिल्प के संक्षिप्त अनुशीलन के पश्चात् कला-पक्ष का समग्रतया अध्ययन उचित प्रतीत होता है।

" चित्राधार " प्रसाद जी का विभिन्न रचनाओं का संकलन है जिसमें लगभग १९१० ई० तक रचित कविताएं संग्रहीत है।[१] कानन-कुसुम तथा करुणालय जैसी रचनाओं को जो प्रथम संस्करण में समविष्ट थीं, द्वितीय संशोधित

१ चित्राधार - द्वितीय संस्करण में प्रकाशकीय वक्तव्य।

संस्करण से पृथक कर दिया गया है । चूंकि प्रस्तुत अध्ययन में इन कृतियों पर स्वतंत्र रूप से विचार किया गया है, अतः यहां " चित्राधार " के द्वितीय संस्करण को ही अपने विवेचन का आधार बनाया जा रहा है । इसमें तीन लम्बी कविताएं, बाइस छोटी तथा चालीस कवित एवं १२ पद हैं । इनके अतिरिक्त कुछ गद्य-कृतियाँ भी हैं जो कि हमारे अध्ययन-परिधि से बाहर की है ।

सम-सामयिक काव्य-प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में यदि इन रचनाओं पर विचार किया जाय तो सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि ये द्विवेदी युग की हैं । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों से गद्य और पद्य की भाषा की एक्यता का जो आन्दोलन बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से ही हिन्दी-जगत में चलाया गया उस समय एक ओर ब्रजभाषा काव्य-समृद्ध परम्परा थी और दूसरी ओर कुछ नवोदित प्रतिभाओं को साथ लेकर खड़ीबोली के काव्य-सर्जन का अभियान आरम्भ हुआ । यह वह युग था जबकि अनेक समर्थ कवि ब्रजभाषा की काव्य-माधुरी को छोड़ने को तैयार न थे । जगन्नाथदास " रत्नाकर " का उद्धव शतक तथा और कृतियां लगभग उन्हीं दिनों प्रकाश में आयीं । यदि देखा जाय तो कदाचित् उनकी टक्कर का कवि उस समय खड़ी बोली की काव्य धारा के पास न था । ब्रज की चमत्कृत शैली, सरस, कोमल पदावली, मधुर-मंजुल शब्द-चयन मनोरंजक कल्पना और चित्ताकर्षक चित्रोपमता, सजीवता एवं संगीतात्मक छन्द-छटा बरबस ही काव्य-मनीषियों तथा रसिकों को अपनी ओर आकृष्ट करती रही । भारतेन्दु जी ने गद्य-शैली को गति और दिशा देने का युगान्तकारी कार्य किया किन्तु काव्य रचना में वे ब्रज की उपर्युक्त धारा से ही जुड़े रहे । श्री जयशंकर प्रसाद को काव्य के ये परम्परागत संस्कार मिले थे, अतः प्रारम्भिक कृतियों में ब्रजभाषा की काव्य-परम्परा का अनुगमन स्वाभाविक ही कहा जायेगा ।

शैली और भाषा-प्रयोग की दृष्टि से ब्रजभाषा की रचनाएं दो प्रकार की हैं । कवित्त और पदों की भाषा चलती हुई और प्रवाहमयी है । पदावली

सरल, मधुर, और सरस है ; किन्तु इतर छन्दों जैसे रोला आदि के प्रयोग जो " वन-मिलन ", " प्रेम-राज्य " तथा " रसाल मंजरी " जैसी कृतियों में मिलते हैं, उनमें संस्कृत की तत्सम एवं सामासिक पदावली का बाहुल्य है । इस अंतर को निम्नलिखित उदाहरणों में लक्ष्य किया जा सकता है :-

(क) सरस एवं प्रवाहमयी शब्द योजना

(१) ऐसो ब्रह्म लैइ का करि हैं ?
जो नहिं करत, सुनत नहिं जो कुछ, जो जन पीर न हरि हैं ।
होय जो ऐसो ध्यान तुम्हारो ताहि दिखाओ मुनि को ।
हमरी मति तो, इन झगडन को समुझि सकत नहिं तनिको
(चित्राधार, तृतीय संस्करण, पृ० १८६)

(२) देखे दुख दूनो उमगत अति आनंद सो,
जान्यो नहिं जाय यहि, कौन-सो हरस है ।
तातो-तातो कढि रूखे-मन को हरित करे,
एरे मेरे आंसू । ते पियूष ते सरस है । "
(चित्राधार, मकरन्द बिन्दु, पृ० १८२)

(३) प्रेम की प्रतीति उर उपजी सुभाइ सुख,
जानियो न भूलि याहि छलना अनंग की ।।
खैंचि मनमोहन ते काट-पेंच कौन करे,
चली अब ढीली बाढ प्रेम के पतंग की ।।
(चित्राधार, मकरन्द बिन्दु, पृ० १८२)

उपर्युक्त उद्धरणों की भाषा रीतिकालीन शैली के सर्वथा अनुरूप तथा सरस और स्वाभाविक भाषा प्रयोग से संयुक्त है । " काट-पेंच ", " ढीली बाढ " जैसी लोकभाषा की मुहाविरेदार पदावली की सुन्दर छटा इसमें वर्तमान है । हां कहीं कहीं

ब्रजभाषा की प्रकृति में सामान्य शब्द के प्रयोग का न ढलना जो कि प्रथम उदाहरण में " फगडन " शब्द में दृष्टिगोचर होता है, अवश्य खटकता है। और वन-मिलन जैसी रचनाओं में संस्कृत की तत्सम और सामासिक पदावली का प्रयोग मिलता है। ऐसे स्थलों में भाषा कृत्रिम और कहीं कहीं दुरूह हो गयी है -

" वल्कल-वसन-विभूषित अंग सुमन की माला।
कर्णिकार को कर्णफूल विस्वल्थ विसाला।।"
(चित्राधार-वनमिलन, पृ० ९२)

किन्तु सर्वत्र ऐसी स्थिति नहीं है।

भाषा-प्रयोग के उपर्युक्त विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि परम्परागत-भाषा प्रयोग में कवि प्रवीण है और साथ ही वह नये प्रयोग की दिशा के सन्धान की ओर उन्मुख है, भले ही उस पर वह यहां उतना अधिकार न प्राप्त कर सका है, जैसा कि " कामायनी " जैसी कृतियों में दिखायी पड़ता है। डा० गणेश खरे ने लिखा है कि " एक प्रयोगशील कवि का भाषा पर जैसा अधिकार होना चाहिए उससे कहीं अधिक प्रसाद जी ने इन रचनाओं में रखा है। "[1] डा० खरे के इस कथन से उपरिनिर्दिष्ट तथ्यों को प्रकाश में अंशतः सहमत हुआ जा सकता है।

अलंकार-योजना की दृष्टि से चित्राधार की कविताओं में रीतिकालीन परिपाटी का सफल प्रयोग हुआ है। अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, सन्देह आदि अलंकारों का सफल प्रयोग एक-आध कविताओं को छोड़कर प्रायः सभी में मिलता है। " चन्द्रोदय " तथा " इन्द्र धनुष " जैसी एक-आध रचनाओं में अलंकार-योजना द्वारा शिल्प को निखारने का प्रयास कम दिखाई पड़ता है, और तत्सम-बोझिल शब्दावली भावाभिव्यक्ति में बाधक भी कही जा सकती है। इसके

१ युग कवि प्रसाद, पृ० ५५

अतिरिक्त मानवीकरण के भी प्रयोग इन रचनाओं में मिलते हैं।

छन्दोविधान के दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो प्रसाद में ब्रजभाषा काव्य-परम्परा के अनेक विध छन्दों के प्रयोग पर समर्थ अधिकार दृष्टिगोचर होता है। रीतिकालीन काव्य में कवित्त, सवैये और दोहों के प्रयोग सर्वाधिक हुए हैं किन्तु प्रसाद जी ने अन्य छंदों के प्रयोग किये हैं। उदाहरणार्थ " प्रेमराज्य ", " नीरद " और " रसाल मंजरी " में रोला, " विदाई " में दोहा, " उषानलता " में सिंह, " विभो " में अरिल्ल " भारतेन्दु प्रकाश " में हरिगीतिका, " कल्पना-कुंज " में दिग्पाल, " मानस " में शृंगार तथा " अष्टमूर्ति " में शक्ति छन्द का प्रयोग है। " संध्या तारा ", " विनय " और " रसाल " में बंगला के पयार छन्द का प्रयोग है। इसके विषय में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ये विषयवस्तु और भाव के सर्वथा अनुरूप हैं और इस कारण ये प्रसाद की कला मर्मज्ञता के परिचायक भी कहे जायेंगे। केवल " वनमिलन " शीर्षक कविता में प्रायः सर्वत्र शब्द-योजना कुछ इस प्रकार की है कि छन्द के अनुरूप यति-गति प्रायः शिथिल हो गयी है। अतः निष्कर्ष रूप में छन्द-प्रयोग और उनके वैविध्य को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह प्रसाद की प्रयोगशील काव्य-चेतना का परिचायक है।

विषय-वस्तु और भाव-पक्ष के पूर्ववर्ती अध्ययन के प्रकाश में " चित्राधार" की काव्य-शैली पर विचार किया जाय तो इसकी अनेक रचनाओं में इतिवृत्तात्मकता, विवरण की प्रधानता तथा मकरन्द-बिन्दु में कहीं-कहीं उपदेशात्मकता दृष्टिगोचर होती है। अयोध्या का उद्धार, प्रेम-मिलन जैसी रचनाओं में इतिवृत्तात्मकता है जिनकी कथावस्तु संस्कृत साहित्य से ली गयी है किन्तु प्राप्त तथ्यों की नवीन व्याख्या तथा कल्पना के सहारे वर्णनों में प्रभावोत्पादकता अथवा मार्मिकता का यथेष्ट सन्निवेश इसमें नहीं दिखाई पड़ता है, जो कि परवर्ती-काव्यों में मिलता है। युगीन संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इनमें द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता है। अतः निष्कर्ष रूप में " चित्राधार " की कविताएं प्रसाद द्वारा काव्य-रचना के क्षेत्र में आरम्भिक पदन्यास को प्रकाशित करती हैं। प्रतीत होता है कि कवि

प्राचीन युग में झांक कर भाव-रत्न लाने के लिए उत्सुक है। शिल्प की दृष्टि से नव-पथ संधान वह नहीं पा रहा है किन्तु प्रकृति के रम्य वातावरण की ओर उसका आकर्षण उसकी भावी काव्य प्रवृत्तियों की पूर्वपीठिका अवश्य कहा जा सकता है।

(२) कानन कुसुम :

" कानन-कुसुम " प्रसाद के आरंभिक कृतित्व का द्वितीय पदन्यास है। " चित्राधार " के अंग के रूप में इसके प्रथम दो संस्करण तो प्रथम पदन्यास के ही परिचायक कहे जायेंगे, किन्तु स्वयं कवि द्वारा संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप में इसका तृतीय संस्करण एक स्वतंत्र रचना के रूप में प्रकाश में लाया गया। अतः प्रस्तुत विवेचन का आधार उक्त तृतीय संस्करण को ही बनाया गया है। इसके अंतर्गत केवल खड़ी बोली में रचित कविताएं हैं।

> " इन कविताओं में वही परंपरा का पालन है। प्रकृति के अधिकांश वर्णनों में अन्तः साक्षात्कार का गुण नहीं है। उनमें स्थूलता एवं द्विवेदीयुगीन कविता की-सी इतिवृत्तात्मकता है। वर्णन-पद्धति में कहीं कहीं अतिशय अलंकृत है। " [1]

विषय वस्तु और छंद की दृष्टि से नवीन प्रयोग हुए हैं।

" कानन कुसुम " की भाषा भावानुकूल एवं प्रांजल है। आख्यानक कविताओं में उनका भाषा-सम्बन्धी अधिकार अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। " जलविहारिणी ", " निशीथिनी ", " दलित कुमुदिनी " आदि रचनाओं में प्रसाद जी की भाषा का कलात्मक एवं अलंकारिक रूप भी द्रष्टव्य है।

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १०

" प्रथम प्रभात " " नव वसंत " आदि में भाषा की प्रतिकात्मक शक्ति, एवं ध्वन्यात्मक का अच्छा परिचय मिलता है। भाषा का सामान्य आदर्श द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक रहा है। किन्तु बीच-बीच में प्रसाद जी अपनी अद्वितीय प्रतिभा के बल नयी छायावादी भाषा के निर्माण में संलग्न दिखाई देते हैं।

अलंकारिक क्षेत्र में सामान्यतः कवि को अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, संदेह, रूपक, आदि अलंकार विशेष रूप से इष्ट है किन्तु मूर्त-अमूर्त उपमानों तथा मानवीकरण जैसे अलंकारों के प्रयोग में भी वे रमे हैं।

इस कृति में प्रसाद जी की " सरोज ", " रमणीहृदय ", "प्रियतम ", " मोहन", " नहीं डरते ", " महाकवि तुलसीदास ", प्रथम, परम आदर्श विश्व का जो कि पुरातन " एवं " गान " ये ८ चतुर्दशपदियां भी समाहित हैं। पाश्चात्य प्रगीत काव्य की इस शैली को ग्रहण कर प्रसाद जी ने इसे अपने परवर्ती काल में प्रौढता भी प्रदान की है। आरंभिक ५ चतुर्दशपदियां तो ढांचा मात्र है। किन्तु अंतिम तीनों रचनायें इस काव्य-रूप की वैचारिक गरिमा से पूर्ण है।

दोष :

कहीं कहीं व्याकरण की भूलें लक्षित होती है। एवं असाहित्यिक अप्रचलित ग्रामीण या ब्रजभाषा के चलते शब्दों का प्रयोग मिलता है। पद तथा पदावलियों में भी भाषा एवं काव्य प्रयोग संबंधी कुछ न कुछ दोष वर्तमान है। इतना ही नहीं, च्युतसंस्कृति, अधिक पदत्व आदि दोषों के उदाहरण भी मिलते हैं। " अहा " जैसे निरर्थक शब्द भी कई पंक्तियों में पाद-पूर्ति हेतु प्रयुक्त किए गए हैं।

प्रसाद जी ने अष्टपदी और षट्पदी कवितायें भी लिखी है। " वन्दना " और " नमस्कार " " प्रभो " में आपने उर्दू का गज़ल शैली का प्रयोग

किया है। " प्रथम प्रभात " " निशीथ नदी ", " गंगा सागर ," भवसागर " " मिल जाओ गले ", " भरत ", " शिल्प सौन्दर्य ", " वीर बालक " और " श्रीकृष्ण जयंति " शीर्षक रचनायें भिन्न तुकान्त छंदों में लिखी गई है। इनमें से " प्रथम प्रभात ", " शिल्प सौन्दर्य ", " भरत " आदि कविताओं में अरिल्ल छंद का अतुकान्त रूप प्रयुक्त है। " नववसंत ", " जल-विहारिणी ", " सज्जन ", " कुरुक्षेत्र " आदि में कवि ने गीतिका, " रमणी हृदय ", " महाकवि तुलसीदास " आदि में रोला और उल्लाला, " मिलन " में राधिका तथा " याचना " " हे सारथे रथ रोक दो " आदि में हरिगीतिका छंदों एवं " मकरंद-बिन्दु " में पद-शैली का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार वस्तु तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियों से प्रसाद की यह कृति प्राचीन और नवीन की संधि पर खड़ी है। मुख्यतः प्रसादजी ने इस कृति की समस्त रचनाओं में द्विवेदी युग में सर्वाधिक प्रचलित छंदों का ही व्यवहार किया है, किन्तु कवि इनसे परे धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म और मूर्त से अमूर्त की ओर गतिशील बन रहा है।

इसमें स्वतंत्र इतिवृत्तात्मक कथा, इतिवृत्तवाले प्रकृतिदर्शन, पौराणिक आख्यान तथा रोमांटिक रचनाएं हैं। भाषा भावानुसारिणी सहज और सरल है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि " कानन-कुसुम " मुख्यतः भाषा तथा छंद प्रयोग के दृष्टिकोण से शिल्प के नये आभास का परिचायक है।

(२) करुणालय :

" करुणालय " प्रसाद जी की स्वच्छन्द काव्य-प्रवृत्ति अर्थ या अभिव्यंजना की नूतन पद्धति का सब से पहला काव्य है। यहीं पर वे नवीन ढंग की कविता का प्रयोग करते हुए अपने नवीन विचारों, नवीन सिद्धान्तों एवं नवीन प्रेरणाओं को लेकर अवतीर्ण हुए हैं।[1]

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० १२

यह दृश्य काव्य गीति नाट्य के ढंग पर लिखा गया है। इसमें अंग्रेजी ब्लैंक वर्स छन्द की सत्ता में तुकान्तहीन मात्रिक छंद का प्रयोग है। इसके संबंध में कवि प्रसाद ने लिखा है कि –

> " हिन्दी में इस (तुकान्तहीन मात्रिक छंदात्मक) कविता का प्रचार कैसा लाभदायक होगा, इसी विचार के लिए आज यह काव्य पाठकों के सामने उपस्थित किया गया है। " [1]

इस कृति में छन्दगत नवीन प्रयोग की प्रवृत्ति प्रमुख रही है एवं वस्तुगत संदेश को गौणता प्रदान की गई है। उसकी सफलता के दृष्टिकोण से इसमें आद्यंत कहीं भी शैथिल्य नहीं मिलता। २१ मात्राओं का अरिल्ल छंद का अंतान्त रूप इसमें प्रयुक्त किया गया है। वाक्यों की समाप्ति पर पंक्तियों के बीच में भी पूर्ण-विराम दिये गये हैं। इस तरह करुणालय के चरण अलग न होकर चल हैं। इस छंद में वर्ण-विन्यास का प्रवाह और श्रुति के अनुकूल गति भी विद्यमान है। गीति-रूपक की प्रकृति के छंद सर्वथा अनुकूल है।

भाषा खड़ी बोली है किन्तु परिष्कृत नहीं है। इसमें यत्र तत्र " निरय ", " प्रभंजन ", " चूप " जैसे तत्सम शब्द मिलते हैं। कहीं कहीं ब्रज भाषा के संस्कार भी विद्यमान हैं। व्याकरण संबंधी अशुद्धियां भी मिलती है। इन सब के होते हुए भी भाषा सहज, स्वाभाविक और पात्रों की चारित्रिक गरिमा के अनुकूल है।

अलंकार-विधान की ओर कवि विशेष सजाग नहीं रहा है। आरंभ में प्राकृतिक वर्णन के संदर्भ में अवश्य कुछ नये उपमान आ गये हैं। इन उपमानों में मानवीयकरण की प्रवृत्ति भी परिलक्षित है। यथा –

" वंशी रव का आकाश में परिमल सा फैलना "

---

१ करुणालय की सूचना

करुणालय में परंपरागत उपमानों का लगभग अभाव ही है। इन नूतन बिम्ब-विधानों और अप्रस्तुतों के प्रस्तुतीकरण में प्रसाद जी की स्वच्छंद कल्पना शक्ति ही सक्रिय रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि कवि अलंकार-योजना की परम्परागत चमत्कारिकता को छोड कर एक ओर सहज अभिव्यक्ति का प्रमाणी है, तो दूसरी ओर नये शिल्प-विधान की ओर उन्मुख भी है।

प्रसाद जी ने इसमें बीच बीच में गद्य भाषा में सर्वत्र आवश्यक रंगमंचीय निर्देश प्रमुख रूप प्रस्तुत कर दिये हैं। दृश्य-विधान भी रंगमंचीय दृष्टि को ध्यान में रख कर प्रस्तुत किये गये हैं। एक पर्याप्त विकसित रंगमंच पर " करुणालय " को न्यूनतम परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। वैसे इस कृति में ध्वनि काव्य-रूपक की प्रमुख विशेषतायें भी अंतर्निहित दिखाई देती है।

समग्रतः आरंभिक काल की रचना होने के कारण " करुणालय " कई दृष्टियों से एक शिथिल रचना है। यहाँ पर प्रसाद जी का मनोवृत्तियों एवं प्रवृत्तियों के वे बीज विधान है जो " आँसू " " कामना ", " चंद्रगुप्त " आदि में अंकुरित होते हुए कामायनी में जाकर पल्लवित एवं पूर्ण विकसित हुए है।[1] कृति की करुणता तो आगे विकसित होकर उनके जीवन-दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है।

महाराणा का महत्त्व :

ऐतिहासिक घटना पर आधारित यह खण्ड काव्य है। प्रसाद जी ने इस कृति में अपनी स्वच्छंदतावादी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। भाषा परिष्कृत खडी बोली है। कथा-प्रसंग में आये हुए कथोपकथन अत्यंत चुस्त तथा सशक्त हैं जिनके साथ ही परिस्थितियों के परिवेश अत्यंत सजीव और मनोवैज्ञानिक ढंग से

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४२

प्रस्तुत हुए हैं। अतः प्रस्तुत काव्य में नाटकीयता का सुन्दर समावेश दृष्टिगोचर होता है। भावों में परिष्कृति तथा सजीवता है। भाषा में पूर्ववर्ती रचनाओं से अधिक प्रौढता एवं शैली में मंथर प्रवाहमयता है। द्विवेदीयुग के आदर्श का प्रचार होते हुए भी स्वाभाविकता के गुण का तिरोभाव नहीं है। भिन्न-सुकांत होने के कारण इसमें विशेष नवीनता आ गयी है।[1]

भाषा में प्रचलित तत्सम शब्दों और पदावलियों का अधिक प्रयोग है। उदाहरणार्थ " शिविका ", " असि ", " चम्पु ", स्वकीय आदि। सामासिक पदावलियों का प्रायः अभाव है। कहीं कहीं व्याकरण संबंधी अशुद्धियां मिलती है। तथा " थोथा ", " लथोडता " जैसे देशज शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं।

समग्रतः भाषा सहज, स्वाभाविक, वर्णन के अनुरूप, ओज, माधुर्य, तथा प्रसाद गुण संपन्न और प्रभावपूर्ण है। शब्दों में अभिधाशक्ति की ही विशेषता लक्षित होती है।

अलंकार-योजना की दृष्टि से इस कृति में प्रसाद जी की अप्रस्तुत योजना अधिक स्वच्छंद और नवीनता लिए हुए है।
उदाहरणार्थ - " पतझड का क्रोध प्रकट करना,
प्रभंजनका क्रूर सदृश्य घूमना
राजपूतों का लू समान आना "
ये और ऐसे ही अन्य उपमान प्रसाद जी की विकासशील कल्पना-शक्ति के अच्छे परिचायक हैं। इस कृति में प्रकृति के साथ अधिक हार्दिकता होने के कारण मानवीकरण की प्रवृत्ति विशेष लक्षित होती है। उदाहरणार्थ -
चांदनी का प्रेमिका-रूप में अवतरण

यह उल्लेखनीय तथ्य है कि अलंकारों के सफल प्रयोग के होते हुए भी

---

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ११

प्रसाद जी ने भाषा को अलंकार बोझिल नहीं होने दिया है। वे भाव तथा वस्तु-चित्रण में सहायक कहे जा सकते हैं।

छंद योजना की दृष्टि से प्रसाद जी ने इस कृति में भी अरिल्ल छंद का अंतकान्त रूप प्रयुक्त किया है। इसमें बीच बीच में पूर्णविराम के चिह्न नहीं है। इसमें अधिकतर वाक्य चरण के अंत में ही समाप्त होते हैं और वहीं पर पूर्ण-विराम चिह्नों का प्रयोग भी किया गया है।

समग्रतः उनकी यह रचना कथा-विन्यास, वस्तुवर्णन, चरित्र-चित्रण, नाटकीय तत्त्वों की योजना, भाषा, शिल्प आदि सभी दृष्टियों से पूर्ववर्ती कृतियों में अधिक प्रौढ, प्रशस्त स्वच्छंदोन्मुख है।[1]

इस रचना के संबंध में -

प्रसाद-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् तथा आलोचक पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रसादजी के साहित्यिक व्यक्तित्व के संबंध में लिखा है कि -

> " भले और बुरे, पुण्य और पाप, देवता और दानव, दुःख और सुख, प्रसाद जी के लिये एक सिक्के के दो पहलू मर है। दोनों इस काव्य जगत के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। बिना एक-दूसरे की सत्ता ही नहीं है। कवि न तो देवता का भक्त है, न दानव का दुश्मन। उसके लिये तो दोनों उपयोगी हैं। दोनों बराबर है। यह उनका तात्त्विक विचार था और इस तात्त्विक विचार को हम वस्तुस्थितिमूलक दर्शन का हिन्दी में प्रथम प्रवेश कह सकते है। "[2]

इस तात्त्विक विचार का स्पष्ट दर्शन इस रचना में होता है। इसके

---

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० १०२

२ नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद,

सभी पात्र आदर्श है। यह द्विवेदी जी के युग की पहिली रचना है जिसमें सभी पात्रों का देवत्व प्रकट हुआ है। यह रचना प्रसाद की प्रतिभा की मुखर वाणी का, जो भविष्य में फूटी, परिचय देने के लिये कम सशक्त भी नहीं।[1]

यह कथावस्तु इतिहास की अनुश्रुतियों एवं साक्षों पर आधृत तो है ही,[2] साथ ही कवि ने काव्य कथा कहने की प्रणाली में नाट्य की प्रणाली का सन्निवेश कर कथा में एक सौंदर्यपूर्ण आकर्षण की सृष्टि की है।[3]

प्रेमपथिक :

यह काव्य अपने वर्तमान रूप में सन् १९१४ ई० में प्रकाशित हुआ। इसका प्रारंभिक रूप व्रजभाषा में रचित था। आकार भी संक्षिप्त था। इसका कुछ भाग " इन्दु " कला-१, किरण-२, भाद्रपद शुक्ल ३, सं० १९६९ में प्रकाशित भी हुआ था। खड़ी बोली का कुछ अंश " इन्दु " किरण-५, नवम्बर १९१४ में " प्रेम पथ " तथा कुछ " इन्दु " किरण-६, दिसम्बर १९१४ ई० में " चमेली " शीर्षक से प्रकाशित हुआ। बाद में यह रूपान्तर माघ शुक्ल ५, संवत् १९७० वि० में पहली बार पुस्तकाकार-रूप में प्रकाशित हुआ।

इसके विषय में स्वयं कवि का कथन है कि " यह व्रजभाषा में ८ वर्ष पहले लिखित प्रेम-पथिक का, परिवर्तित, परिवर्द्धित, तुकान्त विहीन हिन्दी-रूप है।[4]

पहले रूप में कई छंदों का विधान तथा रूप तुकांत था। इसके वर्तमान रूप में पहले रूप का कायाकल्प कर दिया गया है। न केवल भाषा खड़ी बोली कर दी गयी है अपितु इसका आकार भी दूना हो गया है। अनेक परिवर्द्धनों के साथ

१ प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ० ३३
२ स्व० पं० चंद्रशेखर पाठक, महाराणा प्रतापसिंह, पृ० १२१
३ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० ७७
४ कवि जयशंकर प्रसाद, प्रेमपथिक, निवेदन

छंद को तुकान्त विहीन बना दिया गया है। यह भावमूलक खंड काव्य है।[1]

भाषा पिछली समस्त कृतियों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत और प्रासादिक है फिर भी व्याकरण संबंधी भूलें प्राप्त होती हैं - यथा - " अतीत कथायें - - - उसको तुम्हें सुनाता हूं। " वह नैसर्गिक शिल्प कल्पना में भी क्या आ सकती " " यह संज्ञायें उड जाती है - आदि। किन्तु इन भूलों के कारण कला सौन्ठव में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आई है।

शब्दशक्तियों में अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना का अधिक प्रयोग किया गया है जो कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा का प्रतीक है।

अलंकारविधान की दृष्टि से मानवीकरण की प्रवृत्ति अतिशय रूप से परिलक्षित होती है। मूर्त का अमूर्त और अमूर्त का मूर्त उपमान देने में भी प्रसाद जी ने अपनी कल्पना शक्ति का इस कृति में अच्छा परिचय दिया है।

उदाहरण - " शान्त तपस्वीसी वल्लरियाँ

मानवीकरण के उदाहरण -

" रवि-कर पाकर उषा का उठकर खडा होना,
मलयज की श्वासों के सौरभ से सिहरना
" प्रेम" का व्यक्ति के रूप में उपस्थित होना
चन्द्रमुखी रजनी का तारावों की माला कबरी में लगाये
अपने शांति-राज्य-आसन पर आकर बैठना "[2]

इस काव्य में अनुरूप प्रतीक योजना भी है जो आगे चलकर " कामायनी " में पूर्ण रूप से विकसित हुई है। उदाहरण -

खेल रही थी सुख-सरवर में तरी पवन अनुकूल लिए

ooooooooooooooooooo

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ११,१२

२ प्रसाद, प्रेमपथिक

सम्मोहन वंशी बजती थी नव तमाल के कुंजों में

इन पंक्तियों में इस प्रकार प्रतीक हैं -

तरी -	-	जीवन
पवन अनुकूल	-	अनुकूल परिस्थितियाँ
संमोहन वंशी	-	प्रसन्नता तथा आकर्षण
नव तमाल कुंज	-	क्रीडा स्थल

इनमें हम छायावादी प्रतीक योजना का परिपक्व रूप देख सकते हैं। " प्रेमपथिक " का प्रायः सम्पूर्ण प्राकृतिक वर्णन भी प्रतीकार्थ से पात्रों की मनः-स्थितियों का चित्रण करने में सफल हुआ है। अपने सभी प्रतीकों का चयन प्रसाद जी ने प्रकृति के उन्मुक्त क्षेत्र से स्वच्छन्दतापूर्वक किया है। उनमें उनकी मौलिक प्रतिभा और कल्पना शक्ति का सुन्दर रूप देखा जा सकता है। परम्परागत प्रतीकों की आपने उपेक्षा की है।[1]

छंद विधान की दृष्टि से २० मात्राओं के छंद का तुकान्तविहीन रूप इसी कृति में प्रस्तुत किया गया है, छंद में प्रवाह और सांगीतिक कलरव भी विद्यमान है। खोजने पर यत्र तत्र दो-चार गद्यात्मक और प्रवाह बाधक पंक्तियाँ भी मिल जाती है -

" जिसकी संकीर्णता निरख अंधकार भी घबड़ाता है। "

पास उसीके और एक थे गृहस्थ रहते, सज्जन थे आदि " अहा ", " अहो " जैसे निरर्थक शब्द भी पाद-पूर्ति के लिए प्रयुक्त किये गये हैं।

इनसे उनके छंद-सरसता में विशेष बाधा नहीं पड़ती।

" प्रेमपथिक " एक छोटा-सा खण्डकाव्य है। जिस रूप में यह आज

---

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० ५४

प्राप्त है उस रूप में यह अनुकान्त खण्डकाव्य कहा जा सकता है। इसमें एक छोटी-सी प्रेमकथा को काव्य का विषय बनाया गया है। कदाचित् इस कथा पर गोल्डस्मिथ के " दि हरमिट " काव्य की छाप भी है। श्रीधर पाठक ने १८८६ ई० में खड़ी बोली में यह काव्य अनुदित किया था और अपनी लोकप्रियता के कारण इस काव्य की कथावस्तु हिन्दी के कवियों के लिए अलभ्य नहीं रही होगी। " [१]

इसमें जगह-जगह पर अनुप्रासों की छटा भी भावावेग के साथ दीख पड़ती है। इसका कथानक मनोवैज्ञानिक ढंग से रचा गया है। लेखक का काव्य-कौशल प्रगति के साहित्यिक विकास के सुन्दर पक्ष को ग्रहण करने के लिए सचेष्ट रहा। प्रकृति-वर्णन प्रसादजी के काव्य का एक आवश्यक अंग है। वह इस रचना में सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है और कथा सूत्र को सम्पुष्ट बनाता है। " प्रेम-पथिक " का बहुत बड़ा आकर्षण उसकी उपमाओं में दीख पड़ता है। [२]

> " इनकी उपमाओं पर, इसके अलंकारों पर भी स्वच्छता, सात्विकता, सुन्दरता और संक्षिप्तता की छाप है। " [३]

" शान्त तपस्वी-सी वल्लरियाँ "	पृ० १	मूर्त के लिए मूर्त उपमान
जिस पर लतिका चढ़ी हुई	पृ० १	मूर्त के लिए अमूर्त उपमान
ईश दया-सी छाई है		हैं

श्री किशोरीलाल गुप्त इसे पूर्णरूपेण अभिन्न मानते हैं। इन उपमानों की विशेषता इस बात में भी है कि तत्कालीन साहित्य में ये अलग अपनी मौलिक सत्ता रखते हैं। अमूर्त को उपमा का आश्रय वही कलाकार दे सकता है जो अनुभूतियों की सूक्ष्म रेखाओं से परिचित हों। एक सफल शिल्पी की भाँति, इस रचना से व्यापक रूप में भाव-चित्रों की उपमा कवि ने देनी आरंभ की।

---

१ डा० रामरतन भटनागर, प्रसाद का जीवन और साहित्य, पृ० ५४

२ प्रसाद की कविताएं, डा० सुधाकर पाण्डेय, पृ० १०४

३ कवि प्रसाद की काव्य साधना, श्री रामनाथ " सुमन ", पृ० ५५-५६

क्रमशः उनका विकास ही होता गया।[1]

इस रचना में एक बहुत बड़ी बात है विश्वात्मा एवं विश्व देवता की कल्पना।[2] राष्ट्रीयता के उस प्रारंभिक युग में इस कल्पना का मूल्य बहुत बड़ा है।

कहीं कहीं नीरस इतिवृत्तात्मकता भी लक्षित होती है। कहीं कहीं गतिभंग दोष भाषा-प्रवाह पर रोक लगाता है, किन्तु ऐसे स्थान कम ही हैं। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यहाँ तक आकर " प्रेम-पथिक " का कवि क्रमशः द्विवेदी-युगीन इतिवृत्तात्मक से आगे बढ़ता है और शिल्प के नये आयामों का प्रयासी है।

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में जयशंकर प्रसाद की आरम्भिक पाँच कृतियों में कलापक्ष का जो संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर शिल्प-पक्ष के क्रमिक विकास को दृष्टिगत किया जा सकता है। वैसे निष्कर्ष यह कहा जा सकता है कि प्रसाद की काव्य यात्रा यहाँ तक प्रधानतया वस्तुनिष्ठ रही है। उक्त क्रमिक विकास की दृष्टि से यदि कहा जाय तो प्रसाद जी ने काव्य रचना का आरम्भ ब्रज भाषा से किया। उसकी शैली और कला-विधान परम्परा गत है। अनेक रचनाएं आरम्भिक प्रयास मात्र है। द्वितीय पदन्यास में वे पूर्णतया खड़ी बोली की काव्य रचना में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। उस समय तक खड़ी बोली के आधुनिक काव्य की जो प्रवृत्तियां सामान्य रूप से वर्तमान थीं, प्रसाद जी ने उन्हीं का अभ्यास करके अपनी कला तूलिका को क्रमशः सजग और सूक्ष्म बनाने का यत्न किया।

इन रचनाओं में प्रसाद जी की निजी देन को भी लक्ष्य कर लेना उचित होगा। खड़ी बोली का काव्य जहाँ राष्ट्रीय-चेतना, प्राचीन इतिहास के गौरवमय

१ प्रसाद की कविताएं, सुधाकर पाण्डेय, पृ० १०१

२ प्रेमपथिक, पृ० ११-१६ पर दिया गया उद्धरण

कथानक तथा उपदेशात्मक को लिए हुए था, वहाँ एक ओर कवि अंग्रेजी और बंगला काव्य के अनुकरण पर प्रकृति चित्रण की ओर उन्मुख हुए थे। इस दृष्टिकोण से प्रसाद जी की मौलिकता इस बात में है कि वे प्रकृति-वर्णन के माध्यम से प्रेम और सौन्दर्य की चेतना की ओर उन्मुख दिखाई देते हैं। " प्रेम-पथिक " में स्वच्छन्दता की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। एक प्रकार से ऐसी रचनाएं परवर्ती छायावादी कृतियों की आरम्भिक चेतना के उन्मेष की द्योतिका हैं।

काव्य-कला की दृष्टि से सम-सामयिक काव्य-कृतियों में यह उल्लेखनीय तथ्य दिखाई पड़ता है कि वे भाषागत अभिव्यक्ति और उसके व्याकरण की सचाई की ओर क्रमशः प्रगतिशील हैं। प्रसाद जी की रचनाएं भी कालक्रम से इस दिशा में अग्रसर कही जा सकती है।

अलंकार विधान का अधुलांश तो परम्परागत है, किन्तु भावाभिव्यक्ति में काल्पनिक प्रयोग और मानवीकरण आदि की योजना आदि उसके नये पदन्यास को सूचित करते हैं। इस दिशा में " प्रेम-पथिक " को कुछ अधिक महत्त्व दिया जा सकता है। कदाचित् इस विशेषता को लक्ष्य करके डा० सुधाकर पाण्डेय ने उसका सम्बन्ध पूर्णरूप से आधुनिक हिन्दी कविता से जोड़ा है। द्रष्टव्य :[1]

छन्दो-विधान और शैली की दृष्टि से प्रसाद जी की एतद्विषयक उपलब्धियों को निर्दिष्ट किया जा चुका है। उनसे कुछ पूर्व श्रीधर पाठक आदि ने अतुकान्त शैली में कविताएं लिखी थीं। प्रसाद जी ने इस प्रयोग में अन्य कवियों की अपेक्षा कुछ अधिक सफलता प्राप्त की है। उनका " महाराणा का महत्त्व " पूरा का पूरा एक सशक्त महाकाव्य कहा जा सकता है। कवि की विशेषता इस बात में है कि वह प्राचीन छन्दों का उपयोग करके भी उसे नयी शैली में प्रस्तुत करने में पूर्णतया सफल हुआ है।

---

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० १०५

उपर्युक्त अध्ययन गत निष्कर्षों का विकासशील, परिमार्जित या परिवर्द्धित रूप में प्रसाद जी की परवर्ती रचनाओं में मिलता है जिस पर यहां विचार किया जा रहा है।

उत्तर कालीन रचनाएं :

प्रसाद का छायावादी काव्य दर्शन :

द्विवेदी युग में प्रवाहित इतिवृत्तात्मक एवं उपदेशात्मक स्थूल भाव-निरूपणी कविता के विरुद्ध एक ऐसी स्वानुभूति-निरूपिणी तथा सूक्ष्म भावानुगामिनी कविता-धारा प्रवाहित हुई, जिसमें विद्रोह का तीव्र स्वर भरा हुआ था और जो अपनी रहस्यमयी भावनाओं, लाक्षणिक एवं प्रतिकात्मक पदावलियों, चित्रमयी भाषा एवं मधुमयी कल्पना आदि के कारण एक नवीन धारा के रूप में दिखायी देती थी। यद्यपि इसमें नैतिकता की कहीं कहीं अवहेलना की गयी थी, फिर भी इसमें शृंगार के अतीन्द्रिय एवं मानसिक पक्ष की प्रबलता थी और साम्प्रदायिक रूढियों से ग्रस्त धार्मिकता का तिरस्कार करके विश्वबन्धुत्व, मानवता, " वसुधैव कुटुम्बकम् " आदि की भावनाओं को ही अधिक महत्त्व दिया गया था। ऐसी कविता को पहले अस्पष्ट, गूढ, छायामयी, नीरस आदि कहकर पुकारा गया था। परंतु धीरे धीरे पाठकों का दृष्टिकोण बदला और जनता में ऐसी कविताओं को सुनने और पढने की रुचि जागृत हुई।

> " इस प्रकार स्वतंत्र एवं सूक्ष्म भावों से सम्पृक्त-प्रकृति की मनोरम झांकी से ओतप्रोत, मानवीय प्रेम एवं विश्व व्यापी सौन्दर्य से परिपूर्ण कोमल पदावली में जिस नवीन कविता-धारा का विकास हुआ, वही छायावाद एवं रहस्यवाद की कविता कहलाई।"[1]

पहले आलोचकों की दृष्टि में छायावाद एवं रहस्यवाद दोनों एक ही थे। आचार्य

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० १६२

शुक्ल ने इसे एक मात्र " प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में " अप्रस्तुत का कथन " बतलाया । प्रसाद ने इस छायावाद को भारतीय परंपरा में विकसित काव्य की एक नूतन प्रणाली सिद्ध किया और उसकी रूपरेखा को इस प्रकार प्रस्तुत किया -

> " मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है, वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है । इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था । अतः सौन्दर्य के इस सूक्ष्म रूप को अपनाते हुए पौराणिक कथाओं एवं नारी के बाह्य सौन्दर्य के वर्णन से भिन्न जिन कविताओं में वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति हुई, वही छायावाद है । " [१]

छायावाद से तात्पर्य कविता की एक ऐसी नई प्रणाली से है - जो भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है जिसमें ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ-साथ स्वानुभूति की विवृत्ति रहती है, और जिसमें अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति को महत्त्व दिया जाता है । [२]

छायावादी कवियों ने ऐसी नवीन काव्यशैली का निर्माण किया जिसमें नूतन भाव बोधों को व्यंजित करने की शक्ति थी । हृदयग्राही भंगिमा थी । सूक्ष्म आभ्यंतर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही । उनके लिये नवीन शैली तथा वाक्य विन्यास आवश्यक था । हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा,

oooooooooooooooooo

१ काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२३-१२४

२ वही, पृ० १२७-१२८

स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी । शब्द विन्यास में ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक लचप उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया ।[1]

इस प्रकार छायावादी कवियों का कवि-कर्म दुहरा हो गया -

(१) भावनाओं के आवेग को मंद न होने देना

(२) विषयानुकूल काव्य-भाषा का निर्माण करते जाना[2]

निष्कर्ष :

छायावाद में आध्यात्मिक संकेत अवश्य रहते हैं, परंतु उसे आध्यात्मिक कविता कहना उचित नहीं, उसमें मानव जीवन का ही यथार्थ चित्रण होता है, उसकी आशा-निराशा, संवेदना, जीवन संघर्ष, शृंगार-भावना आदि के सजीव चित्र अंकित किए जाते हैं, किन्तु उसमें कोरी इतिवृत्तात्मकता नहीं होती, वह इससे कुछ ऊंचा उठकर वायवीपन की ओर जाता दिखाई देता है और उसमें प्रकृति की रमणीय छटा का दर्शन करते हुए मानव के सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय सौन्दर्य की झांकी प्रस्तुत की जाती है । इस प्रकार छायावाद में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति सम्बन्धी निम्न लिखित विशेषताएं होती हैं :-[3]

१- सौन्दर्य दर्शन
२- शृंगारिकता
३- स्वानुभूत सुख दुख की विवृति,
४- प्रकृति पर चेतनता का आरोप
५- आध्यात्मिकता
६- नारी की महत्ता
७- मानवता की विवृति, और
८- अभिव्यंजना की अनूठी पद्धति :

१ काव्य कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२२
२ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २२८
३ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, पृ० १८५

(अ) लाक्षणिकता
(ब) प्रतीकात्मकता
(क) उपचार वक्रता
(ड) ध्वन्यात्मकता
(च) चित्रभाषा
(छ) नये नये अलंकारों के प्रयोग इत्यादि [1]

प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक है। उनका स्थान मूर्धन्य है। उन्होंने भाव एवं भाषा दोनों ही दृष्टियों से छायावाद को वैभव प्रदान किया, भाषा का संस्कार कर विषयानुकूल बनाया, नाना प्रकार से अलंकृत कर चित्तार्कषक रूप दिया। विविध स्रोतों से गृहीत प्राचीन शब्दों को नवीन भाव-बोध से रंजित और कल्पना से स्फीत बनाया। उन्हें ऐसे कलात्मक ढंग से सजाया, विशेष परिवेश में विन्यस्त किया कि वे नवीन भाव बोधों की रमणीय व्यंजना करने लगे।[2] उनकी " झरना ", " आंसू ", " लहर " तथा " कामायनी " आदि उत्तरकालीन कविताएं उपरिनिर्दिष्ट काव्य-चेतना की द्योतक है, जैसा कि परवर्ती विवेचन से प्रकट है।

झरना :

" झरना " का पहली बार प्रकाशन १९१८ ई० में हुआ था। आज जो रूप प्राप्त है वह दूसरे संस्करण का है जो १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ। कवि ने " चित्राधार " के अंतर्गत संकलित होनेवाले " कानन कुसुम " के द्वितीय संस्करण से एवं " झरना " के प्रथम संस्करण की कविताओं (तीन को छोड कर) तथा इक्कीस कविताएं और जोडकर वर्तमान रूप को प्रस्तुत किया।[3] इस प्रकार इस कृति की कालसीमा १९१४ ई० से लेकर १९२७ ई० तक फैली हुई है। इससे यह सिद्ध होता है

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, पृ० १६६
२ डा० सुरेन्द्रनाथ सिन्हा, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ११८
३ प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ० ७८-७९

कि परवर्ती संस्करण को पहले से भिन्न काव्य-चेतना के प्रतिनिधि रूप में प्रस्तुत किया गया है। भाषा की दृष्टि से इसमें दो स्पष्ट स्तर दिखाई देते हैं।

प्रथम, द्विवेदीकालीन संस्कारों से प्रभावित आरंभिक भाषा - द्वितीय छायावादी प्रौढ और परिपक्व भाषा

प्रारंभिक भाषा का स्वरूप अधिकांश चिन्त्य और भक्तिपरक तथा प्रेम रचनाओं में उपलब्ध होता है। इनमें तत्सम शब्दों का प्रयोग, तथा ब्रजभाषा - संस्कारों से युक्त पंक्तियां भी मिलती है। जैसे -

" प्यास ", " आशंका " " झील में ", " अतिथि " आदि गीतों में इस कृति में उपलब्ध भाषा का दूसरा स्तर हमें " किरण ", " विषाद ", " झरना ", " अव्यवस्थित ", " वसंत ", " परिचय " आदि रचनाओं में दिखाई देता है। यहां भाषा पूर्णतः परिष्कृत और प्रौढ है। अभिधा शब्द शक्ति के स्थान पर लक्षणा और व्यंजना का उपयोग किया गया है। शब्द-चयन, सार्थक, भावानुकूल, माधुर्यपूर्ण एवं सांगीतिक है। उनमें प्रभाव और प्रवाह है। " झरना " का वैशिष्ट्य उनकी भाषा के इस स्वरूप के कारण है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" कौन, प्रकृति के करुण काव्य-सा
वृक्ष-पत्र की मधु छाया में
लिखा हुआ-सा अलख पडा है
अमृत सदृश नश्वर काया में " [1]

इसमें छायावादी काव्य की प्रायः सारी विशेषतायें एक साथ देखी जा सकती हैं। डा० गणेश खरे के शब्दों में - " आलंकारिक क्षेत्र में मानवीकरण की प्रवृत्ति सार्वत्रिक है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की भी भावात्मक योजना की गई है।

---

1 झरना, विषाद, पृ० ४४

प्रतीक-योजना समृद्ध है और सौन्दर्य-चित्रण तथा सूक्ष्म भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए भी उनका खुलकर प्रयोग किया गया है। प्रायः सभी अप्रस्तुत प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण से संचयित किए गये हैं। उनमें वस्तुधर्मी प्रकृति, रूप, गुण, क्रिया, व्यापारादि सभी का यथोचित ध्यान रखा गया है।[1]

उपर्युक्त " विषाद " की पंक्तियों में अप्रस्तुतों का यह भाव लक्षित होता है।

छंद विधान की दृष्टि से मात्रिक छंद का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। अधिकांश छंद परंपरा से गृहीत हैं।

" खोलो द्वार ", " वसंत की प्रतीक्षा ", और " दीप " में ३१ मात्राओं के वीर छंद का सममात्रिक तुकान्त रूप प्रयुक्त किया गया है।

" अर्चना ", " स्वभाव ", " प्रत्याशा ", " स्वप्नलोक ", " पावस प्रभात ", " मिलन " आदि में अरिल्ल छंद का अतुकान्त रूप व्यवहृत है। " रूप " में २१ मात्राओं के अरिल्ल तथा प्लवंगम छंदों का तुकान्त रूप है। "उपेक्षा करना " " यह " " पी कहां ? " में १७ मात्राओं का वाला छंद, " प्यास " और " धूल का खेल " में गोपीशृंगार छंदों का प्रयोग हुआ है।

" अतिथि " तथा " झरना " कविताओं के छंदों में नवीनता है। प्रथम में ११ और ९ के क्रम से अर्द्ध सम मात्रिक छंद का प्रयोग है तथा दूसरी में चन्द्र छंद के आधार पर पद्धरि छंद के अष्टक तथा नवक के योग से एक नया छंद रचा गया है।

इस तरह इस क्षेत्र में प्रसाद जी ने अनेक छंदों का प्रयोग करके अपनी प्रयोगशील कला-प्रवृत्ति का परिचय दिया है। शास्त्रीय छंदों का प्रयोग उनकी

---

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० १०५

आरंभिक रचनाओं में ही अधिकांश रूप से हुआ है। परवर्ती रचनायें तो प्रगीतात्मक रूप में लिखित है जिनमें लय तो विद्यमान है, किन्तु छंदों का निर्वाह नहीं है।

काव्य रूप और शैलियों की दृष्टि से इसमें गीत, पद, संबोध, चतुर्दशपदी और वर्णनात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है। " झरना ", " अव्यवस्थित ", " पी कहां " आदि में गीत शैली है। " अतिथि ", " सुधा में गरल ", " उपेक्षा करना ", " बेदने ठहरो ", " धूलका खेल ", और " बिन्दु – इनमें पदशैली है। " खोलो द्वार ", " दीप ", " प्रियतम ", और " पाई बाग " – चतुर्दशपदी काव्य। " किरण ", " वसंत ", " विनय " तथा भक्तिमूलक रचनाएं में संबोध शैली का रूप दृष्टव्य हैं।

प्रकृतिपरक रचनाएं – " प्रथम प्रभात ", " पावस प्रभात ", " वसंत ", आदि में वर्णनात्मक शैली है।

" धूल का खेल " " कब? ", " स्वभाव " आदि में आत्मपरक शैली है। रस योजना की दृष्टि से शृंगार और शांत रसों की प्रमुखता है। शृंगार में संयोग की अपेक्षा विप्रलंभ की व्यापक रूप से अभिव्यक्ति हुई है।

यह उल्लेखनीय है कि प्रायः सभी रचनायें प्रगीतात्मक और संक्षिप्त है, मानवीयकरण, प्रतीकीकरण एवं लाक्षणिक तथा ध्वन्यार्थ शब्द-शक्तियों से युक्त है। अतः यह कहा जा सकता है कि झरना में प्रायः सभी रचनाएं छायावादी हैं। इस संग्रह के गीतों के विषय में डा० प्रेमशंकर का निम्नलिखित कथन विचारणीय है :-

> " गीतों की दृष्टि से " झरना " एक प्रयोगशाला है। प्रसाद ने अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया। भावना की गहराई में कवि जाने लगा है। उसे प्रेरणा का एक ऐसा स्रोत प्राप्त हो गया,

जो कभी मुक्त नहीं हो सकता । धीरे धीरे कवि आत्माभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हो रहा है । इस प्रकार " झरना " में सुन्दर गीति काव्य की आशा दिखाई देने लगती है । यहाँ कवि का व्यक्तिवादी रूप ही सम्मुख है । इन छोटे छोटे गीतों में व्यक्तिवाद को व्यापक बनाने का प्रयत्न है । परिष्कृत कल्पना, सुन्दर उपमा, सरस भावना उसमें आभासित है । " [1]

आंसू :

इसका प्रथम संस्करण १९२१ ई० में निकला । उस समय इसमें १२६ छंद थे । इसका द्वितीय संस्करण १९२२ में हुआ । इसमें छंदों की संख्या १९० हो गयी है तथा छंदों के क्रम में भी परिवर्तन कर दिया गया है । पूर्ववर्ती छंदों में भी अनेक संशोधन किये गये हैं।[2] तीसरे संस्करण में कवि ने फिर परिवर्तन किये । प्रस्तुत विवेचन का आधार यही संस्करण है ।

" आंसू " एक उत्कृष्ट विरह-काव्य है । इसमें प्रसाद का विरही हृदय अपनी गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुआ है । भाव और रस से संबंधित विस्तृत वर्णन गत अध्याय में किया गया है । इस अध्याय में इसके कलागत वैशिष्ट्य पर ही विचार करेंगे ।

आंसू की भाषा :

" आंसू " विरह-प्रधान कोमल भावमयी रचना है । अतः इसमें कोमल-कान्त-पदावली में प्रेमवेदना की अत्यंत मार्मिक एवं मनोहारी व्यंजना हुई है । कवि ने इसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिसमें लय है, गति है, ताल एवं छंद की

१ डा० प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य, पृ० १२१

२ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, आंसू भाष्य, पृ० २१

अनुकूलता है और भावों के वहन करने की अपूर्व क्षमता है। डा० सक्सेना के अनुसार खड़ी बोली को मधुर एवं मनोहर बनाने में " आंसू " काव्य का योगदान सराहनीय है।[1]

कवि ने कई जगहों पर तत्सम् शब्दों का प्रयोग किया है। " आंसू " काव्य की दूसरी विशेषता है स्वरमैत्री। कवि ने इसमें दिव्य संगीत की सृष्टि हेतु ऐसे ऐसे शब्दों को एक साथ रखने का बड़ा प्रयास किया है, जिनमें समता, एक रूपता, एक स्वरता और एक-लय उत्पन्न करने की अपूर्व क्षमता है। इसके कारण काव्य पंक्तियां पढ़कर आनंद और माधुर्य का अनुभव होता है। पाठकों का और श्रोताओं का पूर्ण रूपेण साधारणीकरण होता है। संक्षेप में कतिपय पंक्तियाँ यहां उल्लेखनीय हैं :-

(१) इस करुणा कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती
(२) छिल-छिलकर छाले फोड़े मल मल कर मृदुल चरण से
(३) रो रो कर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुण कहानी

" आंसू " काव्य की भाषा की तीसरी विशेषता है - नाद सौन्दर्य। नाद सौन्दर्य के गतिशील और प्रभावित कर सके ऐसे शब्दों का कवि ने ढूंढकर प्रयोग किया है। इस नाद-सौन्दर्य के कारण ही " आंसू " काव्य गेयता के गुण से भरा हुआ है। इसी कारण इसमें आकर्षण एवं प्रभावात्मकता सर्वाधिक है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

(१) मधु राका मुसक्याती थी पहले देखा जब तुमको
परिचित-से जाने कबके तुम लगे उसी क्षण हमको

---

१ प्रसाद का साहित्य, पृ० २३३-३५ तथा प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ० १०४-१०५

(२) सूखी सरिता की शय्या वसुधा की करुण कहानी,
पुलकों में लीन न देखी क्या तुमने मेरी रानी ।

आदि अनेक पंक्तियां उपलब्ध हैं ।

इसकी भाषा की चौथी विशेषता है - लाक्षणिकता

आंसू में कवि ने ऐसे ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, जो अपने वाच्यार्थ से भिन्न किसी न किसी लक्ष्यार्थ के द्योतक है और जिनके प्रयोग से काव्य में चारुता, चमत्कारिता और रमणीयता आती है । यह छायावाद की निजी संपत्ति है । इन प्रयोगों में रोचकता गंभीरता एवं मनोरंजकता का गुण है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

(१) शीतल ज्वाला जलती है ईंधन होता हरा जल का
(२) विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे

आदि अनेकों उदाहरण हैं ।

आंसू काव्य की भाषा में पांचवी विशेषता है - ध्वन्यात्मकता ।
" आंसू " के कितने ही पद ऐसे हैं, जो वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ के द्योतक है और जिन्हें सुनकर साधारणीकरण होता है । काव्यानंद का मुख्य साधन व्यंजना-शक्ति ही है । " आंसू " काव्य में सांकेतिक शैली के अंतर्गत अनेक गूढ भाव भरे हुए हैं । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

" पतझड था झाड खडे थे सूखी सी पुलवारी में,
किसलय नवकुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में । "

" आंसू " काव्य की छठी विशेषता है - प्रतीकात्मकता

को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि ने प्रतीकों की सुंदर योजना की है । इन प्रतीकों के कारण ही " आंसू " में सर्वत्र गूढता एवं गहनता है इसी कारण

इसमें अर्थ गांभीर्य और उक्ति वैचित्र्य की छटा लक्षित होती है। कवि ने यहां " गागर में सागर " भर दिया है। कवि ने अधिकांश प्रतीक प्राकृतिक सौन्दर्य से चुने हैं। इन प्रतीकों को लेकर कवि ने आंसू की भाषा में सरसता एवं सजीवता की सृष्टि की है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" नीरव मुरली, कलरव चुप अलि कुल थे बंद नलिन में,
कालिन्दी बही प्रणय की इस समय हृदय पुलिन में, "

इन प्रतीकों के कारण " आंसू " की भाषा में गरिमा एवं गंभीरता आ गई है।

" आंसू " काव्य की भाषा की सातवीं विशेषता है - चित्रोपमता। कवि ने यहां ऐसी पदावली का प्रयोग किया है, जिसमें भाव, विचार, दृश्य या व्यक्ति का तादृश चित्र अंकित हो जाता है। इन शब्द चित्रों के द्वारा ही "आंसू " को भावों की अद्वितीय चित्रशाला बना दिया है, जिसके चित्रों में मनोरंजन के साथ साथ अलौकिक आनंद प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है[1]।

" बांधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से,
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से? "

"आंसू " काव्य की भाषा की आठवीं विशेषता है - उपचारवक्रता। जिसमें अमूर्त में मूर्त का, अचेतन में चेतन का, निर्जीव में सजीव का आरोप किया जाता है। इससे अभिव्यंजना में सरसता, सजीवता एवं मार्मिकता आ जाती है। कवि ने उपचारवक्रता के द्वारा भाषा को अत्यधिक सुंदर एवं सशक्त बनाया है :-

" अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना भीगी पलकों का लगना। "

---

1 डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, आंसू काव्य, आमुख, पृ० १६

" इसमें कवि ने अभिव्यंजना की नूतन पद्धति का प्रयोग करते हुए भाषा को सर्वाधिक मधुर, सर्वाधिक सरस, सर्वाधिक सशक्त और सर्वाधिक सजीव बनाने का सुंदर प्रयास किया है। इसी कारण " आंसू " की भाषा में सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों के निरूपण की अद्भुत क्षमता है, मनोव्यापारों को चित्रित करने की अपूर्व कुशलता है, चेष्टाओं को प्रदर्शित करने की अद्भुत कला है और बिम्बों को अंकित करने का अनुपम सामर्थ्य है। ऐसी सशक्त भाषा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है क्योंकि आंसू की भाषा में अभिव्यंजना की गुरुता है, माधुर्य की अतिशयता है, मार्मिकता की अधिकता है और सरसता की बहुलता है। निस्संदेह प्रसाद ने "आंसू " की भाषा को कोमलकान्त -पदावलि से संयुक्त करके सुन्दरता, सुकुमारता, सरसता, मोहकता, मार्मिकता आदि गुणों से परिपूर्ण बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है।"[1]

अलंकार योजना :

कविवर प्रसाद ने " आंसू " में प्रायः ऐसे ही अलंकारों का अत्याधिक प्रयोग किया है, जो भावों के उत्कर्ष-विधायक है, वस्तुओं के रूप-गुण क्रिया आदि के प्रदर्शक है और विविध व्यापारों के स्पष्टीकरण में सहायक सिद्ध हुए हैं। इन अलंकारों में भावों के सजीव एवं मार्मिक चित्र अंकित करने की अपूर्व क्षमता है। प्रसाद जी ने मुख्यतयः निम्नलिखित अलंकार अपनाये हैं : उपमा, रूपक, रूपक अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, अपह्नुति, हेतूत्प्रेक्षा, अप्रस्तुत प्रशंसा, विरोधाभास, विशेषोक्ति, असंगति, प्रतीप, अर्थान्तरन्यास, मानवीकरण, श्लेष, वीप्सा, पुनरुक्ति, आदि

भावार्थ यह है कि कविने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का सम्यक् मात्रा में उपयोग किया है। पूरे विरह काव्य आंसू में से उनके अनेकों उदाहरण मिलते हैं। इससे प्रसाद की काव्य भाषा अधिक सशक्त एवं सक्षम है। वे राग की परिपूर्णता के लिए प्रयुक्त हुए हैं, अनुभूति की गहनता के द्योतक हैं, सरसता की

1 डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, आंसू भाष्य, आमुख, पृ० १०

अभिवृद्धि करते हैं, मार्मिकता का प्रचार एवं प्रसार करते हैं और कल्पना की उदारता के परिचायक हैं ।

काव्य शैली :

" आंसू " छायावाद की उत्कृष्ट रचनाओं में से है ; अतः इसमें छायावाद कालीन सभी शैलियों का होना स्वाभाविक है । इस छायावादी युग की मुख्य चार शैलियां हैं :-

(१) सरल शैली
(२) अलंकृत शैली
(३) क्लिष्ट शैली
(४) मुद्ध एवं सांकेतिक शैली

" आंसू " में ये सभी काव्य-शैलियां विद्यमान हैं :-

(१) सरल शैली :

इसमें सरल, सुबोध और मुहावरेदार भाषा होती है और प्रसाद गुण की प्रधानता रहती है । उदाहरण -

" रो रो कर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोंचते सुनते करते जानी अनजानी " [1]

(२) अलंकृत शैली :

इसमें अलंकारिक भाषा की बहुलता रहती है, सुकुमार एवं सुमधुर शब्दों द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया जाता है । भाषा में रमणीयता और

१ आंसू, पृ० १५

और प्रभाव रहता है -

" काली आंखों में कितनी यौवन के मद की लाली
मानिक-मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली ? " [1]

ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं ।

(३) क्लिष्ट शैली :

इस शैली के अंतर्गत परस्पर गुम्फित एवं सम्बद्ध लम्बे लम्बे वाक्यों का प्रयोग किया जाता है, एक ही लंबे वाक्य के अंतर्गत उससे संबंधित कई छोटे छोटे अन्य वाक्य भी रहते है और उन वाक्यों के सम्बन्ध को समझने में क्लिष्टता का अनुभव हुआ करता है । " आंसू" में ऐसे लम्बे लम्बे गुम्फित एवं क्लिष्ट वाक्यों की अधिकता नहीं है जैसा कि निम्नांकित उदाहरण से प्रकट है :-

" घन में सुंदर बिजली-सी, बिजली में चपल चमक सी,
आंखों में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक-सी,
प्रतिमा में सजीवता-सी, बस गई छवि आंखों में
थी एक लकीर हृदय में, जो अलग रही लाखों में "[2]

(४) गूढ एवं सांकेतिक शैली :

इस शैली के अंतर्गत लाक्षणिकता, एवं प्रतीकात्मकता का आधिक्य रहता है । इसमें तीव्र कल्पना और उपचार-वक्रता का भी योग रहता है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" पतझड था, झाड खडे थे सूखी सी पुलवारी में
किसलय नवकुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी में ।

१ आंसू, पृ० ३१
२ आंसू, पृ० १९-२०
३ आंसू, पृ० १९-७७

मुंह लिये फैलतीं अपनी अभिशाप-ताप ज्वालायें,
देखीं अतीत के युग से चिर मौन शैल मालाएं । "

गुण-योजना :

आचार्य मम्मट ने अपने " काव्य प्रकाश " में आचार्य भामह द्वारा प्रतिपादित माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुणों का ही समर्थन किया है । " आंसू " में वैसे तो उक्त तीनों ही गुण विद्यमान हैं लेकिन " आंसू " विरह काव्य है इसलिये इसमें माधुर्य गुण का ही प्राधान्य है ।

(१) माधुर्य गुण :

इसमें चित्त द्रवीभूत होकर आल्हाद युक्त बनता है । चित्त में माधुर्य और कोमलता का प्रभाव रहता है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" परिरम्भ कुम्भ की मदिरा निश्वास पवन के झोंके,
मुख-चन्द्र चांदनी जल से मैं उठता था मुंह धोके । " [१]

(२) ओज गुण :

काव्य के ओजगुण के अंतर्गत चित्त में स्फूर्ति एवं तेजस्विता आती है । यह विरह काव्य होने से इस गुण का अभाव है फिर भी कहीं कहीं इसके दर्शन होते हैं । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" घिर जातीं प्रलय घटायें कुटिया पर आकर मेरी,
तम चूर्ण बरस जाता था छा जाती अधिक अंधेरी । " [२]

(३) प्रसाद गुण :

इस गुण में किसी रचना का शीघ्र बोध कराने की शक्ति होती है ।

१ आंसू, पृ० २७
२ वही, पृ० १६

पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" शीतल समीर आता है कर पावन परस तुम्हारा,
मैं सिहर उठा करता हूं बरसा कर आंसू धारा " [1]

छंद-विधान :

छंद, काव्य की गति होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने और स्वयं प्रसाद जी ने भी यह बात मानी है। " आंसू " के छंद का नामकरण करते हुए पं० अवध उपाध्याय ने तो इसे आंसू-छन्द कहना ही सर्वथा उपयुक्त समझा है, किन्तु छंद-शास्त्र की दृष्टि से यह २८ मात्राओं का " आनंद आनंद " छंद है जिसमें १४-१४ मात्राओं के उपरांत यति होती है।

इस करुणा कलित हृदय में – १४ मात्रायें
अब विकल रागिनी बजती – १४ मात्रायें

प्रसाद का " आंसू " काव्य संगीत की मधुर ध्वनि से पूरित होकर इस " आनन्द छन्द " के प्रयोग से ही अत्याधिक निखर उठा है। आंसू का प्रत्येक पद्य मादक संगीत की मधुरिमा से मंडित है। [2]

लहर :

" आंसू " जैसी प्रौढ रचना देने के पश्चात् यह प्रसाद के प्रौढ, व्यक्ति की समय-समय की रचनाओं के संग्रह के रूप में सन् १९३५ ई० में प्रकाश में आया। ये रचनाएं सन् १९३० से १९३५ तक की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। इसमें ४ आख्यानक तथा ३९ लघु प्रगीत संकलित हुए हैं। अतः कला-पक्ष की दृष्टि से

1 आंसू, पृ० ३६
2 डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, आंसू भाष्य, पृ० ५१

इन्हें आंसू से भिन्न शैली की रचनाएं कहा जा सकता है।

भाषा :

समस्त प्रगीतों की भाषा सार्वत्रिक रूप से भावानुकूल, सरस, स्निग्ध, कोमल, प्रांजल तथा सांगीतिक है, इन प्रगीतों की भाषा में स्वर मैत्री, नाद सौन्दर्य, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता और चित्रोपमता के तत्त्व मिलते हैं। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

स्वर मैत्री :

" किन अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप जाओगे ?
इतना सजग कुतूहल। ठहरो, यह न कभी बन पाओगे। "[1]

नाद सौन्दर्य :

" छिन्न पात्र ले कम्पित कर में,
मधु-भिक्षा की रटन अधर में,
इस अनजाने निकट नगर में
आ पहुंचा था एक अकिंचन। "[2]

लाक्षणिकता : इसके अनेक उदाहरण है।

" अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये -
तू अब तक सोई है आली।
आंखों में भरे विहाग री। "[3]

१ लहर, पृ० १०
२ वही, पृ० १७
३ वही, पृ० १९

ध्वन्यात्मकता : इसमें भी अनेकों उदाहरण हैं।

" वंचित है । यह किस अतीत की विकल कल्पना का परिणाम
किसी नयन की नील निशा में क्या कर चुका क्षणिक विश्राम ? "[1]

प्रतीकात्मकता :

" जीवन-रस के बचे हुए कन,
बिखरे अंबर में आंसू बन,
वही दे रहा था सावन घन -
वसुधा की इस हरियाली को । " [2]

चित्रौपम्यता :

" राशि-सी वह सुन्दर रूप विभा
चाहे न मुझे दिखलाना ।
उसकी निर्मल शीतल छाया
हिमकन को बिछा जाना "[3]

उपचारवक्रता :

" जिससे कन कन में स्पन्दन हो,
मन में मलयानिल चन्दन हो,
करुणा का नव अभिनन्दन हो -
वह जीवन गीत सुना जा रे "

---

१ लहर, पृ० ४१

२ वही, पृ० ४२

३ वही, पृ० ४५

" लहर " की भाषा में अभिव्यंजना की गुरुता है, माधुर्य की अतिशयता है, मार्मिकता की अधिकता है और काव्य गुणों से ओतप्रोत है। शब्द-चयन मधुमय, सांगीतिक तथा काव्यात्मक है।

प्रसाद जी शब्द-शिल्पी थे। उन्होंने अपने प्रगीतों में अनेक पुराने शब्दों का पुनरुद्धार तो किया ही है, नये शब्दों का गठन भी किया है। इन प्रगीतों में विशेष करके लाक्षणिकता तथा व्यंजनात्मकता का बाहुल्य है। भाषा सौष्ठव में आद्यंत एकशालीनता और गरिमा विद्यमान है। भाषा की एकरसता प्रसाद जी की भाषा योजना की एक महती विशेषता है। उदाहरण :-

" ठोंक कर लोहे से,
परख कर वज्र से,
प्रलयोल्का-खंड के निकष पर कस कर
चूर्ण अस्थि पुंज सा हँसेगा अट्टहास कौन ? "
(लहर, पृ० १७)

" सो रहा है पंचनद आज किसी शोक में " – लहर, पृ० ११
" इस नील विषाद गगन में – सुख चपला-सा दुख घन में,
चिर विरह नवीन मिलन में मरु-मरीचिका-वन में " लहर, पृ० ४८

अलंकार विधान :

कवि ने काव्य की सजावट के लिये नहीं अधिक भावों को प्रभावित करने के लिये शब्दालंकार और अर्थालंकार का उपयोग किया है। उनके प्रगीतों में मुख्य रूप से निम्नलिखित अलंकार पाये जाते हैं।

उपमा- मालोपमा अलंकार, कारक दीपक अलंकार, व्यतिरेक, अन्योक्ति, रूपक, श्लेष, संदेह, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिकर, विशेषण, विपर्यय, मानवीकरण, आदि मिलते हैं।

इसके साथ साथ प्रतीक विधान और बिंब विधान के भी अनेकों उदाहरण है। प्रसादजी के प्रगीत काव्य का समस्त कलात्मक सौष्ठव प्रतीक योजना पर ही आश्रित है। कुछ प्रतीकों के नाम इस प्रकार हैं :-

किरण, आकाश, उषा, कमल, कलिका, मधुऋतु, आदि।

शैली :

प्रसाद के प्रगीतों की शैली अलंकृत शैली, क्लिष्ट शैली और सांकेतिक शैली में है।

अलंकृत शैली के प्रगीत - उठ उठ री लघु लोल लहर आदि

क्लिष्ट शैली - औरी मानस की गहराई आदि

सांकेतिक शैली - अंतरिक्ष में अभी सो रही है उषा मधुबाला आदि

गुण :

प्रगीतों में माधुर्य भाव होने के कारण उनमें माधुर्य और प्रसाद गुण है। लेकिन शेरसिंह का शस्त्र समर्पण पेशोला की प्रतिध्वनि, प्रलय की छाया वीररस पूर्ण रचनायें होने के कारण उनमें ओज गुण है।

छंद :

कवि की छंद योजना सौष्ठव गण-मात्रादि पर आश्रित न होकर शब्दों के अंतः संगीत और लय की प्रवाहशीलता पर आधारित है। यहां पर कवि मात्रिक तथा स्वनिर्मित छंदों का प्रयोग करता है। प्रसाद जी के प्रगीत-छंदों के नहीं, भावों के सांचे में ढले हैं। उनके अनेक प्रौढ़ प्रगीत मुक्तक छंद में भी लिखे गये हैं।[1]

---

1 डा॰ गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ॰ १४५

" लहर " में तीन निर्बंध छंद है जो अत्यन्त सफल है - शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि, प्रलय की छाया । निर्बंध छन्द की विशेषताओं और सर्वाधिक गंभीरतापूर्वक उसके प्रतिष्ठापक " निराला " ने विचार किया है ।[1]

छन्द-योजना के बारे में डा० नगेन्द्र का कथन :-

" प्रसाद जी की छंद-रचना में एक विशेष प्रकार की संगीतमय विह्वलता है । उनके वीर भावों के साथ अकड़कर चलते, विलास भावनाओं के साथ इंगितपूर्ण नृत्य करते एवं व्यथा और वेदना के साथ कराहते हैं ।"[2]

" लहर " के प्रगीतों की ही भाँति छायावादी शैली का सौष्ठव पूर्णतया " प्रसाद संगीत " के गीतों में वर्तमान है ।

प्रसाद संगीत :

प्रकाशन क्रम के दृष्टिकोण से इसे बाद की कृति भले ही मानी जाय किन्तु वस्तुतः एक ओर सर्जन प्रवृत्ति की दृष्टि से यह लहर के निकट कही जा सकती है तथा दूसरी ओर इसका अधिकांश भाग अंतिम कृति " कामायनी " के पूर्व रचा जा चुका था । " प्रसाद-संगीत " के गीत उनके विविध नाटकों से संकलित हैं, अतः काव्य-रूप की दृष्टि से वे मुक्तक भले ही हों किन्तु उन भाव-पक्ष परिस्थिति को नाटकीय सन्दर्भ से सम्बद्ध है । इन गीतों की विशेषताएं लहर की ही भाँति है । भाषा भावानुरूप एवं सशक्त अभिव्यंजना का साक्ष्य प्रस्तुत करती है । उसमें स्वरमैत्री और नाद-सौन्दर्य का गुण भी वर्तमान है । पूर्ववर्ती कृतियों की ही भाँति इसकी भाषा में लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, तथा चित्रोपमता विद्यमान है । गीतों में प्रतीक-योजना, मानवीकरण तथा बिम्ब-योजना की सुन्दर छटा दर्शनीय है ।

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० २०८

२ डा० नगेन्द्र, कामायनी के अध्ययनी समस्याएं

संगीतात्मकता की दृष्टि से अनेक गीत लहर की रचनाओं से भी आगे बढ़ जाते हैं। गीतों में टेक का भी प्रयोग है और वे वाद्य और नृत्य की विशेषताओं से भी संयुक्त हैं। इनकी टेक और अन्तरा का विन्यास स्वयं कवि ने ही कर दिया है।

कामायनी :

यह गौरवग्रंथ " प्रसाद " के अंतिम कल्पना-वैभव एवं उदात्त जीवन-दर्शन का अमर प्रतीक है। इसका प्रकाशन सन् १९३५ ई० में हुआ। इसके पूर्व इसके अनेक अंश सुधा (१९२८ ई०) " माधुरी ", " हंस " और " कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह " में समय समय पर छपते रहे पर वे अंश मुक्तक से प्रतीत होते थे,[1] किन्तु " कामायनी " के प्रकाशन ने छायावादी काव्यधारा को सर्वप्रथम महाकाव्योचित शैली की क्षमता का गौरव प्रदान किया। " कामायनी " के विषय में अब तक बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। उन मतों और विवेचनों का पिष्टपेषण यहाँ अनावश्यक ही होगा। प्रस्तुत अनुशीलन के अन्तर्गत हम उसके काव्य-शिल्प के विविध उपादानों पर ही विचार करेंगे।

भाषा :

भाषा स्वानुभूति को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने का सुन्दर माध्यम है, क्योंकि भाषा ही भाव एवं विचारों को वहन करके कवि की स्वानुभूति को इसके अन्तर्प्रदेश से बाह्य जगत् में लाती है।[2] " कामायनी " की भाषा सशक्त और सक्षम है। उसमें भावानुकूल चित्रोपम शब्दों का चयन है। " कामायनी " की भाषा में छायावाद युगीन लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, चित्रोपमता और उपचारवक्रता का पूर्ण रूपेण निदर्शन मिलता है। संक्षेप में निम्नलिखित विशेषताएं उल्लेखनीय हैं।

१ प्रसाद की कविताएं – डा० सुधाकर पाण्डेय, पृ० २२७, २२८ पर उद्धृत श्रीकृष्णदेव प्रसाद गौड का कथन :

२ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी, पृ० २०१

(१) भावानुकूल चित्रोपम शब्दों का प्रयोग :

" हाहाकार हुआ क्रंदनमय कठिन कुलिश होते थे चूर,
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव बार-बार होता था क्रूर । "
(चिन्ता, पृ० २१)

(२) भाषा की दूसरी विशेषता है स्वरमैत्री :

" कामायनी " काव्य में स्वरमैत्री की ओर अधिक ध्यान दिया गया है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

(१)"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छांह "[१]
(२)"दूर दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसीके हृदय समान " [२]

स्वरमैत्री में उत्कृष्टता लाने के लिये कवि ने वृत्तियों का भी यथा आवश्यक प्रयोग किया है ।

(३) नाद-सौन्दर्य :

प्रसाद ने नादात्मक सौन्दर्य लाने के लिये तथा अपने प्रयोगों में कोमलता और माधुर्य का संचार करने के लिये खड़ी बोली के जितने ही तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है जैसे - स्पर्श के स्थान पर परस-किरण के स्थान पर किरन आदि ।

धारा " कामायनी " काव्य गेय है और अपनी संगीतात्मकता से अद्भुत प्रभाव डालने में सक्षम है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

(१) कंकण क्वणित रणित नूपुर थे हंसती धरा धधकती ज्वाला

१ कामायनी, पृ० १
२ वही,

(२) " करुण क्रन्दन करती गिरती "
(३) " घू घू करता नाच रहा था "

ऐसे अनेकों उदाहरण इस काव्यकृति में प्राप्त होते हैं ।

(४) लाक्षणिकता :

कामायनी में कवि ने ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, जो अपने वाच्यार्थ से भिन्न किसी न किसी लक्ष्यार्थ के घोतक है और जिनके प्रयोग से काव्य में चारुता, चमत्कार प्रियता एवं रमणीयता की सृष्टि हुई है । पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

" नारी का वह हृदय, हृदय में सुधा सिन्धु लहरें लेता,
बाडव-ज्वलन उसी में जलकर कंचन सा जल रंग देता । "[1]

" कुसुमित कुंजों में वे पुलकित प्रेमालिंगन हुए विलीन,
मौन हुई हैं मूर्छित तानें और न सुन पडती अब बीन । "[2]

पूरी " कामायनी " लाक्षणिकता, और व्यंजनात्मकता से भरी पडी है । इनके अनेकों उदाहरण मिलते हैं ।

(५) ध्वन्यात्मकता :

" कामायनी " के कितने ही पद ऐसे हैं जो वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ के घोतक है । काव्यानंद का मुख्य साधन व्यंजना शक्ति ही है । इस व्यंजना शक्ति के द्वारा काव्य को सशक्त एवं सरस बनाया जाता है । पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

" शिथिल अलसाई पडी छाया निशा की कान्त
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रान्त "[3]

१ कामायनी, पृ० २०७ (२) कामायनी, पृ० १०
३ वही, पृ० ८८

" कौन तुम ? संसृति-जलनिधि तीर तरंगों से फेंकी मणि एक "[1]

पूरा " कामायनी " महाकाव्य लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता से भरा पड़ा है जो छायावाद की मुख्य विशेषताएं हैं ।

(६) प्रतीकात्मकता :

कवि ने " कामायनी " की भाषा को सरस, सुंदर - प्रभावोत्पूर्ण और प्रांजल बनाने के लिए प्रतीकों की बड़ी ही सुन्दर योजना की है । "कामायनी" के मुख्य प्रतीक निम्नांकित हैं :-

नौका, पोत, तरणी	-	जीवन का प्रतीक
रात्रि	-	~~अस्पष्टता~~ अज्ञानता
भ्रमर, शलभ	-	अभिलाषा
दीप	-	ज्ञान
अरुण, किरण	-	प्रेम - आदि ।

इस प्रकार पूरे काव्य में अनेकों प्रतीकों का निर्वाह हुआ है और वे काव्य की पूर्णतः शोभा बढ़ाते हैं ।

(७) चित्रोपमता :

कवि ने " कामायनी " में यत्र तत्र ऐसी पदावली का प्रयोग किया है जिसमें किसी भाव, विचार, दृश्य, व्यक्ति या पदार्थ का तादृश चित्र मन के समक्ष अंकित होता है । इनमें गत्यात्मक सौन्दर्य विद्यमान है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" छूने में हिचक, देखने में पलकें आंखों पर झुकती है
कलरव परिहास भरी गूंजें अधरों तक सहसा रुकती है,

---

१ कामायनी, पृ० ४५

संकेत कर रही रोमाली चुपचाप बरजती खड़ी रही ।
भाषा बन भौंहों की काली रेखा सी भ्रम में पड़ी रही । "[1]

" कामायनी " का पूरा " लज्जा" सर्ग " चित्रोपमता " के तत्त्व से भरा पड़ा है ।

(८) उपचार वक्रता :

यह वक्रोक्ति की ही एक पद्धति विशेष है । इसमें अमूर्त में मूर्त का, अचेतन में चेतन का आरोप किया जाता है । वक्रोक्ति संप्रदाय के आचार्य कुंतक ने लिखा है कि वक्रोक्ति के कारण भाषा अधिक सरस, सुन्दर और सशक्त बनती है । डा० नगेन्द्र ने इसे " काव्य कला का अत्यंत मूल्यवान उपकरण " कहा है । "कामायनी " में इस प्रकार के उदाहरणों का एक विशाल कोश है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती सी,
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी " [2]

इस प्रकार अनेक काव्य पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं ।

(९) लोकोक्तियां एवं मुहावरों का प्रयोग :

" प्रसादजी ने " कामायनी " को सरस एवं मधुर बनाने के लिए लोक प्रचलित लोकोक्तियां एवं मुहावरों का प्रयोग किया है । " कामायनी " में ये लोकोक्तियां एवं मुहावरे भावों की अभिव्यंजना में बड़े ही सफल सिद्ध हुए हैं और सर्वत्र काव्य के उक्ति-वैचित्र्य एवं अर्थ-गांभीर्य की वृद्धि में सहायक प्रतीत होते हैं । कुछ उदाहरण :

" जीवन का दांव हार बैठना, ठोकर लगाना, दुख की बीन बजाना, गरल को अमृत बनाना, मुंह तोड़ना आदि । "[3]

१ कामायनी, पृ० १०७ (२) कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० १०५
३ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी, पृ० २१८

अलंकार विधान :

अलंकार भाषा के सौन्दर्य की वृद्धि करते, उसका उत्कर्ष बढ़ाते और रस भाव आदि को उत्तेजित करते हैं।[1]

– " कामायनी " महाकाव्य में प्रसाद जी ने शब्दालंकार और अर्थालंकार का उचित प्रमाण में उपयोग करके काव्य में रस, भाव और सौन्दर्य की वृद्धि की है।

शब्दालंकार :

अनुप्रास – यह अलंकार वर्ण मैत्री के लिए अधिक प्रसिद्ध है।

उदाहरण – कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मंडराती।[2]

यमक और श्लेष :

इन अलंकारों का प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। पंक्तियां दृष्टव्य हैं :

यमक – मैं सुरभि खोजता भटकूंगा वन-वन बन कस्तूरी कुरंग[3]

श्लेष – इन्द्रनील मणि महा चषक था सोम रहित उलटा लटका[4]

पुनरुक्ति – किसी शब्द का बार बार वर्णन किया जाता है।

यथा – " दूर-दूर तक विस्तृत था हिम "[5]

वीप्सा – आकस्मिक भावों को प्रकट करने के लिये उपयोग किया है।

यथा "पीता हूं, हां मैं पीता हूं, यह स्पर्श रूप, रस, गन्ध भरा "[6]

अर्थालंकार :

कवि ने अर्थालंकारों का सम्यक मात्रा में उपयोग किया है, जैसे

---

१ श्यामसुंदरदास, साहित्यालोचन, पृ० ३१६ (३) कामायनी, पृ० १७५

२ कामायनी, पृ० १५२ (४) वही, पृ० २४ (५) वही, पृ० ३ (६) वही, पृ०६९

उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपक अतिशयोक्ति, विरोधाभास, सन्देह, समासोक्ति, अपह्नुति, अर्थान्तरन्यास, परिकर, विषम, दृष्टान्त ।

		"कामायनी", पृ० संख्या
उपमा	व्याकुलता सी व्यक्त हो रही आशा बनकर प्राण समीर	पृ० २७
उत्प्रेक्षा	मानो नील व्योम उतरा है आलिंगन के हेतु अशेष	पृ० १४
रूपक	हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ जल-माया की चल रेखा	पृ० ५
रूपक अतिशयोक्ति	फाड़ सुनहली साड़ी उसकी तू हँसती क्यों अरी प्रतीप	पृ० २८
विरोधाभास	खेल रहा है शीतल दाह	पृ० २७
सन्देह	रजनी में इन्दीवर की या एक पंक्ति कर रही हास	पृ० १४२
समासोक्ति	प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किये सी, ऊँघी-सी	पृ० २४
अपह्नुति	यों समीर मिस हाफ रही सी चली जा रही किसके पास ?	पृ० २९
अर्थान्तरन्यास	हुआ विलोड़ित गृह, तब प्राणी कौन, कहाँ, कब सुख पाते ?	पृ० १६
परिकर	कल्याणमयी वाणी कहती, तुम क्षमा निलय में हो रहती	पृ० २४९
विषम	क्षुद्रपाय । तुम उसमें कितनी मधु-धारा हो ढाल रही	पृ० २२०
दृष्टान्त	छाया पथ में नव तुषार का सघन मिलन होता जितना	पृ० १६

पाश्चात्य अलंकार :
o-o-o-o-o-o-o-o

अंग्रेजी काव्य के मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, ध्वन्यर्थ-व्यंजना जैसे अलंकारों के सफल प्रयोग भी कामायनी में मिलते हैं। एक एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

मानवीकरण
ooo-ooo-oo

(१) प्राकृतिक पदार्थों में चेतना का आरोप -
जगी वनस्पतियाँ अलसाई मुख धोती शीतल जल से (पृ० ३९)

(२) अमूर्त भावों का मूर्तिकरण -
कोमल बाहें फैलाये सी आलिंगन का जादू पढ़ती (पृ०१०५)

विशेषण विपर्यय :
ooo-ooo-oo-ooo

यथा - " एक करुणामय सुन्दर मौन और चंचल मन का आलस्य ", (पृ० ४५)

ध्वन्यर्थ-व्यंजना :
ooo-ooo-oo-oo

" छप-छप का होता शब्द विरल,
थर-थर कँप रहती दीप्ति तरल " (पृ० २१४)

प्रसाद जी ने अलंकार विधान के अंतर्गत सादृश्य योजना की ओर ही अधिक ध्यान दिया है। आपने अलंकारों के लिए केवल प्रकृति के अवयवों को ही नहीं लिया, अपितु मानवीय अमूर्त भावों को भी अपनाकर आधुनिक कविता में एक नवीन अध्याय प्रारंभ किया है।[1]

शैली :
oooooo

साहित्य में अभिव्यक्ति की प्रणाली को शैली कहते हैं। इस महाकाव्य में प्रसाद जी ने चारों शैलियों का प्रयोग किया है।

oooooooooooooooo

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी, पृ० २२९

(१) सरल शैली :

इसमें सरल, सुबोध और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग होता है ।

उदाहरण -

मैं हंसती हूं रो लेती हूं
मैं पाती हूं खो देती हूं
इसको ले उसको देती हूं
मैं दुख को सुख कर लेती हूं -कामायनी, पृ० २४१

(२) अलंकृत शैली :

इसके अंतर्गत अलंकारों की बहुलता रहती है ।

उदाहरण -

संध्या अरुण जलज केसर ले अब तक मन थी बहलाती
मुरझाकर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहां पाती ।
क्षितिज भाल का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,
कोकिल की काकली व्यथा हो अब कलियों पर मंडराती ।
-कामायनी, पृ० १८२

(३) गुम्फित या क्लिष्ट शैली :

इस शैली के अंतर्गत लम्बे लम्बे वाक्यों का प्रयोग होता है और उन वाक्यों का सम्बन्ध समझने में क्लिष्टता का अनुभव होता है ।

उदाहरण - लज्जा सर्ग में

अम्बर चुम्बी हिम शृंगों से कलरव कोलाहल साथ लिए
यहां से प्रारंभ होकर ४४ पंक्तियां
लौकर जो लगनेवाली है उसको धीरे से समझाती

इन ४४ पंक्तियों में पूरा एक वाक्य है जो समझना बड़ा क्लिष्ट है ।

(४) गूढ़ एवं सांकेतिक शैली :

इसमें लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मकता की बहुलता रहती है जिसे हम पूर्ववर्ती विवेचन के अंत अंतर्गत लक्ष्य कर चुके हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि " कामायनी " में काव्य की सभी प्रकार की शैलियों के दर्शन होते हैं । प्रसाद ने भावानुकूल भाषा का प्रयोग करके उसमें प्रेषणीयता के आधार पर विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है ।[1]

" कामायनी " में रीति :

आचार्यों ने काव्य की तीन रीतियां बतलाई है - वैदर्भी, गौडी और पांचाली । वैदर्भी रीति माधुर्य गुण पर अवलंबित रहती है । सारे कामायनी काव्य में इसी वैदर्भी रीति की बहुलता है । जैसे -

" नव नील कुंज है भीम रहे, कुसुमों की कथा न बन्द हुई,
है अन्तरिक्ष आमोद भरा, हिम कणिका ही मकरन्द हुई "[2]

" कामायनी " में गौडी रीति के अधिक दर्शन नहीं होते । इसमें ओजगुण, कठोर वर्ण, दीर्घ समास होते हैं । " कामायनी " में इसके उदाहरण अधिक नहीं हैं । स्वल्प है :- पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" घू घू करता नाच रहा था अनस्तित्वका ताण्डव नृत्य,
आकर्षण विहीन विद्युत्कण बने भारवाही थे भृत्य "[3]

पांचाली रीति में माधुर्य तथा सौकुमार्य गुणों का प्रभाव रहता है - पंक्तियां दृष्टव्य हैं:-

" कौन हो तुम वसन्त के दूत विरस पतझड में अति सुकुमार,
घन तिमिर में चपला की रेख तपन में शीतल मन्द बयार ।

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, पृ० १४२ (२) कामायनी, पृ० ७२
३ वही, पृ० ~~२६~~ २८

नवल की आशा किरण समान, हृदय के कोमल कवि की कांत
कल्पना की लघु लहरी दिव्य कर रही मानस हलचल शान्त "[१]

यद्यपि प्रसाद ने " कामायनी " में तीनों रीतियों का उपयोग किया है फिर भी उन्होंने वैदर्भी रीति को अधिक अपनाया है ।

काव्य-गुण :

" कामायनी " में वैसे तीनों गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद विद्यमान है परंतु प्रसाद जी प्रेम और सौन्दर्य के कवि है इसी कारण " कामायनी " में भी माधुर्य गुण की ही प्रधानता है ।

माधुर्य गुण : पंक्तियां दृष्टव्य है -

" शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कांत ;
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रांत ।
उसी झुरमुट में हृदय की भावना थी भ्रांत ;
जहां छाया सृजन करती थी कुतूहल कांत । "[२]

ओज गुण :- पंक्तियां दृष्टव्य है -

" अंधड था बढ रहा, प्रजा दल सा झुंझलाता,
रण वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता ।
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को,
बढे कुचलते हुए खड्डा से उन प्राणों को । "[३]

---

१ कामायनी, पृ० ९८

२ वही, पृ० ९१

३ वही, पृ० २०८

प्रसाद गुण - पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

मैं था, सुन्दर कुसुमों की वह
सघन सुनहली छाया थी
मलया निल की लहर उठ रही
उल्लासों की माया थी । [1]

"कामायनी " माधुर्य भाव की रचना है अतः इसमें माधुर्य और प्रसाद गुण है ।

छंद विधान :

" कामायनी " में प्रमुख रूप से ताटक छंद का प्रयोग हुआ है । इसमें १६ और १४ मात्राओं के विराम से ३० मात्रायें होती है और अन्त में " म " गण होता है । [2]

किन्तु इसी ताटक छंद के अंत में यदि एक लघु अक्षर और बढ़ा दिया जाता है तो वह " वीर " छन्द बन जाता है ।

" चिंता " सर्ग ताटक छंद में ही लिखा गया है, तथापि [3] उसमें कहीं कहीं " वीर छंद " के भी दर्शन होते हैं :-

" हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर	- १६ मात्राएं	वीर छंद
बैठ शिला की शीतल छांह	- १५ मात्राएं	
	३१ मात्राएं	

दूसरी पंक्तियाँ शुद्ध ताटक छंद की है ।

" निकल रही थी मर्म वेदना - १६ मात्राएं
करुणा विकल कहानीसी - १४ मात्राएं

१ कामायनी, पृ० २२८ (२) छन्द प्रभाकर, पृ० ७०
३ छन्द प्रभाकर, पृ० ७२

" चिन्ता ", " आशा ", " स्वप्न " तथा " निर्वेद " सर्ग तारक तथा वीर छंद में हैं ।

श्रद्धा		शृंगार छन्द
काम तथा लज्जा में	-	पादाकुलक छंद का प्रयोग किया है ।
वासना सर्ग में	-	उपमाला छन्द का प्रयोग किया है ।
कर्म सर्ग में	-	सार छन्द का प्रयोग हुआ है ।
संघर्ष सर्ग में	-	रोला छंद का प्रयोग हुआ है ।

दर्शन और आनन्द सर्ग में मिश्रित छंद का प्रयोग मिलता है । इडा, रहस्य, आनंद सर्ग में स्वनिर्मित छंद का प्रयोग किया है । अतः छन्द-योजना की दृष्टि से प्रसाद जी उसके अभिनव प्रयोगों की ओर सदैव अग्रसर रहे हैं । छन्द-योजना का महत्त्व भावानुकूलता एवं उसे उत्कर्ष प्रदान करने में है । इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो ये बाधक ही नहीं साधक ही कहे जायेंगे ।

प्रसाद की काव्य शैली में नवीनता और उनके भाषा प्रयोगों में पर्याप्त व्यंजकता और काव्यानुरूपता है । प्रथम बार काव्योपयुक्त पदावली का प्रयोग " कामायनी " में किया गया है ।[1] " प्रसाद ने " कामायनी " में रूप, भाव एवं कर्म - तीनों प्रकार के सौन्दर्य का विधान किया है । इसके लिए उन्होंने सौन्दर्य के अन्तर्बाह्य सभी उपकरणों का प्रयोग किया है और उनके द्वारा सौन्दर्य की एक ऐसी चित्रण-प्रणाली को जन्म दिया है, जो युग की एक विशिष्ट प्रणाली बन गई है । इसी प्रणाली के कारण आज छायावाद के युग को सौन्दर्य-चित्रण का भी युग कह सकते हैं, क्योंकि मानव के अन्तर्बाह्य जीवन सम्बन्धी जितने सजीव चित्र इस युग में अंकित हुए हैं, उतने हिन्दी साहित्य के किसी भी युग में मिलना कठिन है । साथ ही जब कि " कामायनी " इस छायावादी युग की प्रतिनिधि रचना है,

---

१ नंददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ७९

तो इसमें तत्कालीन पद्धति पर सौन्दर्य-चित्रों की बहुलता का होना भी स्वाभाविक है। यही कारण है कि " कामायनी " में सौन्दर्य-चित्र अधिक मिलते हैं, जिनमें प्रसाद के सौन्दर्य-विधान की निपुणता एवं बारीकी के दर्शन होते हैं। " [1]

काव्य-रूप :

कामायनी का महाकाव्यत्व :

काव्य के दो प्रधान भेद हैं - प्रबन्ध और मुक्तक। मुक्तक काव्य के दृष्टिकोण से प्रसाद जी की कृतियों के कला-विधान पर प्रसंगानुसार विचार किया जा चुका है। लघुकाय प्रबन्धात्मक कृतियों के शिल्प पर हम सम्बन्धित रचनाओं के कलापक्षीय-विवेचन के अन्तर्गत कवि के कृतित्व का अनुशीलन कर चुके हैं। अतः यहाँ " कामायनी " के प्रबन्ध-सौष्ठव पर विचार कर लेना अभीष्ट होगा। इसे विद्वानों ने आधुनिक युग का श्रेष्ठ महा काव्य माना है, अतः इस दृष्टिकोण से इसका मूल्यांकन यहाँ किया जा रहा है।

भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण गिनाये हैं वे संक्षेप में सर्गबद्धता, इतिहासप्रसिद्ध कथानक, छन्द-योजना, मानव और जड प्रकृति का व्यापक आकलन तथा किसी महान आदर्श की सिद्धि आदि को लेकर हैं। [2] आचार्य दण्डी ने अग्निपुराण की मान्यता में यह जोडा है कि उसमें प्रस्तुत काव्य युग-युगान्तरों तक अमर होना चाहिए। [3] आचार्य विश्वनाथ ने विस्तार के साथ लक्षणों का जो निर्देश किया है उसमें कुछ विषय वस्तु से सम्बन्धित है और कुछ शिल्प-पक्ष से। शिल्प की दृष्टि से उनमें पूर्वनिर्दिष्ट मान्यताओं से कोई अन्तर नहीं है, सिवाय इसके

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० १५१

२ अग्निपुराण, ३३७ काव्यादिलक्षण

३ काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद १४।१५ तथा डा० भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ० ४९

कि उन्होंने सर्ग संख्या तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन को भी आवश्यक माना है ।[1]

पाश्चात्य आचार्यों ने विषय की व्यापक परिधि और महान उद्देश्य पर प्रायः बल दिया है । इसे भारतीय मान्यताओं से भिन्न नहीं कहा जा सकता । वाल्टर पेटर (Walter Peter) ने विस्तृत परिधि, विविधता, महान उद्देश्यों के साथ मैत्री, विद्रोह के स्वर की गहनता, आशा की विशालता, जनकल्याण की वृद्धि के यत्न, पारस्परिक सहानुभूति के संवर्धन की भावना प्राचीन और नवीन मानव सत्यों का उद्घाटन, क्षणिक जीवन को सुखमय बनाने की योजना आदि उसके लक्षण गिनाये हैं ।[2] एवर क्रोम्बी ने उक्त लक्षणों को और भी स्पष्टता प्रदान की है । उनके अनुसार ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित और जीवन का महत्त्व प्रकट करनेवाली महान कथा, जीवन के तथ्य एवं कवि की मान्यताओं का उल्लेख, ऐतिहासिक सत्य के स्थान पर काव्यगत सत्य की प्रधानता, सुन्दर कथा द्वारा नाटकीय ढंग से अंतिम कार्य का वर्णन, रचना शैली की कलात्मकता, सशक्त-प्रवाहशील छन्द-योजना, व्यापकता, तथा प्रतीकात्मकता आदि लक्षण हैं ।[3] डा० शम्भूनाथ सिंह ने भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों की मान्यताओं के निष्कर्ष रूप में इसके मुख्यतया सात तत्त्वों का निर्देश किया है :-

(१) महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा ।
(२) गुरुत्व, गांभीर्य और महत्त्व ।
(३) महत्कार्य और युग-जीवन का समग्र चित्रण ।
(४) महत्त्वपूर्ण नायक ।
(५) सुगठित और नीवित कथानक ।
(६) गरिमामयी उदात्त शैली ।
(७) तीव्र प्रभावान्विति और गंभीर रस-योजना ।

---

१ साहित्य दर्पण, षष्ठ-परिच्छेद, पृ० ३१५-३२४
२ Walter Peter appreciations Page 36
३ L. Aber Crombie, The Epic Page 52-69
४ महाकाव्य का स्वरूप और विकास, पृ० ५

डा०नगेन्द्र ने जिन पांच गुणों को आवश्यक माना है वे कार्य, उद्देश्य, चरित्र, भाव तथा शैली इन सभी की उदात्तता के हैं।[1] प्रस्तुत अनुशीलन में " कामायनी " का मूल्यांकन उक्त समस्त दृष्टिकोणों को ध्यान में ध्यान में रख कर किया जा रहा है।

कामायनी का महाकाव्यत्व :

(१) उदात्त विचार :

" कामायनी " में श्रद्धा और मनु अर्थात् मन के सहयोग से मानवता का विकास प्रस्तुत किया गया है जो अपने आपको बड़ा ही भावमय तथा श्रेष्ठ कार्य है, यह वस्तु मनुष्यता के मनोवैज्ञानिक इतिहास रूप में भी प्रस्तुत हुई है। दार्शनिक दृष्टि से प्रत्यभिज्ञा, दर्शन का आनंदवाद इसका प्रमुख साध्य है जो समरसता द्वारा सहज लब्ध है। यह दर्शन मानवीय जीवन के व्यावहारिक धरातल पर प्रस्तुत हुआ है। इस रूप में यह अधिक प्रेरणा-प्रदायक तथा नवजीवन मूल्यों की स्थापना में सहायक कहा जा सकता है। प्रसाद जी की यह निःसंदेह एक महानतम उपलब्धि है जो इस ग्रंथ को उदात्त काव्य बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

" कामायनी " में युगीन समस्याओं का संश्लिष्ट चित्रण है। आधुनिक जीवन की यांत्रिकता, बुद्धिवाद, भौतिकवादी, विचारधाराएं आदि मनुष्य के व्यक्तित्व को खंड खंड करके वर्गभेदों में बांट रही है ; मनसा वाचा और कर्मणा में वैषम्य विडम्बनाओं की सर्जना कर रहा है। आधुनिक जीवन के ये गंभीरतम प्रश्न है। प्रसाद जी ने कामायनी में इनका स्वरूप स्पष्ट किया है और काम की अभिशाप वाणी द्वारा भविष्य बतला कर इन समस्याओं का व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत कर दिया है। वैचारिक दृष्टि से यह कार्य भी उदात्त है। आज ये प्रश्न केवल भारत तक सीमित न होकर समग्र विश्व तक व्याप्त है। इस

---

१ डा० नगेन्द्र, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं

तरह, " कामायनी " अपनी वैचारिक सम्पदा में विश्व व्यापी समस्याओं का चित्रण तथा समरसता के माध्यम से उनका समाधान लेकर चली है। तथा इस तथ्य पर उसे विश्व काव्य की कोटि में सरलता पूर्वक रखा जा सकता है। मनु अर्थात् आधुनिक युग के सामान्य मानव का असत् से सत् की ओर अज्ञान से प्रकाश की ओर तथा दुःखमय जीवन से अमृत की ओर विकास प्रस्तुत करना इस ग्रंथ का परम पुरुषार्थ है। काम और अर्थ की युगीन परिधि से मनुष्य किस प्रकार धर्म और मोक्ष के परिक्षेत्र में जीतेजी पहुंच सकता है " कामायनी " इसका ही संदेश देती है।[1] सांस्कृतिक दृष्टि से इसमें तीन संस्कृतियों का व्यापक चित्रण किया गया है, देव, बन्य और भौतिक, ये क्रमशः काम, क्रोध, और अर्थ के प्रतीक है किन्तु परस्पर असंबंधित होने के कारण ये तीनों ही अपूर्ण, अतृप्ति एवं असंतोष के जनक है। मनु इन तीनों की परिधियों से निकलकर एक चतुर्थ मानवीय एवं सर्वश्रेष्ठ समरस संस्कृति का निर्माण करते है, जहां मूर्तिमान रूप में मोक्षावस्था विद्यमान है। यही मानवता का चरम विकास है। इस दृष्टि से भी कामायनी की वैचारिक उदात्तता प्रशंसनीय वस्तु है।[2]

डा० नगेन्द्रजी ने कामायनी के कार्य को धर्म, राजनीति, तथा विज्ञान अर्थात् भाव क्रिया और ज्ञान की भूमिका पर भी प्रस्तुत किया है, जो बडा ही समीचीन है। इन तीनों में परस्पर ऐक्य न होने के कारण ही आज के जीवन में विषमता विद्यमान है। मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए इन तीनों प्रवृत्तियों में एकात्मक स्थापित करना आज भी परम आवश्यकता है।[3]

इस तरह " कामायनी " में युग युगीन समस्याओं का व्यावहारिक समाधान-जिस भव्य और अर्जित रूप में विद्यमान है वैसा अन्य काव्य-ग्रंथों में देखने को नहीं मिलता। उनका यह नव आयाम निश्चित रूप से उदात्त तथा महाकाव्यात्मक

---

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० २०४

२ वही

३ डा० नगेन्द्र, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० १९

गरिमा से अभिमंडित है । इन उदात्त विचारों में हम प्रसादजी की महत्प्रेरणा, महती काव्य प्रतिभा, महा उद्देश्य, गुरुत्त्व, गांभीर्य, महत्कार्य, एवं युग जीवन का संश्लिष्ट चित्र भी देखते हैं ।

(२) उदात्त कथानक :

उदात्त विचारों की क्षमता के लिए कथानक की उदात्तता आवश्यक होती है । कामायनी की कथावस्तु ऐतिहासिक पौराणिक है । वह देव वर्गीय है । साथ-साथ आदि पुरुष तथा आदि नारी मनु श्रद्धा के जीवन से सम्बन्धित है । " कामायनी " की समग्र कथा अखिल मानव भावों के सत्य, मानव चेतना के इतिहास को भी प्रस्तुत करती है । मनु किस प्रकार चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या, इडा, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्यादि से होते हुए अखंड आनंद की प्राप्ति करते है यही इसकी कथा का सारांश है । मनु का पूर्वपक्ष पूर्णतः सामान्य मानव का पक्ष है । " कामायनी " की कथा असाधारण शक्ति वेग और जीवन के महत् पक्षों से संबंधित है किन्तु उसका संविधान भावात्मक स्तर पर किया गया है यही कारण है कि इसका कथानक जीवंत है । इसका कथानक बाह्य घटनाओं से कम परंतु मानव के मानसिक जीवन से अत्यधिक सम्बन्धित है । कामायनी में मानव-चेतना का घटना चक्र कथानक का जीवंत रूप प्रस्तुत करता है । कामायनी की कथावस्तु, महत्त्वपूर्ण, नवीन और उदात्तता के तत्त्वों से युक्त है उसमें भावात्मक विकास के स्तर पर सर्गों का नामकरण किया गया है । इसकी कथा किसी एक महापुरुष की जीवन गाथा या किसी राजवंश के वर्णन से संबंधित नहीं हैं ; वह एक देशीय और किसी युग विशेष से भी अनुबंधित नहीं, प्रत्युत वह तो आंतरराष्ट्रीय स्तर पर आदि से अंत एक सम्पूर्ण मानवता के विकास की कथा है । इस तरह कामायनी का कथा फलक अतीव व्यापक है उसमें अखण्ड मानवीय संस्कृति की संश्लिष्ट योजना है । कथास्तर निश्चित ही उदात्त महत्तर और क्रांतिकारी है ।[1]

1 डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० १०६

(१) उदात्त चरित्र :

" कामायनी " के कथा-नायक मनु है। वे देव पुरुष है अतः उच्च कुलोद्भव है परंतु उनमें धीरोदात्त रूप के दर्शन नहीं होते। वे निश्चिन्त, सुखी, मृदुल स्वभाव एवं नये नये प्रेम में लिप्त रहनेवाले शासक होने के कारण धीर ललित नायक हो सकते है। यहां पर मनु के जीवन में दुर्बलता, सबलता, निकृष्टता, उत्कृष्टता आदि का समावेश किया गया है। इसका मूल कारण यह है कि प्रसाद अपने नायक को देव बनाना नहीं चाहते, वे उसे जन-जीवन के अधिक निकट लाना चाहते हैं, उन्हें नायक में केवल गुण ही गुण दिखाना अभिष्ट नहीं वे एक साधारण व्यक्ति की भाँति उसमें सात्विकी, राजसी एवं तामसी, प्रवृत्तियां का रूप दिखाना अच्छा समझते हैं। दूसरे, मनु, मन के भी प्रतीक है। इसी व्यक्तत्व का निर्वाह करने के लिए भी इन दुर्बलताओं को दिखाना आवश्यक समझा है और फिर किस प्रकार एक मानव अपनी तामसी एवं राजसी प्रवृत्तियों से ऊपर उठता हुआ सात्विक जीवन व्यतीत कर सकता है, वे इस भावना का भी प्रचार करना चाहते हैं। इसी-लिए प्रसाद ने " कामायनी " के नायक मनु में उदात्त एवं अनुदात्त, साधारण और असाधारण, उत्कृष्ट और निकृष्ट सभी प्रकार की मनोवृत्तियां दिखलाई है और अन्त में सात्विकता की उन्नतावस्था में पहुंचकर मानव मात्र के सम्मुख यह आदर्श उपस्थित किया है कि मानव कितना ही पतित एवं निकृष्ट क्यों न हो जाय वह श्रद्धा सहित इच्छा ज्ञान और क्रिया के समन्वित स्वरूप को अपनाता हुआ पुनः एक महापुरुष बन सकता है, उसके जीवन में समरसता आ सकती है वह सन्तुलित जीवन व्यतीत कर सकता है और अन्त में परमानंद की प्राप्ति कर सकता है। अतः " कामायनी " के नायक में जातीय गुणों का समावेश अधिक है और उसे सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नायक बनाने का प्रयत्न किया गया है और इस काव्य की नायिका श्रद्धा है।[1]

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० १३७

श्रद्धा विश्व की करुण कामना मूर्ति है, वह मानवीय चेतना की समस्त उदात्त वृत्तियों - दया, माया, ममता, सेवा, सहानुभूति, त्याग, समर्पण, निष्कामता, आदि की सजीव प्रतिमा है। वह स्वयम् मनु अर्थात् मानव को समरसता तथा आनंद के पथ पर ले जानेवाली श्रेष्ठ शक्ति है। उसमें कवि ने लगभग सभी गुणों का समावेश किया है जिनका लक्षण शास्त्रों में मिलता है तथा जिनका काव्य के " नेता " में होना सर्वथा अपेक्षित है।

(४) उदात्त भाव या अंगीरस :

भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में शृंगार, वीर, या शांत में से किसी एक की प्रमुखता होनी चाहिए। " कामायनी " में शांतरस प्रमुख है और शृंगार, वीर, वात्सल्य, भयानक, बीभत्सादि अंग-रस हैं। शांत रस निर्वेद या शममूलक न होकर हृदय की उदात्त या आनंदावस्था को लेकर चला है। इसी-लिए " उसे -आनंद " रस की संज्ञा भी प्रदान की गई है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर इस रसका स्वरूप निर्मित किया गया है। कामायनी में समरसता पूर्ण अभेदमय शांतरस की सत्ता भ्रान्ति पूर्ण नहीं है। यदि प्रसाद के शब्दों में काव्य को आत्मा की संकल्पकात्मक अनुभूति माना जा सकता है तो " कामायनी " में संकल्पकात्मक शांत रस की स्थिति को सहजता के साथ स्वीकार किया जा सकता है यह स्थिति एकाकी शांत या शृंगार की न होकर अखंड श्रेष्ठ आत्म रस की है। इस तरह कामायनी की रस या भाव-योजना में भी सर्वथा नवीनता, उदात्तता तथा संश्लिष्टता विद्यमान है।[1]

(५) युग-जीवन तथा प्रकृति के विविध पक्षों का सांगोपांग चित्रण :

" कामायनी " में आधुनिक मानवीय जीवन की गंभीरतम समस्याओं का चित्रण किया गया है। आज आत्मवाद, अनात्मवाद, बुद्धिवाद, यंत्रवाद,

१ डा० गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृ० २०८

भौतिकवाद, आदि विचार धाराओं से विश्व जीवन आक्रांत है । इसका सम्यक् चित्रण कामायनी में उपलब्ध है । युग जीवन को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने के कारण ही यह महाकाव्य युग-प्रतिनिधि कृति के साथ-साथ क्रांत दर्शी ग्रंथ भी बन गया है । उसकी यह विशेषता निश्चित ही महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त है प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ युग की प्रतिनिधि रचना सिद्ध होती है । इसके लगभग सारे क्रिया कलाप प्रकृति की गोद में ही सम्पन्न होते हैं । जैसे आलंबन, उद्दीपन, भावावृत्त, रहस्य, दर्शन, उपदेश, मानवीकरण, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि जितने भी रूपों में काव्य में प्रकृति के वर्णन संभव हो सकते हैं वे सभी " कामायनी " में अंकित हुए हैं । इस प्रकार प्रकृति भी कथावस्तु का एक अभिन्न अंग बन कर उपस्थित हुई है । प्रसाद जी प्राकृतिक क्षेत्र में उषा और मधु के कवि है ।

(६) उदात्त शैली :

उदात्त काव्य के लिए उदात्त भाषा शैली का प्रयोग सर्वथा आवश्यक होता है । भाषा की गरिमा का मूलाधार प्रभावक पदविन्यास है । सम्यक् शब्द-योजना तथा भाषा की मूर्ति-विधायिनी शक्ति में प्रसाद जी अप्रतिम है । शब्द की लक्षणा तथा व्यंजना शक्तियों का प्रयोग करने के कारण " कामायनी " की गणना ध्वनि काव्य में होती है । इसमें औचित्यपूर्ण वक्रोक्तियों की भी विशदता है । इसमें छायावादी काव्य के समस्त कलापक्षीय लक्षणों का सम्यक् स्वरूप देखा जा सकता है । छायावाद-वस्तुपक्ष की दृष्टि से भावोन्मेष का एक विशाल आन्दोलनरहा है और कलात्मक उपकरणों की दृष्टि से लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता, ध्वन्यात्मकता, कलात्मक उपचारवक्रता, प्रतीकात्मकता आदि उसके प्रमुख अवयव रहे है । " कामायनी " की वस्तु योजना युग प्रभाव के अनुकूल भावात्मक ही रही है और उसकी कलात्मक रचना उसे छायावाद युग की प्रतिनिधि कृति बना देती है ।

" कामायनी " में सूक्ष्म और व्यापक मूर्त और अमूर्त मानसिक और भौतिक सभी तत्त्वों का समान रूप से चित्रात्मक वर्णन किया गया है किन्तु कामायनी का विधान अंतर्मुखी है अतएव इसमें विविध भावों, अनुभावों और संचारियों के ही सजीव चित्र सर्वाधिक रूप से मिलते हैं । प्रवाह शीलता कामायनी की निश्चित ही एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है । भावोन्मेषों अंतःसंघर्षों या आत्मोद्गारों की अतिशयता के कारण प्रवाह में सर्वत्र तीव्रता उत्कटता, नव्यावेग और संवेदनशीलता भी विद्यमान है । संक्षेपतः कामायनी की भाषा शैली निश्चित ही उदात्त तत्त्वों से युक्त है और उनमें महाकाव्य की पूर्ण गरिमा समाहित है ।

कामायनी में रूपक काव्यत्व :

" कामायनी " महाकाव्य होते हुए भी उसमें कुछ ऐसे सांकेतिक अर्थ भी अभिव्यक्त करानेवाले प्रतीकात्मक पात्रों एवं घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं जिनके आधार पर वह रूपक काव्य कहलाता है । रूपक काव्य से तात्पर्य ऐसे काव्य से है जिसमें प्रस्तुत पात्रों या प्रस्तुत कथा पर किसी अप्रस्तुत बातों का निषेध रहित आरोप किया गया हो ।[1] आचार्य शुक्ल ने ऐसी गूढार्थ रचना को " अन्योक्ति " बतलाया है । इस संबंध में डा० नगेन्द्र ने रूपक काव्य में संस्कृत के रूपक तथा अन्योक्ति दोनों अलंकारों का योग मान कर उसका विशिष्ट अर्थ में प्रयोग किया है । आपके अनुसार " रूपक " से तात्पर्य एक ऐसी द्विवअर्थक कथा से है जिसमें किसी सैद्धान्तिक अप्रस्तुतार्थ अथवा अन्यार्थ पर प्रस्तुत अर्थ का अभेद आरोप रहता है ।[2]

" कामायनी " का रूपक तत्त्व इसी अर्थ में ग्राह्य है । कामायनी की कथा भी द्विवअर्थक है क्योंकि एक ओर तो इसमें श्रद्धा एवं मनु का ऐतिहासिक उपाख्यान है, और दूसरी ओर मन, बुद्धि और हृदय के क्रमिक विकास का रूप दिखलाते हुए मानवता के विकास का भी निरूपण किया गया है ।[3] साथ ही इसके

१ काव्य दर्पण, पृ० ४६५

२ डा० नगेन्द्र, " कामायनी " के अध्ययन की समस्याएं, पृ० ४२

३ कामायनी, आमुख, पृ० ७

अधिकांश पात्र सांकेतिक है क्योंकि " मनु " तो स्पष्ट ही चंचल गतिशील मन के प्रतीक है। श्रद्धा हार्दिक विश्वास से परिपूर्ण हृदय की प्रतीक है। इसे आचार्य शुक्लजी ने विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति कहा है।[1] प्रसाद जी ने इडा को बुद्धि का प्रतीक बतलाया है। कुछ विद्वान इसका विरोध करते हैं। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है कि " प्रसाद ने बुद्धि का विरोध न करके बुद्धि के अतिवाद का विरोध किया है। (जयशंकर प्रसाद, पृ० ८१-८६) अतः इडा बुद्धि के अतिवाद को जन्म देनेवाली " तर्कशीला " बुद्धि का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त गौण पात्रों एवं घटनाओं में से मनु-पुत्र कुमार(मानव) नव मानव का प्रतीक है। आकुलि और किलात अपनी तामसी वृत्तियों की प्रबलता के कारण आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। श्रद्धा का पशु एक निरीह और शोषित प्राणी के रूप में चित्रित किया गया है जिसका वध कराया जाता है। अतः वह आधुनिक अर्थों में गांधीवादी अहिंसा का प्रतीक है। सारस्वत नगर प्राणमय कोश का प्रतीक है तथा सारस्वत नगर निवासी मन की सहगामिनी इन्द्रियों के प्रतीक हैं। सोमलता भोगों को प्रेरणा देती है अतः वह भोग का प्रतीक है।

त्रिकोण या त्रिपुर भाव (इच्छा), ज्ञान और क्रियावृत्ति के प्रतीक है। सोमलता से आवृत वृषभ भोगों से युक्त धर्म का प्रतीक जिसका उत्सर्ग करके मानव अखंड आनंद को प्राप्त करता है। सरोवर समरसता का प्रतीक है, क्योंकि यहाँ पहुंचते ही मन की प्यास मिट जाती है और सभी को सुख मिलता है। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

" सब रस थे जड या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनंद अखण्ड घना था। "[2]

कैलाश-शिखर आनंदमय कोश का प्रतीक है क्योंकि इसी स्थान पर पहुंच कर "कामायनी"

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ० शुक्ल, पृ० ६१०

२ प्रसाद, कामायनी, पृ० २८३

के समस्त पात्रों को अखण्ड आनंद की प्राप्ति होती है।[1]

तैत्तिरीय उपनिषद में आध्यात्मिक साधना के लिए पंचकोशों की कल्पना की गई है। वे क्रमशः अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्द मय कोश कहलाते हैं।[2] सर्व प्रथम जीव अन्नमय कोश में उत्पन्न होता है और क्रमशः उन्नति करता हुआ अपनी सतत साधना से आनंदमय कोश तक पहुंच सकता है।

" कामायनी " में प्रसाद जी ने अहंभाव युक्त मन का नाना कोशों में विचरण करने के उपरांत अन्त में आनंदमय कोश में पहुंचाने का प्रयत्न किया है।

कवि ने रूपक का निर्वाह बड़े मनोवेग के साथ किया है और सर्वत्र रूपक कथा के सन्तुलन की ओर ध्यान दिया है।

(७) छंद और सर्गबद्धता :

भारतीय महाकाव्य के निर्धारित लक्षणों के अनुसार " कामायनी " के प्रत्येक सर्ग में आद्यंत एक ही छंद का समस्त प्रयोग किया गया है। छंद-योजना पूर्णता वस्तु अनुरूपिणी है।" नाति स्वल्पा नाति दीर्घा " के ही हिसाब से " कामायनी " में कुल १५ सर्गों का विधान है। सर्गों का नामकरण उनमें निहित मूल भावना व्यापारों के आधार पर ही किया गया है। कुछ सर्गों के अंत में अगले सर्ग की कथा का पूर्वाभास भी व्यंजनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है, यथा चिंता, काम स्वप्न, आदि सर्गों में। इस प्रकार छंद-विधान तथा सर्गबद्धता भी " कामायनी " को महाकाव्यत्व प्रदान करती है।

इस तरह उदात्त काव्य के सारे तत्त्व " कामायनी " में अपने चरम

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी, पृ० १५८-५९

२ तैतरियोपनिषद - २।८

रूप में विद्यमान है। भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के जिन लक्षणों का निर्देश किया है उसमें मंगलाचरण, आशीर्वचनादि, सुसंगठित कथानक योजना एवं नायक की धीरोदात्तता को छोड़कर शेष समस्त तत्त्व भी कामायनी में अपनी पूर्ण गरिमा के साथ उपस्थित हुए है। इसकी कथानक योजना पर आधुनिक स्वच्छंदतावादी काव्य-प्रवृत्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा है और वह बुद्धिवादी या वर्णनात्मक न होकर भावात्मक रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसी के अनुरूप कथावस्तु एवं नायक का चरित्र भी प्रस्तुत किया गया है। किन्तु मानव चेतना की अखिलता से संबद्ध होने के कारण इस काव्य में उदात्तता वैभव और पूर्ण गरिमा विद्यमान है। अर्थ श्लिष्ट, रूपक योजना की विद्यमानता से यह ग्रंथ और भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथा हिन्दी की एक अद्भुत उपलब्धि बन गया है।

उपसंहार :

यह गौरव ग्रंथ प्रसाद के अप्रतिम कल्पना वैभव एवं उदात्त जीवन दर्शन का अमर प्रतीक है। उसका सर्जन सन् १९२८ से पहले से आरंभ हो गया था जो १९३५ ई० में आकर पूर्ण हुआ। आलोचकों ने इस कृति को आधुनिक युग का अन्यतम काव्य ग्रंथ माना है। इसमें युग युगीन मानव चेतना का बड़ा ही रमणीय आख्यान किया गया है। इसमें महाकाव्य के आयाम में पर्याप्त विस्तार है। महाकवि केवल बाह्य जगत् के नाना रूपों का ही चित्ताकर्षक वर्णन करके विराम नहीं ले लेता अपितु अंतर्जगत् के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापारों का अभिराम प्रकाशन भी करता है। इस काव्य ग्रन्थ में कवि " प्रसाद " की संपूर्ण स सर्जनशक्ति अपने चरम शिखर पर पहुंच गयी है।[1]

कामायनी को हम प्रसाद के हृदय की अनुकृति बाह्य उदार उनके हृदय की बात तथा विफलता की ज्वाला से झुलसते हुए इस विश्व को " कुसुम ऋतु-रात " का सा सुख प्रदान करनेवाला महाकाव्य कह सकते है, जो अपने समन्वयवाद,

---

१ डा० सुरेन्द्रनाथ सिंह, प्रसाद के काव्य का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १४

समरसता, आनन्दवाद आदि के द्वारा समस्त विश्व को यह महान् संदेश दे रहा है कि यदि मानवमन बुद्धि और हृदय में उचित संतुलन स्थापित करके पारस्परिक भेदभाव को भुलाता हुआ प्रवृत्ति और निवृत्ति एवं भौतिकता और आध्यात्मिकता से समन्वित जीवन व्यतीत करेगा और बुद्धि के सदुपयोग द्वारा निरंतर सत्कर्म में संलग्न रहेगा, तो उसे सारा विश्व एक नीड के तुल्य प्रतीत होगा और वह स्वयं अखण्ड आनंद का अनुभव करता हुआ जगती के अन्य प्राणियों को भी सुखी एवं आनंदमय बनाने में सफल सिद्ध होगा। अतः "कामायनी" महाकाव्य इस निराश, भयत्रस्त, भ्रमित एवं चिर-दग्ध, दुःखी वसुधा को शान्ति और सुख की आशा बंधाता हुआ अखंड आनंद प्राप्ति का मंगलमय संदेश दे रहा है।[1]

००००००

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० ४५२

कवि न्हानालाल की काव्य-कृतियों का कला-सौष्ठव

प्रत्येक कवि की रुचि तथा काव्य-चेतना अपनी निजी हुआ करती है। पूर्ववर्ती विवेचन में हम लक्ष्य कर चुके हैं कि प्रसादजी की ही भांति न्हानालाल ने कालान्तर में अभिव्यंजना की नयी शैली का प्रवर्तन किया था। इस तथ्य के प्रकाश में उनकी रचनाओं में शिल्प के दो रूप प्रत्यक्षतः दिखाई पड़ते हैं। एक तो परम्परा-गत काव्य की शैली तथा उसके अनेकविध रूप तथा दूसरे नव्य-चेतनामयी " डोलन शैली "। किन्तु उनकी रचनाओं के अनुशीलन द्वारा हम इस निष्कर्ष को प्रस्तुत कर चुके हैं कि प्रथम प्रकार की रचनाएं भी अनेकविध कला विधान के सुन्दर समायोजन को लेकर प्रस्तुत हुई हैं। इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो रास काव्य, छन्दोबद्ध काव्य और रणगीतों की कलात्मकता के उपकरण एक दूसरे से भिन्न है। अतः विवेचनगत सुविधा के विचार से उनकी काव्य कृतियों को निम्नलिखित चार विभागों में विभाजित करके यह अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है :-

(१) रास काव्य
(२) छन्दोबद्ध काव्य
(३) रणगीत
(४) डोलन शैली के अंतर्गत आनेवाले काव्य

१ रास काव्य :

इस शैली की रचनाएं लोक-काव्य की विशेषता को लिए हुए हैं। गुजराती भाषा की काव्य-परम्परा में रास काव्यों की लम्बी परम्परा मिलती है। इनकी सब से उल्लेखनीय विशेषता लोक-काव्य को साहित्यिक संस्कार से सम्पन्न करके प्रस्तुत करने की है जैसा कि परवर्ती विवेचन से प्रकट है। कवि न्हानालाल के सभी रास-काव्य न्हाना-न्हाना रास भाग-१-२ तथा ३ में संकलित हो कर प्रकाशित हैं।

रास काव्यों की भाषा में भावों को वहन करने की क्षमता है। उसमें लय है, संगीतात्मकता है। प्रारंभ से ही रास में गेयता, हींच, डोलन और नृत्य अग्रिम स्थान में रहे हैं और इन कलात्मक गुणों से प्रजाजीवन की उत्कृष्ट सामुहिक रसवृत्ति के संस्कार का पोषण किया है। रास का प्रारंभ कैसे दयाराम ने किया लेकिन न्हानालाल ने उसका सर्वोत्तम विकास साधा।

न्हानालाल के रास में से कविता और संगीत को अलग नहीं कर सकते, ध्यान और लय को भी अलग नहीं कर सकते, रस और वाणी को भी विभक्त नहीं कर सकेंगे। भावार्थ यह है कि न्हानालाल की राससृष्टि में कविता, संगीत, ध्वनि, लय, रस और वाणी का पूर्णरूपेण सामंजस्य है। डोलन और हींच उसकी विशेषता है। भाषा और भाव (अनुभूति और अभिव्यक्ति) के कारण रसानुभव का प्राबल्य होने के कारण वह जीवन में अकल्पित परिवर्तन ला देता है। रास का रस स्वरूप तत्कालीन नहीं अपितु सर्वतोदर्शी शाश्वतता रखता है।

" इस प्रकार न्हानालाल के रास व्यक्ति के रसपूर्ण स्वानुभव में से प्रकृति की सर्वतोव्यापी रसिकता में मिल जाते हैं और संगीत के आंदोलन में झूलकर, नृत्य के साथ पूरा सामंजस्य साधकर साथ साथ सृजन की उत्कृष्ट कक्षा को निभाता व अर्वाचीन गुजराती कविता का एक अनोखा अंग बन गया है। " [1]

रास का आस्वादन संगीतप्रधान गीतिकाव्य की तरह शब्द और वाणी द्वारा ही होता है। उसका पूर्ण रसास्वाद नारीवृन्द समूह में ताल, लय से गाता है तभी अनुभव होता है। राधा और कृष्ण की रासलीला से इस विधा का जन्म माना जाता है। न्हानालाल ने इस राससृष्टि में वृन्दसंगीत के साथ हृदयस्पर्शी ध्वनि की लय मिला दी। नृत्य का झूलना और हींच कायम रहे और मन भावाभिव्यक्ति के साथ वह कलात्मक कृति मानी गई जो आज भी जीवंत

---

१ बालचन्द्र परीख, रसगन्धा, न्हानालालनी रसदृष्टि, पृ० ५० (अनूदित)

है। लोक-जीवन का यह संस्पर्श कवि न्हानालाल को निश्चय ही प्रसाद जी से पृथक् करता है।

इस रास सृष्टि में स्वरमैत्री है, नाद सौंदर्य है, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, चित्रोपमता और उपचारवक्रता ये सब विशेषताएं मिलती है। हृदय की सुकुमार भंवनाएं, मुग्ध प्रणय कामनाएं, स्नेहरस की पिपासा, तनमनाती आशाएं, नारी जगत के हावभाव कटाक्ष (अपांग व्यंग्य आदि), गहरी सौभाग्य इच्छा, दिल की आशानिराशाएं आदि रास के माध्यम से सशक्त भाववाहक भाषा के कारण, संगीतात्मकता, लय, नृत्य और हींच के उपकरण उनमें विद्यमान हैं।

भाषा के माधुर्य के कारण कवि की रास रचना में निजी लावण्य भी है। पद लावण्य की इन रासों की उल्लेखनीय विशेषता है। कवि की वाणी गहरी, तेजोमय और प्रांजल है। संक्षेप में इनकी विशेषताएं सोदाहरण इस प्रकार हैं :-

(१) स्वरमैत्री :

" एक आंबो म्हारे म्हारे आंगणे रे लोल
व्हेनां! आवो रसाळ एनी छांयडी रे लोल "
(न्हाना न्हाना रास, पृ० १५)

कवि ने अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जो वाच्यार्थ से भिन्न किसी न किसी लक्ष्यार्थ के द्योतक है।

(२) नाद-सौंदर्य :

" वीणो-वीणो ने फूलडानां फाल
फोरे फूलां हैया लाल (वही, पृ० १४)

किसी भी रास को आप ले, उसमें नाद सौंदर्य प्राप्त होगा । ब्रूह नृत्य-गीत से उसका अनुभव होता है । इसमें संगीत की सृष्टि हेतु शब्द-चयन किया है ।

(३) लाक्षणिकता :

" गुरागुरानी वातो रे व्हालना।म्हारी अँसी मंही "

(म्हाना म्हाना रास, भाग-२,३ पृ० १२५)

" जोया कुंड, जोई भाडीओ, अहो जोगी रे ।
म्हे तो जोया गुफा ने म्हाड, अमर उर भोगी रे । "

(म्हाना म्हाना रास, भाग ३, पृ० ५४)

इस प्रकार भाषा की लाक्षणिकता और संगीतात्मकता से भरे अनेक रास हैं ।

(४) ध्वन्यात्मकता :

रास सृष्टि में लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता का प्रभाव कवि की अपनी मौलिक सूझ है ।

उदाहरण :

(१) संकोरी तेज केरी कोर रे,
संकोर्या न जाय चित्त चकोर रे
मोरली मर्मारियां कुवाने कांठडे " (वही, भाग ३, पृ० ५२)

(२) " म्हानी शी गोरसीमां अमृत ठारियां
हळवे उघाडी नाथ । चाखो रे लोल
हळवे हाथे ते नाथ । महिडां व्हलोवजो "

(म्हाना म्हाना रास भाग-३, पृ० ५६)

(५) प्रतीकात्मकता :

भाषा को सरस,सुंदर और मधुर बनाने के लिये कवि ने प्रतीकों की

योजना की है । इसी कारण इसमें अर्थगांभीर्य और उक्तिवैचित्र्य लक्षित होता है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" जमणे काठे मथुरा नगरी,
डाबे गोकुल गाम,
आ आरे म्हारी देह ऊभी छे,
त्यहां छे आतमराम
म्हारे जावु पेले पार"(वही, भाग २, पृ० ११५)

" हैयानी वेलने अमीना फूल ऊग्यां
ऊरनी रसमूर्ति शुं आम ऊतरी । "
आ अषाढी वादळी बीजे भरी " (वही, भा० २, पृ० २०)

(६) चित्रोपमता :

कवि ने यत्र तत्र भाषा के माध्यम से ऐसी पदावली का प्रयोग किया है जिसमें किसी भाव, विचार, दृश्य, व्यक्ति या पदार्थ का चित्र अंकित हो जाता है । ऐसे अनेक उदाहरण रचनाओं में भरे पडे हैं । संक्षेप में एक उदाहरण यहां द्रष्टव्य है :-

" वीजळी ज्यम गगन म्हांय
कविता कवि नयन म्हांय
एम हींची हृदय म्हांय
प्रेमराय गाय (म्हारो हींचको)
(न्हाना न्हाना रास, भाग १, पृ० २८)

(७) उपचार वक्रता :

इसी पद्धति के अनुसार कवि ने यत्र तत्र निर्जीव में संगीत का आरोप अर्थात् अचेतन में चेतन का आरोप किया है :

" चन्द्रीए अमृत मोकल्यां रे व्हेन ।
    फूलडां कटोरी गूंथी लाव
        जग मालणी रे व्हेन ।
  अमृत अंजलिमां नहि मनीलुं रे व्हेन "

इस प्रकार रस-पुष्टि में कवि की भाषा भावानुसारिणी और प्रांजल है । गुजराती में कहा है -

" तेजे घडेला शब्दो अने भावे पूरेला काव्यो छे "
लें० आनंदशंकर

कवि के रास काव्यों में पद-लालित्य और लोकवाणी का विलक्षण माधुर्य है । इन काव्यों में कवि की गीत शक्ति बड़ी अनुपम और मनोज्ञ है । एक आलोचक के शब्दों में :

" यह अंतरंग कविता स्वरूप रास, विशिष्ट रूप से बाहर के स्वरूप पर आधार रखता है । रास का आस्वादन संगीत प्रधान गीतिकाव्य के रूप में शब्द और वाणी से निश्रुत उसके माधुर्यपूर्ण लय के उपभोग द्वारा होता है लेकिन इन रास गीतों का पूर्ण रसास्वाद का अनुभव प्राप्त करने के लिये तो समूह-संगीत-रूप से उसकी अभिव्यक्ति निहारनी चाहिए । जितनी तीव्र भावत्वरिता से प्रेरित नारीवृन्द जब नृत्य के ताल और वाणी के साथ तल्लीन होकर, हृदय के संगीत के रूप में निर्मुक्त वाणी में उस रासगीतों को प्रवाहित करे तभी रासगीतों का दिव्य और श्रेष्ठ कलास्वरूप वास्तविक अर्थ में भोग्य बनता है । "[1]

अलंकार-विधान :

हृदय के भावों के उत्कर्ष को बढ़ाने के लिए कवि ने उचित प्रमाण में

---

१ बालचन्द्र परीख, रसदृष्टा कविवर, पृ० ५९ (अनूदित)

अलंकारों का उपयोग किया है । कवि ने दोनों प्रकारों के अलंकारों को - शब्दालंकार और अर्थालंकार को अपनाये हैं । शब्दालंकार में कवि ने अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि का उपयोग मौलिक रूप से चमत्कार के लिये किया है । अलंकारों की भरमार नहीं है । अर्थालंकार में - उपमा, रूपक, सन्देह, प्रतीक, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, अतिशयोक्ति, दीपक, दृष्टान्त आदि का उपयोग करके गीतों की काव्य शोभा में पूर्ण रूप से अभिवृद्धि की है ।

शैली :

कई रास सरल शैली में लिखे हैं : जैसे प्रथम भाग में

" वीणो वीणो ने फूलडाना फाल " - पृ० १४
" एक आंबो म्हारे म्हारे आंगणे रे लोल "- पृ० १५
बोले छे मोर - पृ० ४८

अनेक रास अलंकृत शैली में भी लिखे हैं । उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" जुग जुगनो वानो रे ब्रह्मान्ड । त्हारी जेवी नहीं"(भा० १, पृ० १२५)
जगतने आरे प्रेम पंखीना जीवन संगम थाय (भा० १, पृ० ६५)

रास सृष्टि में अलंकारों का प्राधान्य होने के कारण तीनों भागों में अलंकृत-शैली के रासों की बहुलता है । सिर्फ नमूने के रूप में ऊपर दो उदाहरण दिये हैं ।

सांकेतिक शैली :

सांकेतिक शैली में लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता होने के कारण संकेत सूचित किये जाते हैं । निम्न लिखित उदाहरण में इसे लक्ष्य किया जा सकता है :-

" घडी घडी दीवडो संकोरतो, अहो जोगी रे ।
म्हारी खूटे न मासअमरात, अमर डर भोगी रे ।"
(भाग ३, प्रेम परख, पृ० ६४)

" कन्था धरी म्हारा कन्थनी, हुं तो सन्यासिनी "
(म्हाना म्हाना रास, भाग-३, पृ० ५२)

विलष्ट शैली :

रास के गीत लोकप्रिय होने के कारण और समूह में गेय होने के लिये विलष्ट शैली के रास गीत बहुत कम है । पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

" ब्रह्माण्ड जयिनी कविता
प्रारब्ध वणी पुष्पो खीच्यां
काई पांखडीए प्रेरणा पीतां रे लोल ; "
(भाग ३, पृ० ११६)

म्हाना म्हाना रास भाग १-२-३ में वैदर्भी रीति की प्रधानता है क्योंकि यह दोषरहित वीणा के स्वरों के समान मधुर है ।

इन रास गीतों में एक-आध अपवादों को छोडकर सर्वत्र माधुर्य और प्रसाद गुण है क्योंकि वे पूरे रास गीत माधुर्य और भक्तिभाव के द्योतक है । जो रासडा है जैसे " धण " (भाग ३) में ये लोकगीत है जिसकी चर्चा चतुर्थ अध्याय में की गयी है ।

भावनाओं की तीव्रता के कारण गेय रास एक नया स्वरूप प्राप्त करते है । वासंतिक लावण्य के सुहाग से, प्राकृतिक सौंदर्य - वन, कुंज, लता, पुष्प पंछीओं का कलरव - से सामंजस्य साध कर ताल और सुर मिला कर जीवन के अनेक प्रकार के रसात्मक स्वरूपों में से निसृत होते हैं । इस अलौकिक रासपृष्टि में मानव

हृदय में निहित अनेक प्रकार थे। प्रेम, सौंदर्य, प्रणय और आकर्षण की भावनाओं का ताल, सुर, और गेयता के आधार पर वर्णन है। कवि के रास सिर्फ गेय ही नहीं हृदयग्राही और भावनाओं को जागृत करनेवाले भी है। मानवी के रस-जीवन के ये परिपोषक है। तात्पर्य यह है कि इसमें संगीत और भावना दोनों का सम्यक् मिश्रण है।

(२) छन्दोबद्ध काव्य :

" काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए जहां भाषा प्रमुख साधन है वहां यदि वह तनिक लय और स्वर के साथ अपने भावों को वहन करती है तो उसमें प्रेषणीयता का गुण और भी अधिक बढ़ जाता है। कवि लोग इसी गुण की वृद्धि के लिए वृत्तों या छंदों का प्रयोग करते हैं। इससे एक ओर तो अभिव्यंजना में संगीतात्मकता आ जाती है और दूसरी ओर स्वर-लय युक्त मधुर छन्द भावानुकूलता को प्राप्त होकर श्रोता के हृदय को अनायास आकृष्ट कर लेते है " [1]

भारतीय वाङ्मय में षड्वेदांग के अंतर्गत छंद को वेद का एक अंग माना गया है। पाश्चात्य समीक्षकों में अरस्तु ने छन्द को बड़ा महत्त्व दिया है और कहा है कि यदि कोई भी वाक्य छन्द में लिखा जाता है तो वह कविता बन जाता है। [2] कविता में छन्द की प्रशंसा करते हुए अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कालरिज ने लिखा है कि " छन्द साधारण मनोवेगों और ध्यान सम्बन्धी चेतना एवं संवेदनशीलता की वृद्धि में बड़ी सहायता पहुंचाता है। [3]

कवि न्हानालाल के छन्दोबद्ध काव्य उपर्युक्त छन्द-योजना से सम्बन्धित विशेषताओं को अपनाये हुए हैं। इस कोटि की रचनाएं निम्नलिखित हैं :-

१. डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० २५२

2. Aristotle's theory of Poetry - Fine Art - Page 14

3. Principles of Literary criticism - I. A. Richards - P. 143

(१) " राजपूतोनी काव्य त्रिपुटि

राजमहाराज – एडवर्डने

राजराजेन्द्रने

(२) केटलाक काव्यो भाग–१

ये तीन काव्य – " प्राणेश्वरी " " एकव्यर्थ याचना " और " ब्रह्मदीक्षा " के सिवाय सब काव्य गेय है ।

केटलाक काव्यो – भाग–२

ये पांच काव्य – " सौभाग्यवती ", " नवयौवना ", " राज-युवराज ने साकार ", " राजवीर " और " गिरनारने चरणे " के सिवाय सब काव्य गेय हैं ।

(३) चित्र दर्शनों के गेय काव्य इस प्रकार हैं :–

गुजरात, शरदपूनम, कुल्योगिनी, कठियाणीनुं गीत, ताजमहेल, चारुवाटिका, गुर्जरी कुंजो, पितृ तर्पण, गुजरातणनां प्राण ।

(४) इनके अतिरिक्त निम्नलिखित पूरी काव्य पुस्तकें गेय काव्य छंदोबद्ध काव्य हैं :–

प्रेमभक्ति भजनावलि, गीतमंजरी भाग–१–२, दाम्पत्य-स्तोत्रो, नाट्यकाव्यो, सोहागण, पानेतर, हरिदर्शन, वेणु-विहार, प्रज्ञा चक्षुना प्रज्ञाबिंदु, महेरामणनां मोती, और नाटकों के गीत, हरिसंहिता भाग–१–२–३ (अपूर्ण)

उपर्युक्त विवरण द्वारा इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुंचा जा सकता है कि रास-काव्यों की तुलना में छन्दोबद्ध काव्यों का परिमाण कहीं अधिक है ।

वैसे देखा जाय तो मुक्तक ही नहीं छोटी-मोटी आख्यानक रचनाएं इसी शैली में प्रस्तुत हुई हैं ।

कवि न्हानालाल ने छंदोबद्ध काव्यों में निम्नलिखित छंदों के प्रयोग किये हैं :-

शिखरिणी, वसंततिलका, अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीड़ित, दोहे, हरिगीत, सोरठा, झूलणा, धनाक्षरी, आर्या, लावणी छंदावली के प्रयोग भी लक्षित होते हैं । यत्र-तत्र चारणी छंद का भी प्रयोग मिलता है ।

कभी कभी गीत पुरानी तर्ज में प्रवाहित रहता है और कवि बीच बीच में दोहे अथवा शार्दूलविक्रीड़ित अथवा " वसंततिलका " छंदों की पंक्तियां भाव-सौंदर्य बढ़ाने के लिये रख देते हैं । सारांश यह कि कवि समर्थ छंदयोजक है ।

आवश्यकतानुसार इन छंदों का प्रयोग लोक गीतों की तर्ज पर भी किया गया है । एतद्विषयक कतिपय उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं :-

(१) शिखरिणी छंद :

" प्रभो ! अन्तर्यामी जीवन जीवनां दीन शरणा !
पिता ! माता ! बन्धु ! अनुपम सखा ! हितकरणा !
प्रभा, कीर्ति, कान्ति, धन, विभव - सर्वस्व जगना !
नमुं छुं, वन्दु छुं, विमल मुख स्वामी जगतना " [१]

इस प्रकार से यह पूरा काव्य शिखरिणी छन्द में लिखा है ।

---

१ बालकाव्यो, पृ० ६२७

(२) वसंत तिलका :
००–००–००–००–०००–०

" पूनम पूनमनी चन्दन चन्दनी अमासनां अन्धारां,
तेज तिमिरनी पाले खिरानी दूंद्‌या सकल संसारा
जगतनी पाछल जोवाने "[१]

यह पूरा गीत " अनन्तने आरे " वसंततिलका में है । इसमें अष्टपदी भी है । पूरा काव्य ताल ध्वनि से गेय है ।

(३) अनुष्टुप :
००–००–००–००

" आंबानी डाळ म्होरी ने आत्मा ये मुज म्होरियो ;
गाय छे साधु ने सन्तो हरिनी रस होरीओ "[२]

शरदपुनम, पितृतर्पण आदि अनेकों काव्य इस छंद में लिखे हैं ।

(४) शार्दूल विक्रीडित :
००–००–००–००–००–००–००

" म्हेरामणनां मोती "

" जुहुना जलधिजल आरे "

यह पूरा गीत अष्टपदी और शार्दूल विक्रीडित छंद में है ।

" तटवन डोलायां सागरमां, निधि डोलायां नभमां
नभ डोलायुं गहन गहवरे विराट करचलीओमां
जुहुनां जलधिजल आरे "

(५) दोहरे :
००–००–००–००

" सत्य छे, आरभु छे ; ज्योत छे जयवन्त जल्ती ,
मनोरथनी सुभग महामणि को फ़ोलो तो जरा । "

1 म्हेरामणनां मोती, पृ० ४५, अनन्तने आरे
2 चित्रदर्शनो, पृ० १०२

कवि ने कहीं कहीं काव्यों के बीच में भी दोहे रचे हैं, यथा –

" सुधाने विष घोळेला रचे । संसार सागरे
प्रेमने मृत्युना म्हेल, ताज सौने वसे उरे "

(ताजम्हल, चित्र दर्शनो)

हरिगीत :

" नयन उघडयुं पेलुं ओजस्वी नमल प्रभातनुं "

सोरठा : प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञाबिंदु काव्य पुस्तक में गीत क्रमांक ७ " फूल रचो "

" कोई फूल रचो, मुज फूल हो ।
एना परिमल करशे प्रफुल्ल हो ।
कोई – – – – –
रसरसिको ओ सुजाण । रसमां सारस-सारसी ।
ए फूल फूलने प्राण छे परब्रह्मनी प्रेरणा । "

फूलणां :

प्रज्ञाचक्षुनां प्रज्ञाबिन्दु काव्य पुस्तक में गीत क्रमांक १९

" हरिचरना थाय पडघा । "

" असीम ए, अमित ए, अकळ ए, सकळ ए,
प्रकळ ब्रह्मांड भरपूर प्रसरती,
प्रेमना पंखिडा । फांखीना भंखिडा ।
अंखी उघाड, जो ब्रह्ममरती । "

घनाक्षी :

प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञाबिंदु काव्य पुस्तक में गीत क्रमांक २४

" मनुन हो ! ब्रह्मांड छे ब्रह्मकुंड
सृजन-प्रलयनी यह ज्वाल जले
नमकनने मुंड-मुंड
मनुन हो ! ब्रह्मांड छे ब्रह्मकुंड "

लावणी :

प्रभातश्रुना प्रभाबिन्दु काव्य पुस्तक में गीत क्रमांक २७-२८-३१

" जगतन्त्र, गगन घडाका !
जगतन्त्र पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

छन्दोबद्ध काव्यों की भाषा :

कवि की छन्दोबद्ध काव्यों की भाषा में, शब्द, अर्थ और भावना की चमत्कारपूर्ण घोतकता है, श्री आनंद शंकर ने उसे " तेजे घडेलां शब्दो " कहा है। न्हानालाल की भाषा में शब्द, वर्ण सौन्दर्य की शोभा से, विशिष्ट वातावरण से और लाक्षणिक व्यंजकता से मौलिकता से निश्चित होते हैं। उनकी भाषा में प्रांजलता और माधुर्य है। न्हानालाल की अर्थरचना याने काव्य में प्रवृत्त पूरा वाणी व्यापार।

इन काव्यों की भाषा गेय है। इनमें राग, रागिनि, ताल, लय, आदि का पूर्ण प्रभाव है। इनमें माधुर्य गुण की प्रचुरता है। भाषा के माधुर्य के कारण पदों का परस्पर समन्वय साधा गया है। इसके कारण लावण्य का आविर्भाव होता है। उदाहरण -

" अंग आखो ये निन अलबेल
साहुभां डांकती रूपनी वेल " [१]

१ " गुजरात - एक ऐतिहासिक काव्य ",

कवि की वाणी में वाग्मिता और तेजोमयता प्रतीत होती है। इन तत्त्वों के साथ साथ भाषा में स्वरमैत्री, नाद सौन्दर्य, लाक्षणिकता, संगीतात्मकता आदि उपकरण भी विद्यमान हैं।

कवि ने यथावश्यक शब्दालंकार और अर्थालंकार का उपयोग किया है जिससे गीतों का काव्य-सौंदर्य निखर उठा है। अलंकार सौंदर्य और भावों की स्फुट अस्फुट व्यंजना ये इनके उत्तम मौलिक लक्षण है। इन काव्यों में कवि ने प्राचीन परंपरा को नये ढंग से और कलापूर्ण रीति से व्यक्त की है। कवि ने लोक वानी का, असाधारण माधुर्यवाली शब्दावली का और कल्पना का पूर्ण प्रभाव व्यक्त किया है। प्राकृतिक सौंदर्य का भी भावों के साथ सामंजस्य साध कर काव्यों को मौलिक और रसपूर्ण बनाये है। उदाहरण। " झीणा झरमर वरसे मेह " रुपला रातलडी " आदि। भावार्थ यह है कि काव्यों की भाषा, अलंकार, अभिव्यक्ति, पूर्ण रूपेण मौलिक और शास्त्रीय है।

" हरिवर। घडुं रचो जगतन्त्र,
पृथ्वीनी प्रजा प्रजा हो स्वतन्त्र
गगन घडाका – गगन घडाका गाजे, हो मैया। गगन घडाका गाजे
धर्मधुरन्धर धाजे, हो मैया। गगन घडाका गाजे
अवनीना अक्षयपात्र – मानवी। शी आ फूंट म फूंट
अवनीनां अक्षय पात्र अखूट "

आर्ष छन्द :
oo–oo–oo–oo

केटलाक काव्यो भाग–१ " मणिमय सैंथी " और " दाम्पत्य स्तोत्रो " में " नरी सरलता " ये दो काव्यों में आर्ष छन्द का प्रयोग किया है।

" नरी सरलता कोण पूजशे ?
नथी तेज, नथी तरंग ;
शान्त, विमल, विरल रम्य
तुज मुख हुं मधुं सौम्य, मुज लाडिली " दाम्पत्य स्तोत्रो, क्रमांक–५, पृ०३२

" धुम्बे पेला श्याम सिन्धु तरंगो,
आछा जेवा पातळा मेघरंगो,
ब्रह्मांडो ए सन्धिकामां रमे छे ;
व्हाली ! एवी तुज रसद्युति प्रेममां आथमे छे
के० का० भाग-१ मणिमय सैंथी, पृ० ६१

चारणी छन्द :

" प्रघा चक्षुना प्रज्ञाबिंदु " गीत क्रमांक २२ संग्राम चोक

तोडी संस्कार संस्कृतिना स्थंभो, छोडी मानव देवत्वनी दिव्यता,
कई मानववंशो पशुत्वे व्हड्या, फूटी मानवीनी ढांकी पाशवता ।

इसके सिवाय कवि ने लोकगीतों की तर्ज पर अनेक गीत हरिदर्शन, वेणुविहार, म्हेरामणनां मोती, प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञाबिंदु, आदि में लिखे हैं ।

(२) रण गीतो -

१ रण गीत " प्रज्ञाचक्षुना प्रज्ञाबिंदु में है अनेक और दूसरे ३२ गीत राजसूत्रोनी काव्यत्रिपुटी में हैं । गीतों की सूची इस प्रकार है -

रणडंका, उठ ओ भरत गोत्र, जय क्षत्रिय तीर्थ चित्तोड, साचना सिपाई, वीरांगना, केसरभीना कन्थ हो, हिन्द रक्षक सेनाना सैनिक, ओ भारतनी माताओ, चलो, जगतनो पोकार, जयडंका, शकुननी घडीओ, रणवाजां, केसरियां वीर, शुभना शुकुन, कंकुओ, जय केसर चीर रणधीर रमे, कुन्ता सन्देश, धन्य सुदर्शन ज्योत, काळनी खंजरी, आर्यध्वज ।

रणगीतों :

ये गीत वीररस पूर्ण है । इनमें कवि ने ओज गुण का प्रभाव बतलाया है । कवि ने वीरता और शौर्य की भावनाओं को प्रस्फुटित करने के लिए सशक्त

शब्दों को सशक्त भाव और भाषा से व्यक्त किए हैं अर्थात् इन गीतों में भावानु-सारिणी भाषा है। भाषा में प्रांजलता और गत्यात्मकता भी लक्षित होती है।

भारत के नवयुवानों को युद्ध की प्रेरणा देनेवाले, जीवन में जागृति लानेवाले और पूर्ण आशावाद की प्रेरणा देनेवाले ये गीत है। इन गीतों में स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता की आभा और प्रभाव है।

इन गीतों में अलंकारों का ~~न~~ नहिंवत् उपयोग किया है क्योंकि वीरता और शौर्य का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए कवि ने शब्द, अर्थ और सशक्त भाषा पर ही पूर्ण रूप से अपना ध्यान केन्द्रित किया है। सोया हुआ और निराश मनुष्य भी जागृत होकर युद्ध के लिये चल पड़े यही कवि का आशय है।

ये गीत पूर्ण रूप से गीतात्मक है। जब ये गीत रणवाद्यों पर ताल लय से गाये जाते हैं तब लोग झूमने लगते हैं और बड़ी ललक से उनका सत्कार करते हैं। कवि " सुंदरम् " ने कहा है कि –

" न्हानालाले वीर रसनां घणां पासां ने स्पर्शतां
विविध शैलीमां मनोहर काव्यो लख्यां छे
" वीरनी विदाय " अने " कठियाणीनुं गीत " वगेरे "[1]

निष्कर्ष यह है कि वीर रस के उपयुक्त भाषा का प्रयोग कवि ने किया है।

हरिसंहिता भाग १-२-३ (अपूर्ण)

कवि न्हानालाल का यह अंतिम छंदोबद्ध काव्य ग्रन्थ है। कवि इसे पूरा नहीं कर सके। कवि ने इसे " विराट " काव्य कहा है। काव्य शास्त्र के

१ " सुन्दरम् " अर्वाचीन कविता – ~~न्हन~~ न्हानालाल, पृ० २८१

अर्थ में यह विराट काव्य नहीं अपितु विराट पुरुष कृष्ण की, विराट भारत यात्रा का विराट उद्देश्य - समाजसुधारक और नीति-प्रतिस्थापक रूप लेकर और विराट वैष्णवी भावना को अपनाकर कवि ने इसे विराट काव्य कहा है। इस " विराट " काव्य में कवि ने अनुष्टुप छंद का प्रयोग किया है। काव्य का दीर्घ मार्ग तय करने के लिये इस छंद की मौलिकता सहज सरल बन गई है ; साथ साथ भावनाएं भी उमड़ती है, जिसका वर्णन, पूर्ववर्ती अध्याय में /लक्ष्य किया गया है। श्री शिवशंकर जी ने लिखा है कि :

> " हरिसंहितामां कवि श्री न्हानालाले अनुष्टुपमां फूलमाळा गूंथी अने वंठमां धरावी, साथे साथे भजनो, स्तोत्रो, सूक्तो, गरबा, गरबी, रास, हींच अने प्रसंग गीतो - आ अर्ध्यनी अंजलिमां ए बधाने समावी देवा प्रयत्न कर्यो छे। "[1]

इसे " हरिसंहिता " में प्रधानतः श्री हरिके योगेश्वर स्वरूप का काव्य विस्तार है। इसमें भजन, गीत, धोळ, पुराने तर्ज आदि के कारण इसे छन्द वैविध्य प्रबन्ध काव्य माना जा सकता है। छन्दों की विविधता होते हुए भी प्रबन्ध प्रवाह में किसी भी प्रकार की क्षति नहीं आती है। इसमें अभिव्यक्ति पक्ष का ही वर्णन है।

इसमें आरोह अवरोह न होकर धीर, गंभीर, शांत और निश्छल प्रवाहमयी प्रांजल भाषा है। कवि के शुद्ध, सात्त्विक भाव भाषा के माध्यम से प्रस्फुटित होते हैं। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

(अ) होमता'ता हवि रूपे पडेलां वननां फळो ;
होमता निज हैयानी कामना-वांछना नहीं
फोरती'ती आर्यावर्ते सुगन्धो यज्ञ ज्योतनी,
प्रातःकाले यज्ञ थाय, सायंकाले कथा थती। भाग-१, प्रथम मंडळ

---

1 शिवशंकर प्राणशंकर शुक्ल, हरिसंहितानां पद्म अने पोयणां, पृ० ७

(ब) पृथ्वीमां परकम्मा हुं करीश सुगधर्म शी ,
लिंचीश धर्मनां नीर पृथ्वीनां पूडे पूडे । भाग-१, पृ० १७१

(क) भगवन् । काळ दृष्टा छो, युगना छो युगाधीश ;
आर्य छो, वेदवेत्ता छो, सिंह छो सिंह देशना । "
भाग-१, पृ० ११०

(ड) कर्म, ज्ञान, योग, भक्ति चारे ये मार्ग ब्रह्मना,
ने छ ये दर्शन शास्त्रो कहे छे ब्रह्मदर्शन
चारे योगो, छ ये शास्त्रो, मार्ग छे ब्रह्म तीर्थना "
भाग-१, पृ० २८

(प) पामजो पुण्यना योग पृथ्वीमां मनुवंश सौ
दुर्लभो मनुष्य देह, दुर्लभो पुण्य पन्थ छे ;
दुर्लभा प्रेमभक्ति ने दुर्लभो ब्रह्म योग छे ।
वाग्धारा वहती'ती ए विश्वे अमृतधार शी "
पृ० ३०१

उदाहरण के लिये उपरोक्त पांच नमूने प्रस्तुत किये हैं , ऐसी अनेकों पंक्तियां दृष्टव्य है ।

रसों का वर्णन भावपक्ष के अंतर्गत किया गया है । इस " विराट " काव्य में कवि ने अभिधा, लक्षणा और व्यंजना इन तीनों शक्तियों का उपयोग किया है । " अभिधा " शक्ति के उदाहरण :-

(अ) " एकदा गिरि शिखरे घटाळा वृक्ष घेर मां
म्होटा म्होटा महर्षिनी मळी'ती कपि मंडळी " - भाग-१, पृ० १९

(ब) " प्रातः मध्याह्न ने सन्ध्या छे महायोग दिन ना,
एवी त्रिकाळनी सन्ध्या छे ब्रह्मोपासना महत् " , पृ० ६९

ऐसी अनेकों पंक्तियां प्राप्त होती हैं ।

लक्षणा शक्ति के उदाहरण :

(अ) गम्य अगम्य ना भेदो जाणो छो, जग जोगी जी ।
नदीना नीर पेरे ना वहे सर निरन्तर ।

भाग-१, पृ० २६१

(ब) पीगळे ना, पळे ना, पथ्थरो नर निष्ठुरो,
सरिता ने तीरे तीरे, फूक्ता'तां म्हावनो
सरिता पुण्य सलिला पन्थीने पन्थ दाखती "

पृ० ३०२

ऐसी अनेकों लक्षणा शक्ति से युक्त पंक्तियां प्राप्त हैं ।

व्यंजना - पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

(अ) " हरिनी हरिणी । घूमजे घुम्पटे
म्हें तो हैयानुं मांड्युं मंदिर
आ ब्रह्मांड तो ब्रह्म धाम छे, म्हारा हैयामां कृष्ण कुटिर
त्हारे ब्रह्मणनी ओढणी, मारे पाल्वडे जगदाधार
त्हारे जनता छे पुत्रपुत्रीओ, म्हारे कृष्ण पिता परिवार "

ग्रन्थ, पृ० १२

(ब) " मृगजळना मोहनी मायामां लपटाइ ने
भ्रमणमां भमे मानव हरणां : सोहागियां ।
सरता आयुष्यना अंधारथी उद्धारशे ;
शोधनो हरिवरनां शरणां : सोहागियां "

ग्रन्थ, पृ० १५७

इस प्रकार इस " विराट " काव्य में तीनों शक्तियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

यह काव्य ग्रन्थ भक्ति भाव से पुरित होने के कारण इसमें ओज गुण का अभाव है लेकिन पूरे काव्य में " प्रसाद " गुण और माधुर्य गुण की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं ।

" प्रसाद-गुण " - पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

(१) " ब्राह्मण ज्ञाने दीपे रे । क्षत्रिय प्राक्रम थी प्रिछाय ;
वैश्य तो वहे वडो रे । शूद्रनो जन सेवा महिमाय ;
सन्त शीले सुहे रे । साधु संयम थी स्हम जाय ;
ऋषिवर ब्रह्मे भर्या रे । तापस तप पन्थक परखाय । "

ग्रन्थ-१, पृ० २७७

(२) " रत्नाकर रत्नोथी रेलातां रे ।
आभ तारले सुहाय ;
हरिवरनी आंखडीना अमृते
बीज झबकी झबकी जाय "

ग्रन्थ, ३, पृ० १२५

माधुर्य गुण :

कवि ने भक्ति भावना के अंतर्गत प्रेम माधुर्य का प्रभाव बतलाया है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:-

(१) पुण्यात्मा नो प्रेमयोग पन्थ छे ब्रह्मतीर्थनो ;
आजे देह धरी थे जे जोडे छे आत्म आत्म शुं,
काले ए परमात्मामां जोडशे, आत्मनी प्रभा,
दृष्टिओना दोर जेवुं, गूंथेली ज्योत ज्योत शुं । " भाग-१, पृ० २०२

(३) सौन्दर्य ए नथी माटी, सौंदर्य तो सुगंध छे
सौन्दर्य छे दर्श दिव्य, स्पर्श छे रूप-लालसा,
रूडी आयुष्य वाडीमां पराये प्रेम भक्तिना
रुक्मिणी ए-सुभद्रा ए कृष्ण ने पार्थ ने जीत्या "

भाग-१, पृ० २०३

इस प्रकार की अनेकों पंक्तियां प्राप्त होती हैं। सिर्फ नमूने के लिये दो प्रस्तुत की है।

भावार्थ यह है कि कवि का यह " विराट " काव्य प्रसाद और माधुर्य गुण युक्त है।

अलंकार :

काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए कवि ने शब्दालंकार और अर्थालंकार का काव्योचित प्रयोग किया है।

शब्दालंकार - अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति आदि।
अर्थालंकार - उपमा, रूपक, विरोधाभास, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा दृष्टान्त आदि।

सारांश यह है कि कवि की यह अंतिम काव्यकृति अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से एक सफल और कलापूर्ण सर्जन है, कु लेकिन खेद यह है कि कवि का यह कार्य अपूर्ण रहा और काव्य खंड छिन्न हो गया। कवि स्वतः डाकोर में रणछोडराय के सामने " हरिमंडळी " की कथा भी करते थे और भक्तिभाव से विभोर हो जाते थे।

(४) ओजस शैली तथा उसके काव्य :

इतिहास और शोध : कवि न्हानालाल के अंतर में महाकाव्य लिखने की भावना सन् १८९४ में प्रतिष्ठित हुई क्योंकि इस वर्ष में कवि ने बम्बई में

नर्मद कुटुंब के दर्शन किये और वीर नर्मद के प्रेम शौर्य के मंत्रोच्चार पर से कवि ने अपनी रचनाओं का नामकरण " प्रेम भक्ति " रखा । उस समय महाकाव्य लिखने की प्रेरणा जागृत हुई और उसे लिखने के लिए महाकाव्य के उपयुक्त महाछंद की शोध करनी पडी । वीर नर्मद की महाकाव्य की साहित्यिक सेवा अपूर्ण ही रही, न्हानालाल ने उसे पूरी की । कवि ने अपने शब्दों में कहा है कि -

" कविता दीक्षा पिता दलपते दीधी, महाकाव्य नी भावना
काका नर्मदे दीधी, इतिहास अखंड वहेणे वहे छे
दलपत पुत्रनुं ए नर्मदऋण "[1]

यह शोध कार्य करने के लिए कवि ने छंदशास्त्र के अनेक प्रयोग किये जैसे दलपत के मनहर और सवैया और नर्मद का रोला छंद आजमाया असंतोष ही रहा । अनुष्टुप छंद में कुछ रचनाएं की लेकिन रुचि कर प्रतीत नहीं हुई । इस प्रकार प्रयोग प्रयोग में ही चार वर्ष बिता दिये । कवि की काव्य-साधना अप्रतिम थी । एक चमत्कार पूर्ण भावना सन् १८९२ में फाल्गुन शुक्ल ११ को मार्च मास की ९ वीं तारीख को प्रेरणा की धारा प्रकट हुई और वही धारा डोलन शैली जैसे काव्य कला का सौरभ निःसृत फूल भांति । उस समय कवि की आयु २१ साल की थी । कवि के अपने शब्दों में -

" एकवीस वर्षना एक गुजराती जुवानडा ए २२०० वर्षना
थी पिंगलाचार्यना चक्रवर्तीत्वनी स्हामे बळवो कीधो "[2]

कवि न्हानालाल आंग्ल कवि मिल्टन और टेनिसन के Blank Verse से परिचित थे और इसी शैली का अनुकरण गुजराती में करना चाहते थे । अंग्रेजी Blank Verse के ~~समान~~ समकक्ष छन्द रचना ढूंढते ढूंढते डोलन शैली प्राप्त

oooooooooooooooo

१ न्हानालाल, कुरुक्षेत्र, अर्पण अने प्रस्तावना, पृ० ३५

२ वही, पृ० ३५

हुई। फिर इसी शैली में दो काव्य लिखे - " वसन्तोत्सव " और " इन्दुकुमार-अंक १ लग्न "। इस प्रकार पिंगलाचार्य के १२०० वर्ष के बाद गुजरात में डोलन शैली का जन्म हुआ।

कवि की यह डोलन शैली गुजराती में एक नवीन शैली थी लेकिन इस प्रकार की या इससे मिलती जुलती शैली पूरे विश्व में थी जिसकी प्रतीति कवि ने इस प्रकार दी है :

१- अमरिकन कवि वाल्ट व्हीटमेन की " Grass Leaves " और एडवर्ड कारपेन्टर की Towards Democracy पढी। ये पुस्तकें Free verse में लिखी हुई थी जिसे निर्बन्ध काव्य कहते हैं।

२- फ्रान्स साहित्य विकास की पुस्तक Romantic School के विषय में पढा और फ्रेन्च भाषा में पिंगल पर Vers Livre पढी। वह भी इसीसे मिलती जुलती थी।

३- करीम महंमद मास्तर के कलाम भाग्यि में पढा कि अरबी भाषा में मूल कुरान का महाग्रन्थ डोलन शैली में लिखा गया है।

४- ख्रुथर से पूर्व १२ वीं शताब्दि के मठवासी ख्रिस्ती साधु केम्पीरा के थामस के रचे हुए imitation of christ लेटिन ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद Rhythmic डोलन शैली में अनूदित था। इस प्रकार लेटिन में १२ वीं शती में " डोलन शैली " का प्रभाव था।

५- अंत में बाइबिल की higher criticism में पढा कि हिब्रू भाषा में पिंगल शास्त्र की छन्द नियमावलि नहीं है और मूल Hebrew Bible Parallelism शैली के समांतर शैली में लिखी गई है।

सारांश यह है कि गीता, उपनिषद संहिता में ये छन्द आर्ष छन्द कहे

जाते हैं जो पिंगल से मुक्त हैं। अंग्रेजी और अमरिकन उसे Free-Verse कहते हैं, फ्रेंच लोग पिंगल मुक्त शैली को Verse-Libre कहते हैं। कुराने शरीफ में की पंक्तियां "आयाते" बोली जाती हैं और गुजराती में उसे "डोलन-शैली" कहते हैं। इसे कई कवियों ने अपद्यागद्य भी कहा है। श्री रामनारायण पाठक ने इसे रागबद्ध गद्य माना है, उनके शब्दों में "कवि श्री न्हानालालना अपद्या गद्य ने हुं एक प्रकारनुं रागबद्ध (impassioned) गद्य गणुं छुं।"

डोलन शैली के तत्त्व :

इस शैली के सम्बन्ध में कवि ने ये तीन तत्त्व बतलाये हैं :-

१- डोलन शैली में कविता के पूर्ण अंगों के समास के साथ एक विशिष्ट तत्त्व रहता है उसका विस्तार करके वाक्य को स्वरूप में भावाप्रवाहित करना।

२- वस्तु, भाव और विचारों के प्रस्फुटन के लिए सिर्फ योग्य शब्दों का योग्य और भावग्राही संकलन। यह उसका विशिष्ट अंग है।

३- कवि ने पास शब्दभंडार अखूट होना चाहिए - शब्दों के अर्थ गांभीर्य की एकाग्रता न हो, यथोचित शब्द न हो तो त्रुटी रह जाय। जैसे किसी सकली में उसका एक छोटा हिस्सा भी खराब हो जाय तो वह सकली टूट जाती है उसी प्रकार एक भी निरर्थक शब्द हो तो काव्य रचना नीरस हो जाती है।[1]

डोलन शैली का पृथक्करण और उसके नियम :

इस शैली में काव्य पंक्तियों की लंबाई कम या अधिक होती है। वे वाक्यों के विराम के हिसाब से लिखी जाती है। सब से छोटी पंक्ति २ अक्षर की और सब से बडी पंक्ति २१ अक्षर की होती हैं। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

---

१ कवि न्हानालाल के गुजराती वाक्यों का अनुवाद
विजयराय कल्याणराय वैद्य - डोलन शैली विषे कवि पोते, पृ० १७

" मागु ? आपीश ? भामी ।
अन्तर उघाडवामां छाम पण
दुनियामां दोड्यलां छे हवे
पति, प्रमदा । पति :
नहि अूरो, नहि समोवडो
पण प्राणेश्वर, जीवन नियन्ता ;
जेना आदेश गम ऊंचु जोई
नेन ढाळी प्रणिपतो करुं "

(इन्दु कुमार " अंक-१, प्रवेश, १, पृ० २१)

डोलन शैली का पृथक्करण करके रा० वि० पाठक ने कुछ नियमों की रूपरेखा बनाई हैं वह इस प्रकार हैं :-

(१) इस शैली में यदि एक ही वाक्य दो पंक्तियों में लिखा हुआ हो तो वे दो पंक्तियों की अक्षर संख्या में अधिक अंतर नहीं रहता । उदाहरण -

" जीव आपो तो जाणे म्हारो
जपे छे " कुटुम्ब " " कुटुम्ब "
इन्दुकुमार अंक-१, पृ० १०५

(२) इस शैली में एक वाक्य तीन पंक्तियों में लिखा हुआ हो तो भी तीनों विभाग के अक्षरों की संख्या में अधिक अंतर नहीं रहता । उदाहरण -

" आम न जाव कहुं
त्होय पगलां वळे छे
ए दिल दासनी दिशामां "

(इन्दुकुमार " अंक-१, पृ० १०६)

(३) शुद्ध व्याकरण की रचना में गद्य में प्रथम कर्ता और बाद में विधेय होता है

इस अपद्यागद्य में इस क्रम का परिवर्तन होता है। उदाहरण -

" नथी छोडी हजी ओ मन्मथ।
पृथ्वीनी कुमारी स्हेमना प्राणने। "
(जया-जयंत, अं-१, प्र० ४, पृ० ३९)

(४) अपद्यागद्य में वाक्य का संतुलन रहता है। उदाहरण -

" रमणी ऊंचे जोयुं
पछी सुभगाने मुखडे
नयन पाथ्युं "
(वसन्तोत्सव, पृ० २९)

(५) कहीं कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक पंक्ति में दो स्थानों पर अर्धभार आता है। उदाहरण -

" नमणुं नयन स्वर्गे जुवे
ने डावुं नयन नरक तमिस्त्रा "
("इन्दुकुमार " अंक-१, प्रवेश ६, पृ० १०६)

लेकिन कई बार पंक्ति में चार अर्धभार भी आते हैं। इसलिये इसमें कोई नियम नहीं बनाया जा सकता।[१]

डोलन शैली की सामान्य विशेषताएं :

डोलन शैली यह शब्द और अर्थ का प्रभाव बतलाती और अमुक प्रकार की भावना विशेष का प्राबल्य बतलाती एक हार्दिक वाणीमय भावना है। इसमें शैली विशेष का प्रभाव नहीं अपितु कवि विशेष की प्रतिभा का प्रभाव रहता है।

१ डा० ईश्वरलाल दवे, कवि न्हानालालना भावप्रधान नाटको, पृ० ३५५-३५६-३५७

इसमें कवि की लाक्षणिक और मनोहर वाक्छटा रहती है ।

इस शैली में कवि ने अपने उत्तम काव्यों में विश्व की विराट प्रकृति, मानव संस्कृति की परंपरा और मानवहृदय के जीवित भावों ये तीनों का एक-दूसरे से संबंधित, प्रभावित और प्रवाहित, उनमें से सौंदर्य तत्त्व और भावनातत्त्व प्राप्त करके पूर्ण साहित्यिक काव्य कृतियां निर्माण की हैं ।

इस शैली में रचित काव्यों में कवि की प्रतिभाशाली भाषाशक्ति, अलंकारों की सारग्राही योजना, और भावनाशील उद्गारों का चित्रात्मक वर्णन है ।

डोलन शैली के प्रयोग के पीछे उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि वह अपनी भव्य सुंदर कल्पना वैभव को यथार्थ रूप से ग्राह्य कर सके वैसा समर्थ स्वतंत्रवाही महाछंद की आवश्यकता थी और कवि को डोलन शैली में यह महाछन्द प्राप्त हुआ । इस शैली के अंतर्गत काव्य रचना में –

ओज और अर्थयुक्त पदावलि, ध्वनि, रीति, कल्पना का प्राचुर्य, अलंकार समृद्धि, भावनाओं की तीव्रता, और जीवन की समीक्षा ये सभी तत्त्व मिलते हैं । इस शैली में स्वतंत्रवाही उच्च भाव कक्षा प्रवाहित रहती है । यह भव्य विषय के लिए उदात्त वाहन है । शृंगार या करुण रस की धीरोदात्त धारा प्रवाहित करने में इस शैली को पूर्ण सफलता मिली है ।

इतना गांभीर्य, इतनी भव्यता, इतनी भावप्रवाहिता और इतना प्रभावशाली वर्णन गुजराती साहित्य प्रदेश में इस शैली के सिवाय कहीं भी नहीं मिलता ।[1]

डोलन शैली की प्रतीति के लिए निम्नलिखित अवतरण द्रष्टव्य हैं :–

" वस्तु को जानने के लिये सिर्फ शुष्क व्याकरण ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है ।

---

१ कवि श्री न्हानालाल, स्मारक ग्रंथ, पृ० ११९–२०० अनूदित ।

भावनाओं का गतिशील प्रवाह, और मोड, अनेक प्रकार की भावनाओं का सप्तरंगी चित्रण तीव्र कल्पनाओं का प्रभाव, अलंकारों के प्राबल्य से निर्मित काव्यशोभा, काव्य में भावोत्मकता और चित्रात्मकता इन सब के साथ शब्दों का नाद और वैभव का सामंजस्य गतिशील और प्रांजल उच्चार के आरोह, अवरोह, नियमित वाक्यभार व्यक्त करने की भावपूर्ण शोभा इन सब इकट्ठे तत्त्वों से डोलन शैली के डोलन की प्रतीति होती है। "[1]

इससे संबंधित गुजराती में पंक्तियां उल्लेखनीय हैं।

" कविनो आत्मा गातो नथी पण गुंजे छे " एम कहेवामां पोतानी डोलन शैली ए तालबद्ध, लयबद्ध, रागरागिणीनुं संगीत नथी पण ए सबळानुं गुंजनात्मक पूर्वरूप छे। तबलां के ताल आपनार वाजिंत्रोनी अंहीं जरूर पडती नथी, केवल मीठा मधुरा संवादी सूरोनुं मुक्त फरफरतुं वातावरण उभुं करवानो अहीं प्रयास छे। "[2]

काव्य में लय, ताल, गति से भी विशेष गुंजन ध्वनन, सूर और संगीत मुख्य हैं। कवि ने " इन्दुकुमार " अंक १ प्रस्तावना में लिखा है कि -

" गेयता कविताने आवश्यक नथी
पण वाणीनां अर्थमां डोलन होवुं जोईये
ए डोलन अणलख्युं पण होय "[3]

कवि न्हानालाल की डोलन शैली के अंतर्गत रचनाएं :

(१) राज सुत्रोनी काव्य त्रिपुटि - काव्य राज युवराजने -

(२) वसंतोत्सव - संपूर्ण

---

१ कवि न्हानालाल स्मारक ग्रंथ, पृ० २०९ प्रा० जयंत शा० जोषी अनुदित

२ प्रा० जयंत शा० जोषी, अनुदित, पृ० ३१३

३ न्हानालाल, इन्दुकुमार अंक-१, प्रस्तावना

(३) केटलाक कीव्यो भाग-१ प्राणेश्वरी, एक व्यर्थ याचना
भाग-२ सौभाग्यवती, नव्यौवना, राजयुवराज
नै सत्कार, राजवीर, गिरनारने चरणे
भाग-३ संपूर्ण -म्हारो जन्म, पारेवडां, संस्कृतिनुं
पुष्प

(४) चित्रदर्शनो - श्रावणीमास, ब्रह्म दीक्षा, गुरुदेव, सौराष्ट्रनो
साधु, गुजरातनो तपस्वी ।

(५) ओज अने अगर
(६) कुरुक्षेत्र संपूर्ण कांड १ से १२
(७) द्वारिका प्रलय
(८) हरिसंहिता ना उपनिषदो

नाटक
००००

(१) इन्दु कुमार १-२-३
(२) जया जयन्त
(३) विश्व गीता
(४) संघ मित्रा
(५) जहांगीर - नूर जहांन
(६) प्रेमकुंज
(७) राजर्षि भरत
(८) श्री हर्षदेव

उपर्युक्त काव्यों का भाव परक और रसदृष्टि से वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया गया है । इस अध्याय में कवि की काव्य कला से संबंधित अनुशीलन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

साहित्य यह शब्द की कला है, शब्द, अर्थ को प्रकट करते हैं। गद्यलेखन की अपेक्षा पद्यलेखन में शब्दों का और अर्थों का चमत्कार विशेष स्थान रखता है। अर्थपूर्ण शब्दों से ही वाक्य रचना होती है और भाषा में शब्द वाक्य ये सब होते ही हैं। अर्थात् शब्द अर्थवाली भाषा काव्योपयोगी मानी जाती है।

" न्हानालाल के काव्य शब्द, अर्थ और भावनाएं सौंदर्य और इसके नवीन सामंजस्य और प्रभाव से सौरभान्वित है। उनके काव्यों में प्राचीन और अर्वाचीन काव्यकला का अभिनव सामंजस्य प्रतीत होता है। "[1]

न्हानालाल के मानस को, अमुक कलास्वरूप अभिव्यक्ति की एक ही शैली (डोलन शैली), अधिकतर पच गई है। कवि के शब्दों में -

" नरी सरलता कोण पूजशे ? "

ऐसा ही एक सत्य प्रश्न पूछकर जैसे उसे पूछने की आवश्यकता नहीं है ऐसा बतलाती उनकी कविता सदैव और सर्वत्र यथाशक्ति मति अलंकार प्रवृत्ति की आराधना में विशेष प्रवृत्त रही है। उनकी कृतियों में अलंकार की साधना यह रस की साधना का पर्याय बन गई है इस प्रकार उनकी पूरी काव्य प्रवृत्ति प्रधानरूप से मध्यकालीन जयदेव या व्रजभाषा के कवियों जैसी गहन रही है। उन पर उनके पिता दलपत की काव्यशक्ति की अमिट छाप पडी है वे अपने आपको " न्होनेला दलपतराम " कहते थे।

अर्वाचीन कविता की आंतर और बाह्य उभयविध समृद्धि ने न्हानालाल में बडी प्रचुरता से उत्कर्ष साधा है। और इस उत्कर्ष में न्हानालाल की भाषा के शब्द, वर्ण और भावना के सौंदर्य-तत्त्व की सूक्ष्म और सहजिक संवेदक

ooooooooooooooooo

१ सुंदरम्, अर्वाचीन कविता, पृ० २६२, २६५, २६६, अनूदित।

शक्तियों ने बड़ा गहरा हाथ बंटाया है ।

प्राचीन संस्कृत कविता और विदेशी अंग्रेजी कविता और अर्वाचीन गुजराती कविता इन तीनों के साथ न्हानालाल ने मध्यकालीन जीवन की, भाषा की और कविता की और रंगदर्शिता की छटा मिलाकर गुजराती भाषा में एक नई सौरभ अर्थ छटा प्रकट की यही न्हानालाल की कविता का महान गौरव है ।

कवि की प्रभावशाली वाणी और लेखन कला के विषय में श्री अनंतराय रावल ने कहा है कि –

" न्हानालाल कवि हता, साचा कवि हता, एमनी प्रतिभा ऊर्मिगीतोना कविनी, तेटली महाकाव्यना कविनी नहीं छतां ते महा (मोटा, समर्थ) कवि हता । जादुई वाणी माधुर्य, उत्कट कल्पनाचक्र, ललित तेम मध्यनुं एक सरखुं सफळ कथन, भावनाप्रकर्ष, प्रकाश दायित्व, विनयी रससिद्धि, अल्पता, ऊर्मि समरता, ध्वनिपरिमल, संगीत वगेरे कविश्रीनी नव चैतन्य सभर रोमेन्टिक कविताना विशिष्ट गुणलक्षणो साथे शब्दमोह, अमूर्तता अने अवेशच नेवी केटलीक मर्यादाओनो वांचकोने ए साक्षात्कार करावशे । "[1]

न्हानालाल की भाषा समृद्ध त्रिविध है :-

उनकी भाषा में शब्द, अर्थ, भावना का, चमत्कारपूर्ण रूप से मिलता है । शब्दों का परम सौष्ठव है, औचित्य है और महत्त्वपूर्ण अर्थ है । शब्द अर्थ भावना के साथ साथ रस की समर्थ द्योतकता यत्र तत्र लक्षित होती है यथा –

कंई वधारे विशाळ-उदार, कंई सविशेष सम्भाव शीळो,
मृदुदना उर आर्जव सरिखो, हितरवी, सात्त्विक, साधुता शो
कंई ख्रिस्तीनो गायत्री मंत्र आप्यो छे । "[2]

---

1 बालचंद्र परीख, रसगन्धा, आनंद संविभाग, पृ० २४
2 राजपूतोनी काव्य त्रिपुटि, पृ० २४

" औषधीओ तो आयुष्यने संकोरे,
होल्वायेल अग्निने सजीवन करती नथी " [१]

" माध्याक्षरो सर्मा अण उकली
तरंगोनी हती जललिपि " [२]

" पार्थ । पुण्यनां जहाज भरती हो ।
साकळ वास्या विना सूवे ते सन्त
उरना आगळिया उघाडे ते साधु
संसार एटले सागर शैया " [३]

" जेवुं सुदर्शन सोहे, जेवुं गांडीव गाजतुं,
वेण छे कंईक माहरां एवां काळना कटका समां " [४]

" प्रेमात्माओना हृदयगीत शा,
बेय मोरलीओना सुरसंवाद,
एक पंखीनी बे पांख शा,
भिन्न भिन्न छतां अभिन्न उडवा लाग्या " [५]

" पण स्वर्गी स्वार्थीला सन्तो साथ ;
पुण्यशाळीने पर होय पहेलां " [६]

" ए मानव सळेकडुं छे शुं ?
सळेकडाथी ये रेखा पातळुं
ए किरण छे महासूर्यनुं
अडग ने अव्यय
अखंड ने अप्रमेय " [७]

१ ओज अने अगर, पृ० ७२ (३) द्वारका प्रलय, पृ० ३८
२ कुरुक्षेत्र, शरशय्या, पृ० २७ (४) हरिसंहिता, भा०१, पृ० १७९
५ वसन्तोत्सव, पृ० ५५,५६ (६) केटलांक काव्यो, पारेवडां, पृ० ६५
७ चित्र दर्शनो, गुजरातनो तपस्वी

" संसार शास्त्रीओ स्नेहलग्न ने नहीं सत्कारे
तो फालशे बोटी लग्नवेलो
ने परागविहोणा फूलनामी फूल जेवां
जन्मशे चेतन नष्ट बाळकनामी बाळको "[1]

इसी प्रकार आनंद शंकर के शब्दों में –

" तेले घडेलां शब्दो अने भावे भरेला वाक्यो "

पूरी काव्यकृतिओं में भरे पडे हैं। कहीं भी देखे किसी भी काव्य में देखें ऐसे प्रभावशाली और प्रांजल वाक्य मिलेंगे।

कवि ने शब्दों साथ भी थपथपाने का और लाड-प्यार का व्यवहार कर अधिक मधुर शब्द बना दिये हैं, जैसे –

कोयल	–	कोयलडी	रात	–	रातलडी
छाती	–	छातलडी	वीजळी	–	वीजळडी
वात	–	वातलडी	कांठा	–	कांठडलो
रुपाळी रात	–	रुपला रातलडी	सखी	–	सखिरी

आदि अनेकों प्रयोग किये हैं।

कहीं कहीं कवि ने ध्वन्यात्मकता के कारण शब्दों के रूप बदले हैं, यथा –

स्तन पर से स्तन प्रदेश किया है इसी प्रकार
मानव – मानवदेश
वसंत – वसंतदेवी
वीर – वीरी
द्रुम – द्रुम पराग

1 इन्दुकुमार, अंक-1, प्रवेश, 4, पृ० 71

दिश् (दिशा) – दिक् प्रान्त आदि

इस प्रकार रूप परिवर्तन से कवि के काव्य गुण में ध्वन्यात्मकता का प्रभाव लक्षित होता है।

कवि के काव्यों में वर्ण सौंदर्य की छटा है, कृति विशेष का मौलिक वातावरण है। ऐसे ही वातावरण में काव्य कृति का अद्भुत निखार आता है। काव्य सौंदर्य की छटा की दिव्यता बढ़ाने के लिए कवि ने लाक्षणिकता ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, चित्रोपमता और उपचारवक्रता का यत्र तत्र उपयोग किया है इन्हीं तत्त्वों के परिधान से काव्य सौंदर्य निखर उठा है। इतना ही नहीं दिव्य और स्तुत्य भी बन गया है। कवि की अर्थ-रचना का अद्भुत सौंदर्य है। रस और सौंदर्य के प्रमुख तत्त्वों का उपयोग करके वाणी में कल्पना विहार की बाढ़ भी मौलिकता से निःसृत हुई है। काव्य का रूप बड़ा गहन और मधुर बन गया है।

कवि अपनी अपनी इसी मनोरम शैली और सशक्त अभिव्यक्ति के माध्यम से प्राकृतिक सौंदर्य का प्रभाव व्यक्त करता है –

" महा नौबना महिमा वती
दूरथी एक वादळी आवी
पृष्ठि उपर पालव पाथरती – स्केलती
तेज छायानी रमत रमती-रमती
यौवनाने वदने अडकी गई " [1]

प्राकृतिक सौंदर्य से रसभर ऐसे अनेकों गीत कवि के काव्यों में लक्षित होते हैं। विशाल कल्पना के माध्यम से वस्तु को निरूपण करने की कवि की अप्रतिम विशेषता थी यथा–

" प्रारब्ध ने पुरुषार्थनी बे पांखे,
संसारना योधराज उडशे

1 चित्रदर्शनो, नव यौवना, पृ० २६

त्यहारे संसार सम्तोल थशे
संसार एटले सच्चिदानंदनी लीला " [1]

कवि की काव्य कला में भव्यता, दिव्यता और अद्भुतता लक्षित होती है। कवि की काव्य कृतियाँ भावनाप्रधान होने के कारण अभिव्यक्ति भी बडी कलापूर्ण और दिव्य है। कवि सुंदरम् ने लिखा है कि,

" ऊर्मि प्राधान्य होय तो वर्णन प्रभावशाली
ऊर्मि गौण होय तो वर्णन सूकुं " [2]

" द्वारका प्रलय " में वर्णन शक्ति का प्राबल्य है। इसमें भावों की गौणता है। द्वारिका को डुबोने के लिये सागर का वर्णन - वर्णनात्मक, इतिवृतात्मक और भावनाशून्य है।

श्री हर्षदराय देसाई के शब्दों में " द्वारका प्रलय की प्रशस्ति -

" कला, कल्पना अने अर्थगांभीर्य भरी उदात्त भावना ने तेजे मढ्यां शब्दो थी कविश्री ए एक भव्य पण करुण काव्य देह आप्यो छे अने एमां यथाप्रसंगे गुंथायलां काव्योमां सूकल्ट स्फुट थती प्राणभूत व्यंजना अने संवेदनमां एमनी ऊर्मिनी सचोटता, सुकुमारता, स्वाभाविकता और रंग पूरे छे अने सहज जोआई जवाय छे " -

" नवुं आत्मा ढाळी, नग्न छळती देह नमणो " [3]

न्हानालाल ने काव्य-भाषा को शब्दलालित्य और भाव-माधुर्य का सुभग संयोग साधकर अलौकिक रस दीप्ति से उसे विभूषित की है यथा -

ooooooooooooooo

१ कुरुक्षेत्र, शरशय्या, पृ० ४७
२ अर्वाचीन कविता, सुन्दरम्
३ न्हानालाल स्मारक ग्रंथ, पृ० १७४

" निराशा नीतरती आशाथी
केटलांक अन्तर्आत्माने सान्त्वन छाटँ छे ;
एम घडीक घडीक मझवता आत्माने
अगर आश्वासन छांटती " [1]

" स्त्री हैयाना धावणे उछरेलो पुरुष
स्त्री स्वतंत्र नथी कदी
बाळपणे माता पोषे छे
यौवनमां पत्नी प्रेरे छे
वृद्धत्वे पुत्री पाळे छे
सुन्दरीना हैया आधार विहोणो
क्षणे के पुरुष स्त्री स्वतंत्र नथी " [2]

कवि की वर्णन शक्ति में अजब सामर्थ्य म और विभूतिदर्शन है, यथा-

" कुन्दनने अग्निनो ज्वाला तावे छे,
पुण्यप्रफुल्ल पुराण सम्पथी
आत्मकुन्दन पण अग्निदेव परीक्षे छे
वीरा । विराजो अग्निराज्ना उछंगे " [3]

" एवो संसारी साधु छे
गृहस्थ थई सन्यास पाळे छे,
निरन्तर दुःख ने न्होतरतो,
एशियामां एक महा योगीन्द्र हतुंनो
ए अनुज छे न्हानकडो " [4]

ꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏꝏ

१ ओज अने अगर, पृ० २१ (२) इन्दुकुमार अंक, ३, पृ० १४७

३ चित्रदर्शनो, ब्रह्मदीक्षा, पृ० ७६ (४) चित्रदर्शनो, गुजरातनो तपस्वी

इसी प्रकार की अनेक कलापूर्ण पंक्तियां यत्र तत्र दृष्टव्य हैं ।

कवि के काव्य कला में उत्तुंग कल्पनाशक्ति, समर्थ सर्जक प्रतिभा और मौलिक व्यक्तित्त्व है । कवि की अंतरतम संवेदनाएं उनके उद्‌गारों के द्‌वारा ग्राह्य करके काव्य में प्रभावित और प्रवाहित की है । काव्यों में यत्र तत्र लाक्षणिक भाव और भावनाओं की तीव्रता लक्षित होती हैं । कवि की काव्य-कला में आनंदमय रस तत्त्व का प्रभाव है । कहीं कहीं संस्कृत भाषा के शब्दों का मौलिक उपयोग किया है और काव्य में विरल चमत्कृति लाई है । इससे कवि की भाषा प्रतिभा संपन्न बन गई है । कवि की वाणी में अनुपम आलेखन कला और अविचल आदर्श निष्ठा है ।

" न्हानालाल का नैसर्गिक कल्पना सामर्थ्य उनके अंतर में प्रभावित भाव और तीव्र भावनाओं का चित्रसृष्टि में प्रत्यक्ष आकार देता है । व्यंजना की चमत्कृति, यह भावोर्मि की सूक्ष्म-गहनता को प्रज्ज्वलित करके एक विशाल पट्टिये पर कवि की काव्य कला इकट्ठी करती है और कवि की अर्जस्वित मेधा और प्रेरणा की विधायक शक्ति के माध्यम से उनकी मानस सृष्टि में मूर्त स्वरूप प्राप्त किये भावों का शब्द की परम सृष्टि में जीवंत सर्जन रूप से अवतरित होते हैं । इस प्रकार रस और भावनाओं का परिपूर्ण संयोग साध कर ये प्रतिभा और भावना के फूल मधुर भावपूर्ण डोलन से समर्थ बनते है और अनन्त की ध्वनि से गूंजती वाणी में प्रेरणा और कलात्मकता के दिव्य संयोजन द्‌वारा सौष्ठव पूर्ण आकार प्राप्त करते हैं, तब आत्मलक्षी अनुभव के निचोड को जीवन की रंगदर्शी भिन्नताओं और प्रभाव से छलकते हुए न्हानालाल के अद्‌भुत भावनाओं के (ऊर्मि) काव्य हमें प्राप्त होते हैं । " [१]

न्हानालाल के काव्यों में विलक्षण प्रतीकों की योजना है । अनेक प्रकार की भावपूर्ण ध्वनियां हैं और चित्रात्मकता है । यथा -

१ बालचन्द्र परीख, रसद्रष्टा कविवर, पृ० १८ (अनूदित)

लाक्षणिकता :

इस शैली के अंतर्गत कवि ने अपनी काव्य कृतिओं में ऐसे ऐसे अनेक शब्दों के प्रयोग किये हैं । जो अपने वाच्यार्थ से भिन्न किसी न किसी लक्ष्यार्थ के द्योतक है जिससे काव्य में रमणीयता और चमत्कार का प्रभाव लक्षित होता है । यथा –

" फूलनी छाव ढोळाय
ने दिश दिशमां परिमळ प्रसरे,
एवा शान्त परिमलना धूप पमरावीने
ए ब्रह्मकुमारीना देहनी फूल छाव,
क्षितिज पाळे ढोळाई गई " [1]

" उदार लोचन, प्रसन्न वदन, शील शीतल,
चन्द्रिका विस्तरती पूर्णिमा जेवी
उरदेहनी वसन्त विस्तरती,
स्वामी व्रत शी अविचळ
उम्मरनी स्फाटिक शिलाने पाटे
सौभाग्यवती उभी हती " [2]

कवि के काव्यों में ऐसी अनेकों लाक्षणिक पंक्तियां प्राप्त होती हैं ।

ध्वन्यात्मकता :

इस काव्य के माध्यम से कवि ने अपने काव्यों में व्यंजना शक्ति के

१ केटलाक काव्यो, भाग-१, ब्रह्मजन्म, पृ० ४८
२ चित्रदर्शनो, सौभाग्यवती, पृ० २०

सहारे अद्भुत भावाभिव्यंजना एवं सांकेतिकता की सृष्टि की है । यथा –

" कुंकुम ने कनकना ए विरोध,
कुंकुम शोधतां लोक कनकमां का मोहे ? " [१]

" देह नथी परि तर्पायो,
प्राण परितर्पायो छे त्हमारो
परितृप्त आत्मा प्रसन्न-पंखा को होय
संसार वेदीए प्रेम देव ने पधरावी
भाव प्रेम प्रभुना अग्निहोत्री " [२]

" परमार्थनी प्रेरणा शी को वांछना
शुभना आदेश सभी को आशा,
पूर्णिमानी चंदनी जेवी को प्रारब्ध चंदनी
एमनी हैया कुंजो भरीने पधराई रही " [३]

कवि की काव्य-कृतिओं में ध्वन्यात्मकता का पाराबार लहराता है ।

प्रतीकात्मकता :

भाषा को सरस, सुंदर और मधुर बनाने के लिये कवि ने यत्र तत्र प्रतीकों का उपयोग किया है । यथा –

" जगत कुंजे अमोल बोलती
कोकिल के कवितानी
बंसी एक्ज नथी हो
देव वाणी शी मीठडी
अमारां हैयानी वेणु छे "[४]

---

१ इन्दुकुमार, अंक्त , पृ० १२८ (२) इन्दुकुमार, अंक १, पृ० १४२
३ ओज अने अगर, पृ० २२ (४) वसन्तोत्सव, पृ० ६०

" अभ्यासना खाली कुंभमां
हुंफा जीवननो उभरातो अनुभव
नीतारी नीतारी भर्या हतो
जड़देहे अद्रुकजी जणाता
पण चेतन देहे विराट रूप विलसता "[1]

कवि की काव्य कृतियों में ऐसे अनेकों प्रतीकात्मक वर्णन मिलते हैं जिससे माधुर्य भाव की भावनाएं जागृत होती है।

चित्रोपमता :

कवि ने यत्र तत्र ऐसी पंक्तियां लिखी हैं जिससे भाव, विचार या दृश्य का चित्र अंकित होता है। यथा -

" वन छे वनराजनां, जगत छे जयवन्तानुं,
भीलीने नहि, वैश्य विश्ष्ट थी नहि,
जीतीने जगतने भोगव्यो " [2]

" आकाशमांथी वादळ उतरे,
ने जगतभरी पडछायो पडे,
त्हाय उन्नत शिखर तेजस्वी रहे,
एवो जगत् छायाथी पर महौजस्
ते राजवीर विराजता हता " [3]

" झरूखा झूलता अटारीओ अजवाळती
ध्वज आह्वरता क द्वार सत्कारता
आंगणे हता वे पारिजातको,
फूल वाडीमां फोरताता देव वृक्षो,
पल्लवोमां कल्लोलतां तां देवपंखीओ "[4]

1 चित्रदर्शनो, गुरुदेव, पृ० ८०
(2) कुरुक्षेत्र, द्वितीय काण्ड, पृ० ३७
3 चित्रदर्शनो, राजवीर, पृ० २५
(4) द्वारिका प्रलय, निर्माण, पृ०२५

ऐसे अनेकों चित्रोपम वर्णन कवि के काव्यों में भरे पड़े हैं ।

उपचारवक्रता :

इस भाषा-कला के माध्यम से जड में चेतन का आरोप किया जाता है । ऐसे अनेकों उदाहरण कवि के काव्यों में मिलते हैं :-

" एक दिवस रजनी राणीना ललाटे,
पूर्णिमानो चन्द्र राजतो म्हैं जोयो छे ।
कुमारी तो अमासनी रजनी ;
एकलीने अन्धकारने वगडे " [1]

" हैयामां हलाहल एक ; मुखडे मधुदान बीजां,
ने कर्मे कार्पण्यता बीजी ;
असुर त्रयीनी एवी मनुवंशी उपासना आदरी छे आज " [2]

इस प्रकार कवि की विशाल काव्यकला, काव्य सर्जन के समस्त विस्तार को अपने में समा लेती है ।

कवि की कविता में सौंदर्यग्राही प्रवृत्ति और उसके अनुरूप भाषा की मौलिकता और भव्य भावों का सशक्त चित्रण एवं वाणी की ओजस्विता ये उनकी मुख्य विशेषताएं हैं ।

सारांश यह है कि कवि की कविता की वाणी तेजस्वी, ओजस्वी, प्रपात की तरह गतिशील, क्वचित धुंधली और इन्द्र धनुष की तरह रंगीनी और चित्ताकर्षक बनी है । कवि का रचना ~~कौशल~~ कौशल्य शब्द शब्द में नया उन्मेष

---

१ वसंतोत्सव, पृ० ५१

२ ओज अने अगर, पृ० ७२

दिखाता है । कवि की काव्य प्रतिभा नवप्रेरणा के प्रभाव से प्रवाहित और प्रभावित है । कवि की सर्जक प्रतिभा विरल-काव्य सृष्टि की परिचायक है ।

तदुपरांत कवि की कृति कृति में और पन्ने पन्ने पर ओठों पर याद रहे और हृदय में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करे ऐसी अमर पंक्तियां कवि की महानता की द्योतक हैं ।

कवि ने अपनी काव्य कृतिओं में भावों के अनुरूप कल्पना की परंपरा का सामंजस्य करके उसे हृदयग्राही बनाई है । इस विशिष्टता के कारण कवि की कविता में अलौकिकता, प्रगल्भता और नये रूप आकारों की सृष्टि लक्षित होती है। कवि के काव्यों में भावों की सघनता के साथ साथ विलक्षण अभिव्यक्ति की शक्ति भी है । अभिव्यक्ति भी अनेक सशक्त और भावपूर्ण शब्दों और मुहावरों से की है जो सामाजिकों का साधारणीकरण करती है ।

संक्षेप में कल्पना का प्राबल्य, संगीतात्मकता, अभिनेयता, भावों की तीव्रता, चित्रात्मकता और प्रतीकात्मकता ये महत्त्व के लक्षण हैं । "[1]

काव्य कला की विशिष्टता के बारे में " श्री सुंदरम् " ने लिखा है कि : (उन्हीं के शब्दों में)

" न्हानालालमां शब्द पोतेज पोताना वर्ण सौन्दर्यनी छटाथी, पोताना विशिष्ट वातावरणथी, अने लाक्षणिक अर्थ व्यंजकता थी वाक्शक्तिना एक स्वयंपूर्ण चमत्कारयुक्त आविर्भाव जेवो बनीने आवे छे । गुजराती भाषानी लोकबोलीओथी मांडी शिष्टतम शैली सुधीमां वाग्व्यापारमां रस अने सौंदर्यना जे जे घटक तत्त्वो छे ते सौने पोतानामां अपनावीने अने पोतानी एक नवीन छटा तेमां उमेरीने, न्हानालालनी वाणी, तेनी पाछळ विशाल फलकमां विहरती कल्पना साथे योग साधीने एक

---

1 रमण कोठारी, न्हानालालनो काव्य प्रपात, पृ० ४० अनूदित

तरल अग्राह्य अने अपृथक्करणीय एवा सौंदर्यथी छलकतुं गहन अने मधुर रूप
ले छे तेमना काव्यमां प्रकट थती भावनाओनो पट अने पुट पण आवाज
विस्तृत गहन अने मधुर रूपवाळो छे " [1]

इस प्रकार कवि की प्रतिभाशाली भाषा शक्ति का वर्णन विस्तार से किया है । इस भाषा शक्ति के वर्णन के अंतर्गत भावनाशील उद्‌गारों का चित्रात्मक वर्णन भी प्राप्त होता है । कवि ने अलंकारों की सारग्राही योजना को पूर्ण रूप से अपनाकर काव्य-सौंदर्य का उत्कर्ष साधा है ।

" कहीं कहीं रस की अति तीव्रता और गहनता के कारण शब्द
अर्थ की भावना दब भी गई है । कवि अपनी बहिरंग शैली से
(डोलन शैली के प्रभाव से) आंतरिक दारीद्र्य को दबा नहीं
सके । " [2]

अलंकार योजना :

डोलन शैली की विशेषता है अलंकारों की सारग्राही योजना । कवि न्हानालाल ने काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए शब्दालंकार और अर्थालंकार का यथावश्यक उपयोग किया है ।

शब्दालंकार - अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष और चित्र । इस प्रकार के अलंकार के अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं, यथा -

(१) अनुप्रास पंक्तियाँ

" सागरनी सफरनो तो सुखाथम हतो "

(राज युवराजने, पृ० २१)

अम्मर छे अम्मरोना आशीर्वाद " (कें०का० पारेवडां, पृ० ७२)

१ " सुन्दरम्," अर्वाचीन कविता, न्हानालाल, पृ० २६७

२ वही, पृ० २६८, अनूदित

(२) यमक :

" मुक्ता माताओ मोतीना गर्भ धरशे "

(ओज अने अगर, पृ० १२८)

(३) वक्रोक्ति :

" मायानी माटीना एना पिंडने
देवत्वभीनी करुणाथी वधाव्यो "

(कें०का०, १, पृ० ४६)

(४) श्लेष :

" जळ पांखडीओ उपर पलांठीवाळी
आथमतो चन्द्र देव
कान मांडी बेठो "

(कुरुक्षेत्र, युगपलटो, पृ० १५)

(५) चित्र : यथा –

" दिननाथ भगवान सूर्य नारायण,
निशानाथ अमी दानेश्वरी चन्द्रदेव,
पूर्वनी अगाशीए उगशे त्यहां सुधी
गगन नेत्र पूर्व भणी नमशे मानवी "

(वसन्तोत्सव, पृ० ८१)

शब्दालंकार के अनेकों उदाहरण यत्र तत्र दृष्टव्य हैं ।

काव्य में सारभूत महत्त्व अर्थालंकार का होता है । कवि ने प्राय: सभी मुख्य मुख्य अर्थालंकारों का उपयोग किया है जैसे उपमा, रूपक, सन्देह, प्रतीत,

अपन्हुति, अतिशयोक्ति, दीपक, दृष्टान्त, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, विरोधाभास, अन्योक्ति, आदि ।

कवि का कोई भी काव्य ले तो उपमा, रूपक आदि अलंकार अनायास मिल जाते है । " उपमा कालिदासस्य " की उक्ति न्हानालाल के लिये भी चरितार्थ की जा सकती है ।

उपमा :

" अभ्यासना खाली कुंभमां
टुंका जीवनना उभरातो अनुभव
नीतारी नीतारी भर्यो हतो "

(चित्र दर्शनो, पृ० ८१)

रूपक :

" मरनडनां माळा जेवी
अन्तरिक्षे एक आरसनी अटारी लटकती
नमेली रसभर वेली समी
एक यौवना झुकेली हती "

(के०का०, १, पृ० २५)

विरोधाभास :

" नम्र ने नम्रता तोये शैल सी दृढता हती "

(पितृतर्पण)

अपन्हुति :

" शुं ए देव गरनड ? ना नहि, एता
ए भक्ति ने ज्ञान छे "

(सप्तर्षि मंडळने, रसवंदना)

ससंदेह अलंकार :

" रात्रिकाओं गीत गाती ऊभी ने नदी ने तट
भणे छे एह पाषाणो प्रेममन्त्रो सनातन "
(ताजमहेल)

दृष्टांत :

" नथी माता विना फूल "

उत्प्रेक्षा:

" देवोना धाम जेवुं हैडुं जाणे हिमालय "

विरोध :

" निराशा नीतरती आशाथी
केटलांक अन्तरात्माने सांत्वन छांटे छे "
(ओज अने अगर, पृ० २५)

इस प्रकार कवि के काव्यों में अलंकारों का उपयोग नैसर्गिक लक्षित होता है। भाषा और भाव के साथ मिलकर वे एक हो गये हैं।

श्री रमण कोठारी ने लिखा है कि –

" कविनी कवितामां केटलीकवार अलंकार मुख्य वस्तुमां एवो भळी जाय छे, भाव अने कल्पनानी साथे एवो वणाइने आवे छे अने अलंकारथी वस्तु एवी व्यंजित करीने ऊभी रहे छे के ते अप्रस्तुत तत्त्व पण अप्रस्तुत रहेतुं नथी। कविना अलंकारनी आ विशिष्टता नोंधवा जेवी छे। "[१]

१ श्री रमण कोठारी, न्हानालालनो काव्य प्रपात, पृ० ३२

इस शैली के अन्तर्गत कवि की काव्य रचनाओं में माधुर्य और प्रसाद गुण है क्योंकि प्रायः सभी रचनाएं प्रेम और सौंदर्यपरक है। कवि ने यत्र तत्र दाम्पत्यभाव जो प्रेम के अंतर्गत आता है उसका प्रभावशाली वर्णन किया है। श्रावणी अमास, ब्रह्मदीक्षा, आदि काव्य करुण रस के अन्तर्गत आने से शोक की भावनाएं जागृत होती है, अतः कवि के काव्य माधुर्य और प्रसाद गुण से ओतप्रोत है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

<u>माधुर्य गुण :</u>

" आत्मने संकोरनारी, ब्रह्मकुमारीए
पांदडीए पांदडीए एने
चन्द्रिकानी अमृतप्याली पाई "

(कें० का० भाग-१, पृ० ४७)

" फूल खरी जाय छे,
पण स्नेहवेल कोनी करमाती नथी "
हैयाना अमृत पाई उछरेली
स्नेहलता सहुनी अम्मर छे "

(ओज अने अगर, पृ० ७९)

<u>प्रसाद गुण :</u>

" यौवनना उघाड छतां विकार हीन
बुद्धिवैभव छतां अडग श्रद्धावान्,
प्रारब्धवादी छतां निरन्तर पुरुषार्थी
अद्वितीय गुरु छतां सदाना शिष्य,
महा तत्वज्ञानी छतां ये
एकान्तिक भक्त तमे हतां "

(चित्रदर्शना, गुरुदेव, पृ० ८०)

" श्रद्धा न धोता, अन्ध श्रद्धा ज धोजो,
वस्त्र न धोता, मेल्ने डाघ धोजो,
पाप धोजो, प्रकृति धोजो, भाग्य धोजो,
न धोशो सूर्य तेज के चन्द्र ज्योत्स्ना "
(हरि संहिताना उपनिषदो, पृ० ३९)

कवि न्हानालाल ने कुरुक्षेत्र में जो वर्णन किये है वे आशावादी और वीर रसपूर्ण है अतः उनमें ओजगुण लक्षित होता है । पंक्तियां दृष्टव्य हैं :-

" वन छे वनराजनां
जगत छे जयवन्तानुं
मीठीने नहि, वैश्य विष्ठिथी नहि,
जीतीने जगतने भोगवो "
(कुरुक्षेत्र, द्वितीय काण्ड, पृ० ३७)

" ओ क्षात्र संजीवन मणि ।
गांडीव शाने छांड्युं ? ब्राह्मण यज्ञ छाडे, तो क्षत्रिय शस्त्र छाडे ,
सूर्य देव प्रताप त्यागे, तो क्षत्रिय वीरत्व उतारे
जीवननी धन्य घडी उगी छे, कर्तव्यनो परम अवसर आव्यो छे :
रणमां रणवीर था
महाकर्तव्यनी बारडीए व्हडवुं एज मानवतानो मानव यज्ञ,
एज जनतानो जीवन योग,
पुरुषातन छे पुरुषनो जीवनादेश "
(कुरुक्षेत्र, चतुर्थ काण्ड, पृ० ३४)

जिस प्रकार प्रसाद के समस्त कृतित्व में " कामायनी " का महत्व अन्यतम है, उसी प्रकार कवि न्हानालाल की कृतियों में " कुरुक्षेत्र " कवि की महान उपलब्धि

है । इसे स्वयं कवि ने महाकाव्य माना है । अतः काव्यरूप की दृष्टि से इसका स्वतंत्र विवेचन अपेक्षित है ।

कुरुक्षेत्र का काव्य रूप :

कवि न्हानालाल की इस विशाल काय रचना को कई विद्वानों ने महाकाव्य की मान्यता नहीं दी है, लेकिन लेखक ने इसे वाल्टर पिटर और एवर क्राम्बी के आधार पर महाकाव्य माना है । इसके भावपक्ष का विस्तृत वर्णन और महाकाव्य संबंधी विचार पूर्ववर्ती विवेचन के अंतर्गत निर्दिष्ट किये जा चुके हैं ।

यह " डोलन शैली " का काव्य है । इसी शैली के अनुरूप इसमें भाषा के प्रभावोत्पादक तत्त्व निहित हैं । भावानुकूल भाषा, सशक्त शब्द, रसों का उचित वर्णन - वीर, शांत, ~~बिभत्स~~ बीभत्स आदि, शब्दशक्ति - लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग गुण, ओजगुण, प्रसादगुण, अलंकार आदि सभी विशेषताओं का इसमें समावेश है । सर्व प्रथम महाकाव्य के दृष्टिकोण से इस पर विचार किया जा रहा है । डा० नगेन्द्र ने महाकाव्य के जिन मूल तत्त्वों का विश्लेषण किया है वे ये हैं : (१) उदात्त कथानक, (२) उदात्त कार्य और उद्देश्य चरित्र, (३) उदात्त भाव, (४) उदात्त शैली ।

(१) उदात्त कथानक :

महाभारत के उद्योग-पर्व की कथावस्तु पर ~~आधा~~ आधारित इस काव्य में आवश्यकतानुसार कल्पना का मिश्रण किया गया है जिससे वह अधिक प्रतीति कर एवं विश्वसनीय बन गयी है । ये उद्भावनाएं कथा को कृत्रिम न बनाकर उसे महान उद्देश्य की ओर अग्रसर करती हैं । इसकी दूसरी विशेषता यह है कि कथानक के प्राचीन होते हुए भी आधुनिक युग की युगानुरूप भावनाओं की भी उसमें सयुक्ति व्यंजनता है ।

(२) उदात्त विचार :

परम्परागत कथानक के उदात्त विचारों की ही अभिव्यक्ति इस काव्य

में नहीं है, अपितु कल्पना के योग से कथानक में नवीनता का संचार करते हुए कवि ने अनेक उदात्त विचारों को वर्तमान समस्याओं की ओर मोडा है। इन विचारों को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है।

(१) जहां तक हो सके विचार विमर्श से कार्य करके पारस्परिक विद्वेष एवं संघर्ष दूर करें। कृष्ण इसलिए दुर्योधन के पास गये थे कि युद्ध न हों।

(२) यदि हमारा हक कोई छीनता है तो उसे प्राप्त करना हमारा धर्म है। उस समय हिंसा पुण्य है, पाप नहीं।

(३) यत्र तत्र कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण लक्षित होता है। उदाहरणार्थ- " युद्ध में एन केन प्रकारेण विजय प्राप्त करना मानवधर्म है "

(४) राष्ट्रीयता और भारतभूमि के प्रति कवि ने अपूर्व प्रेम और पूज्य भाव बतलाया है।

(५) आज के युग के समाजवाद के पूरे सिद्धान्त और उनकी व्यावहारिक परिणति युधिष्ठिर की राज्य पद्धति में निर्दिष्ट की गयी है।

(६) मानव वृत्तियों का पूरा विश्लेषण मानस शास्त्रीय ढंग से किया गया है उदाहरणार्थ वीरता, क्रोध, ईर्ष्या, प्रेमसहानुभूति आदि।

इन तत्त्वों के आधार पर " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य के साथ साथ युग युगीन काव्य भी ठहरता है क्योंकि इसमें स्थान स्थान पर आशा, प्रेरणा, जागृति आदि के प्रेरणापूरित वाक्य दिये हैं। इसमें सदाचार और भारतीय संस्कृति के प्रति कवि को दृढ विश्वास है और इनसे संबंधित पूरा काण्ड " शरशय्या " भरा पडा है। बाणों की शय्या पर सोये हुए भीष्म युधिष्ठिर को जो संदेश देते हैं वह एक युगान्तरकारी संदेश कहा जा सकता है।

उदात्त चरित्र :

कुरुक्षेत्र में युद्ध करता है अर्जुन लेकिन कुरुक्षेत्र के नायक है श्री कृष्ण क्योंकि प्रारंभ से वे ही सूत्रधार बने हैं। धीर, उदात्त नायक के सर्वगुणों से वे विभूषित है। अर्जुन को युद्ध में उचित मार्गदर्शन देकर और कभी कभी अर्जुन घोर निराश हो जाता था तब आशा, प्रेरणा, जागृति का संचार कर युद्ध में विजय दिलाते हैं। उस महत् नायक कृष्ण के साथ उदात्त चरित्र में अर्जुन का चरित्र है, लेकिन अर्जुन की प्रेरणा और वीरता भगवान कृष्ण ही है। महाभारत में कृष्ण ने बंसरी नहीं लेकिन सुदर्शन चक्र लिया था और वही उनका विजय का पूर्ण सम्बल था।

(४) उदात्त भाव या अंगीरस :

भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में शृंगार, वीर या शान्त रस में से किसी एक की प्रमुखता होनी चाहिए। " कुरुक्षेत्र " में वीर रस प्रमुख है क्योंकि युद्ध से संबंधित यह काव्य है। यह वीर रस पूर्ण महाकाव्य है जैसे " पृथ्वीराज रासो "। अंतिम तीन सर्ग शरशय्या, महासुदर्शन, समन्त पंचक - शान्तरस से आप्लावित है। महाप्रस्थान - करुण रस का काण्ड है अर्थात् महाकाव्य के अनुरूप इसमें पर्याप्त रस सामग्री प्राप्त होती हैं।

इसमें राष्ट्रीयता, मानवसेवा, समाजवाद, राजा प्रजा के संबंध परोपकार, धार्मिक संस्कार और भावनाएं आदि उदात्त भावों का भी यत्र तत्र प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है।

(५) युग जीवन तथा प्रकृति के विविध पक्षों का चित्रण :

कथानक पुराना होते हुए भी कवि ने अपने बुद्धि कौशल्य से उसे युग जीवन के साथ संबंधित किया है। हर संघर्ष के बाद मनुष्य को पछतावा होता है। यह घटना युधिष्ठिर के पश्चाताप के माध्यम से व्यक्त की है। भीष्म की "शरशय्या " यह पूरा काण्ड युगपरक और युग प्रवर्तक है। इसमें भीष्म ने युधिष्ठिर

को भव्य और दिव्य संदेश दिया है। इसमें आशावाद, वीरता, जागृति, प्रेरणा आदि बातें स्पष्टतः कही गई हैं। " महा सुदर्शन " काण्ड में दार्शनिकता और भूमा का प्रभाव बतलाया है अर्थात् पुरुषार्थ में मानते हुए भी कवि नियति की महान सत्ता का भी स्वीकार करता है। युद्ध, मरण, हिंसा आदि घटनाओं को भी कविने आदर्श मानवीय धरातल पर और युगपरक बुद्धि से अपनाई है।

(५) उदात्त भाषा शैली :

कवि ने इस महाकाव्य के लिए बहुत डोलन शैली का प्रयोग किया है जिसे पूर्ववर्ती पृष्ठों में लक्ष्य किया जा चुका है। कवि ने इस संबंध में स्वयं लिखा है कि

> " बे त्रण महाकाव्यो नर्मदे लखवा आदरेलां पण
> आदरमांज अधूरां रहेलां दीठां हतां। नर्मदे पण महाकाव्य ने
> माटे महा छन्दनुं सृजन शोधन मांड्युं हतुं "

पोते स्पष्ट कहे छे के " कविता दीक्षा पिता दलपते दीधी, महाकाव्यनी भावना काका नर्मदे दीधी "।[१] जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है कि यह कवि की निजी शैली थी। इसके अतिरिक्त इस काव्य के भाषा-प्रयोग की कतिपय विशेषताएं संक्षेप में उल्लेखनीय हैं :

(१) भावानुरूपता :

> " संसारनो परम रोग छे एक :
> संसारीओना आत्मा ओसरी गया छे
> पार्थ। पृथ्वी पाटले आत्मज्ञान रहेजे हो।
> आत्मदीपने बुझावा देतो मा :
> पार्थ। वावाझोडां वाय

१ कुरुक्षेत्र : अर्पण अने प्रस्तावना, पृ० २५

पण रत्नदीप न होलवाय
प्राणने प्हेरो भरजो, पुत्रो ।
आत्म कोरने खरला दे तो मा
आत्मा अमृत मणि छे "

(कुरुक्षेत्र, शरशय्या, पृ० ४२-४३)

उपर्युक्त उदाहरण में कथन की स्पष्टता के साथ भावानुरूप शब्द-योजना द्वारा अभिव्यक्ति को मनोज्ञ एवं प्रभावशाली बनाया गया है ।

(२) शब्द-शक्तियाँ :

शब्द शक्तियाँ जहाँ भाव को प्रभावशाली बना कर प्रस्तुत करने के माध्यम हैं वहाँ दूसरी ओर वे भाषा-शिल्प की भी द्योतक हैं । " कुरुक्षेत्र " काव्य में अभिधा का गुण तो सर्वत्र मिल जायेगा । लक्षणा और व्यंजना के सफल प्रयोग के कतिपय उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय हैं :-

लक्षणा : " पितामह ! प्रारब्धना पूर
पाछां वळतां दीठां छे कदी ?
वरस्तो मेहुलो पाछो वळाय
तो वरस्ता प्रारब्ध पाछां वळाय "

(कुरुक्षेत्र, द्वितीय काण्ड, पृ० ४७)

व्यंजना : " इंद्रियोना ने संसार वायुना बंटोळ
घोडापूर समा जगतमां घूमशे,
त्होये वैसी जशे ते बधी जशे
निःसीम छे मानवीना उडवाना मनोरथ ;
पण विधिनिर्माणनी भींतो ए अथडाइ
आत्मानी पांखो पींखाइ पडे छे " (शरशय्या, पृ० ३९)

प्रथम उदाहरण में प्रारब्ध के वैशिष्ट्य एवं महाकाव्य में वर्णित परिस्थिति की गम्भीरता को लाक्षणिक शैली में व्यक्त करके कथन में चमत्कार की सृष्टि की गयी है। इसी प्रकार मनोरथ को उपमानों से व्यक्त करके व्यंजना द्वारा कथन में मार्मिकता का सन्निवेश किया गया है।

(२) काव्य गुण :

" कुरुक्षेत्र " महाकाव्य की विषय-वस्तु के पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि माधुर्य गुण के अनुरूप उसकी कथा नहीं है। अतः विशेषतः ओज और प्रसाद गुण से युक्त काव्य पंक्तियाँ इसमें मिलती है। प्रायः गंभीर चिन्तन के प्रसंगों पर प्रसाद गुण युक्त शैली एक ओर उसे विलष्ट एवं मन की उलझानेवाली नहीं बनाई तथा दूसरी ओर उपमानों के योग से कथन में सौन्दर्य झलक उठता है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

" संसारनो परम रोग छे एक :
संसारीओना आत्मा ओसरी गया छे।
पार्थ। बावाझाडां वाय
पण रत्नदीप न होलवाय।
आत्म कोर ने खरवा देतो मा।
आत्मा अमूल्य मणि छे "

(शरशय्या, पृ० ४२-४३)

वैसे तो ओज-गुण युक्त शब्दावली पूरे काव्य में कहीं न कहीं विद्यमान है किन्तु प्रतिज्ञा द्वन्द्व तथा चक्रव्यूह खण्डों में ओजगुण विशेषतः वर्तमान है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है :-

" कुन्तिपुत्र। सिंहना कुमार।
मननी मृदुता भुली दे,

महापुरुषना पौरुष ने घूमाव
भारत । त्हारो धर्म पाठ "

(प्रतिशादुवन्दुव, पृ० ८१-८२)

कुरुक्षेत्र की शैली की चौथी विशेषता अलंकार योजना की है । इसका सोदाहरण विवेचन पूर्ववर्ती पृष्ठों के अन्तर्गत किया जा चुका है । यहां संक्षेप में यह उल्लेखनीय है कि कवि द्वारा अलंकार प्रयोग सायास नहीं दृष्टि गोचर होता ! वे काव्योक्तियों में ऐसे घुल-मिल गये हैं कि पाठक या श्रोता को चमत्कृत करके एवं भावोर्मियां जगाने में पूर्णतया सक्षम है । प्रयुक्त शब्दालंकार अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा चित्रात्मकता के है तथा अर्थालंकारों में आवश्यकतानुसार उपमा, रूपक, विरोधाभास, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, आदि अर्थ को प्रभावी बनाते हुए प्रयुक्त हुए हैं । ये चमत्कार विधायक मात्र बन नहीं रह गये, अपितु भावानुभूति को अधिक प्रभावशाली एवं प्रगल्भ बनाते हैं ।

प्रबन्ध शिल्प :

काव्य रूप के दृष्टिकोण से महाकाव्य, प्रबन्ध काव्य का एक प्रकार है । अतः कृति की सफलता उसके प्रबन्ध-शिल्प पर बहुत-कुछ निर्भर करती है । प्रबन्धात्मकता के लिए चार बातें आवश्यक हैं । एक तो सम्बन्ध-निर्वाह अर्थात् आधिकारिक अथवा मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं का समुचित गुम्फन, कथा की समीचीन गतिशीलता, मार्मिक स्थलों की पहचान एवं चरित्र सृष्टि ।[1] इनमें से अन्तिम दो के बिना कोई भी प्रबन्ध-काव्य इतिवृत्त मात्र रह जायगा । कवि न्हानालाल ने मार्मिक स्थलों की समुचित योजना की है जिसे हम भाव-योजना-विषयक विवेचन के अन्तर्गत स्पष्ट कर चुके हैं । चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से विचार किया जाय तो यह लक्ष्य किया जा चुका है कि कुरुक्षेत्र के नायक श्रीकृष्ण जिनके अतिरिक्त प्रधानपात्र, अर्जुन तथा भीष्म भी हैं । कथानक की प्राचीनता या उसके पौराणिक

१ श्रवणाख्यान, सं० डा० चंद्रप्रकाशसिंह तथा डा० मदनगोपाल गुप्त, भूमिका, पृ० २१

आधार के कारण चरित्र सृष्टि के लिए कथावस्तु ही एक बहुत बडा आधार है किन्तु जैसा कि पहले भी निर्दिष्ट किया जा चुका है कि कवि न्हानालाल ने कथावस्तु को आधुनिक परिस्थितियों के संदर्भ में नयी व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया है। अतः घटनाओं, पात्रों तथा संवादों की योजना में कवि की मौलिक चरित्रसृष्टि को लक्ष्य किया जा सकता है। इस मौलिकता के कवि ने कतिपय स्थलों पर घटना तथा कथोपकथन को नयी कल्पना से चमकाने का भी यत्न किया है। अतः इसमें संदेह नहीं कि " कुरुक्षेत्र " के पात्र पौराणिक होते हुए भी कवि की नयी उद्भावना का भी साक्ष्य- उपस्थित करते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों विशेषताएं " कुरुक्षेत्र " को इतिवृत्त-मात्र के स्थान पर उसे महाकाव्य के निकट ला देती हैं।

सम्बन्ध-निर्वाह तथा कथा की समीचीन गतिशीलता के दृष्टिकोण से " कुरुक्षेत्र " का शिल्प विशेषतः विचारणीय है। यह निश्चित है कि आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं का समुचित संगुम्फन के अभाव से कथा की गतिशीलता में बाधा पडती है। " कुरुक्षेत्र " की कथा - शैली पौराणिक ढंग की है, यदि कोई नवीनता है तो वह है छन्द-योजना, नाद-सौन्दर्य तथा पद शैली संयुक्त " डोलन शैली " की। कथा-प्रवाह में बाधा पहुंचानेवाले प्रसंग जोगनीओं का दृश्य (द्वादश काण्ड), बीभत्स रस के अंतर्गत शृंगार का वर्णन (नवम काण्ड), संख्या - उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक है। इसी प्रकार संवाद मार्मिक और मनोवैज्ञानिक है किन्तु यत्र-तत्र चिन्तन का सम्भार एवं उनका विस्तार उक्त समीचीन गतिशीलता में बाधक कहा जा सकता है, यद्यपि उनका यह गुण अवश्य उल्लेख योग्य है वे चरित्र-सृष्टि में प्रायः बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। अतः समग्रतया यह कहा जा सकता है कि प्रबन्धात्मकता का सफल निर्वाह इस काव्य में नहीं हो पाया है। महत् उद्देश्य-उदात्त विचार, तथा उदात्त चरित्र आदि को ध्यान में रखते हुए इसे महान् काव्य तो निश्चय ही कहा जा सकता है। सम्भवतः यही कारण है कि गुजराती साहित्य के विद्वान आलोचकों ने - " श्री सुंदरम् ", श्री अंतराय रावळ, श्री उमाशंकर, श्री व० क० ठाकोर ने इसे महाकाव्य नहीं माना है।

कवि न्हानालाल ने " महा काव्य " के विषय में जो विचार प्रस्तुत किये हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :- [1]

" महाकाव्य एटले काळब्रह्मनुं इतिहास स्तोत्र, वीर विशेषनां वीरत्व ने पुरुष विशेषनां पराक्रमोनी महागाथा ते महाकाव्य । काव्य-शास्त्रना मान्य शब्दकोशे जगतना साहित्याचार्यों एने एपिक वीर गाथा कहे छे ।

रत्नजडियानी रत्न कळा, आबू मन्दिरोमांनी शिल्पकळा, ने धारापुरीनी महाभाग महाकळा - ए कळा त्रिवेणीनो सुभग संगम घाट ते महाकाव्य "

" स्वप्नद्रष्टा महाकविनी मनीषा वर्षों पर्यन्त अक्षरावलिओमां ढोळाय ने ढगले वळे ने पर्वतदेह बन्धाय ए महा काय अक्षर देह ते महाकाव्य ।"

" महाकाव्य मात्र शिखर नथी, विन्ध्याचळ के हिमाचल समुं महाकाव्य गगनमंडळमां कांगरा कोरती गिरिमाळा छे " [2]

स्वयं कवि द्वारा प्रस्तुत एतद्विषयक उपर्युक्त मान्यताओं के प्रकाश में विचार करें तो यह वीर काव्य तथा उदात्त विचार धारा से प्रेरित काव्य को महाकाव्य मानता है और प्रस्तुत कृति की रचना के समय उसके समक्ष यही दृष्टिकोण रहा है । किन्तु साहित्य शास्त्र में सर्वमान्य जो स्थापनाएं हैं वे प्रबन्ध शिल्प एवं व्यवस्था आदि के विषय में निश्चित दृष्टिकोण की समर्थक है । इनके आधार पर यदि समग्रतया विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उद्देश्य की महानता के कारण इसे महान-काव्य तो स्वीकार किया ही जा सकता है । " महा " शब्द को केवल

---

१ कुरुक्षेत्र, अर्पण अने प्रस्तावना, पृ० ३१

२ वही

आकार का खोलक माने तो " महाकाव्य " भी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती किन्तु विषय वस्तु के समुचित विनियोजन के दृष्टिकोण से इसे त्रुटिपूर्ण कहा जायगा, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार के दोषों के बावजूद भी " कुरुक्षेत्र " कवि न्हानालाल की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

हरिसंहितानां उपनिषदो :

इन उपनिषदों का भावपक्ष हम पूर्ववर्ती अध्याय में लक्ष्य कर चुके हैं । इसमें अभिव्यक्ति पक्ष ही समग्रतया लिया गया है । " डोलन शैली " के अंतर्गत की यह अंतिम रचना है । कवि ने शैली के अनुसार सशक्त शब्द वाली सशक्त डोलन वाली भाषा का प्रयोग किया है । इसमें भाषा का प्रभाव और चमत्कार (डोलन) दृष्टव्य है : उदाहरण -

" संसारमां संचरजो सिंह थै ने
प्रफुल्लाय तो पुष्प समा प्रफुल्लजो,
म्होराय तो म्होरजो आंबला समा,
गन्धाशोभां, गन्दाये थशो मा " [1]

इसी प्रकार भाषा की चमत्कृति के अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं । भाषा में भावों के वहन करने की अपूर्व क्षमता है, इसमें स्वरमैत्री का भी पर्याप्त उपयोग मिलता है । उदाहरण :-

" अमृत अंगुलियो, अनन्त पाठे,
अनिलथी अक्षरो कोरी कोरी
सागर शब्दे ने गिरि गिराए
ब्रह्म लखे छे आ ब्रह्मांड काव्य ने " [2]

१ हरिसंहितानां उपनिषदो, शिवशंकर शुक्ल, पृ० ३
२ वही, पृ० ४१

नाद सौंदर्य :

नाद सौंदर्य के लिये कवि ने सरलता और मृदुता ला दी है :-

उदाहरण -

" धजो नरो अमृत सागरो समा ।
धजो नारीओ सागरमांनी लहरो । " [१]

लाक्षणिकता :

उदाहरण -

" अगम्य ने वाचे ए आत्मा " ,(पृ० ५९)
विकास छे प्राणवंतानी प्रेरणा (पृ० ६९)

ध्वन्यात्मकता :

उदाहरण -

" आत्माए परमात्माना हैयामां हैयुं ढोळ्युं ;
ढोळाये गंगाना पूर जईने जेम सागरे " (पृ० ८१)

प्रतीकात्मकता :

" भाषा को सरस, सुंदर, मधुर एवं गम्भीर बनाने
के लिए कविने प्रतीकों की योजना की है ।

उदाहरण -

" अमृत छे परब्रह्म नुं ब्रह्मत्व
अमृत छे मृत्युनी महा औषधी "

१ हरिसंहिताना उपनिषदो, शिवशंकर शुक्ल, पृ० ३३

चित्रोपमता :

" जिससे भाव या विचार का चित्र
तादृश्य खडा होता है ।

उदाहरण –

महालक्ष्मनो रैवत मध्य मांडी,
मन्थो माग्यवन्ता । संसार सागर "

(पृ० ११)

उपचारवक्रता :

उदाहरण –

" ज्ञान जननी शाश्वत छे ज श्रद्धा ।
ने ज्ञान छे वेदमन्त्रोनुं दूध "

(पृ० १७)

इस प्रकार कवि ने प्रवाहमयी भाषा के संपूर्ण तत्त्व अपनाये है । अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से कवि ने शब्दालंकार और अर्थालंकार का काव्योचित विधान से उपयोग किया है वे काव्य के साथ घुल मिल कर एक हो गये है, उदाहरण –

" संसारमां संचरजो सिंह थै ने
प्रफुल्लाय तो पुष्प समा प्रफुल्ल जो,
म्होराय तो म्होरजो आंबला समा "

(पृ० ३)

भावार्थ यह है कि कवि ने उपमा, रूपक, अपह्नुति आदि अर्थालंकारों का और श्लेष, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का यथेष्ट उपयोग किया है । इसमें प्रसाद और माधुर्य गुण का पूरा परिपाक हुआ है । निष्कर्ष यह है कि डोलन शैली की यह अंतिम रचना प्रांजल और कलापूर्ण है ।

निष्कर्ष – तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत अध्याय में श्री जयशंकर प्रसाद तथा कवि न्हानालाल की काव्य-कृतियों के कला-सौष्ठव का जो अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है, उससे दोनों की स्वतंत्र विशेषताएं प्रकाशित होती है । अपनी अपनी भाषाओं की काव्यधारा में नयी शैलियों का प्रयोग करनेवाले इन दोनों कवियों का निश्चय ही युगान्तरकारी व्यक्तित्व उभर कर आता है । वैसे उनकी काव्य-चेतना के विविध उपकरणों पर दृष्टिक्षेप करने से दोनों की समानता एवं असमानता के पक्ष प्रकाश में आते हैं । किन्तु उनके परिगणन मात्र से हमारे अभिष्ट की पूर्ति नहीं होती ।

इनके कला-पक्षीय तुलनात्मक मूल्यांकन से पूर्व सर्व प्रथम यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक अपनी निजी काव्य-परम्पराओं से संस्कारित होता है अथवा उनके बीच नयी चेतना का संचार करता है, दूसरे प्रादेशिक परिस्थितियां भी उनके व्यक्तित्व की निर्माणिका हुआ करती हैं । कवि की रुचि ही नहीं उसकी चेतना उनसे प्रेरित और प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती । इसमें संदेह नहीं कि ये दोनों ही आलोच्य कवि आधुनिक नवोत्थानवादी वातावरण की देन है तथा दूसरी ओर पूर्ववर्ती पृष्ठों का अनुशीलन यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि कवि व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से दोनों ही शब्द और अर्थ की साधना में पर्याप्त सक्षम थे । काव्यों की विषय वस्तु से प्रमाणित है कि उज्ज्वल अतीत की साहित्य धारा पर दोनों का समर्थ अधिकार था और उसके साथ ही नयी काव्य चेतना के प्रति पर्याप्त उत्साह भी था । प्राचीनता किंवा आधुनिकता दो में किसी एक के प्रति पूर्वाग्रह की वृत्ति दोनों में नहीं मिलती ।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से विचार करने से हम देखते हैं कि जिस प्रकार प्रसाद जी ने अपने कवि-जीवन का आरम्भ ब्रजभाषा की काव्य-रचना से किया उसी प्रकार कवि न्हानालाल ने आरम्भ में " रास-काव्यो " तथा " रणगीतो " जैसी प्राचीन परम्परा की रचनाएं लिखीं । पूर्ववर्ती परम्परा के प्रभाव की प्रवृत्तिगत इस

समानता के होते हुए भी दोनों की कलात्मक अभिव्यक्ति की भूमियां समान नहीं कही जा सकती । प्रसाद जी की आरम्भिक रचनाएं या तो हिन्दी की रीतिकालीन परम्परा की देन हैं अथवा उस काल तक प्रचलित अन्य छंदों में प्राचीन आख्यानों का काव्यात्मक वर्णन की है । हिन्दी की इस रीतिकालीन तथा आख्यानों की परम्परा का अनुगमन कवि न्हानालाल के पिता कवीश्वर दलपतराम ने किया था, किन्तु न्हानालाल शौर्यगीतों अथवा वैष्णव संप्रदाय के रास-काव्यों की गेय परम्परा को अपनाया, इसका कारण भी स्वाभाविक है कि गुजराती काव्य-परम्परा में इन दो शैलियों का प्रभाव था अथवा यह कहें कि हमारे आलोच्य कवि की रुचि उस दिशा में थी । छन्दोबद्ध काव्यों अथवा कतिपय गीतों में उन्होंने जिन नये विषयों को भी लिया था उनकी कलात्मक चेतना भी परम्परागत ही थी ।

काव्य-चेतना के मोड -

काव्य-साधना की एक अवधि के पश्चात् जिस प्रकार हम प्रसाद जी के काव्य में अभिव्यंजना शिल्प के नये आयामों को देखते हैं, उसी प्रकार कालान्तर में कवि न्हानालाल को भी स्वनिर्मित नये आयाम - डोलनशैली - की ओर पदन्यास करते हुए पाते हैं । किन्तु रचनाओं के पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयास के काव्य-विकास के दो सोपान स्पष्ट हैं । प्रथम सोपान में वे खडीबोली को साफ-सुथरी एवं यथासंभव सशक्त भाषा के प्रयोग के साथ प्राचीन आख्यानों की रचना में प्रवृत्त दिखाई देते हैं । " म्हाराणा का महत्त्व ", " करुणालय " तथा " कानन-कुसुम " जैसी रचनाएं इसका साक्ष्य उपस्थित करती हैं । इन रचनाओं में भी वे शिल्प के अन्य आयामों की ओर यत्र-तत्र उन्मुख होते दिखाई पडते हैं । द्वितीय सोपान में आकर वे छायावादी काव्य के सर्जन में प्रवृत्त होते हैं । परवर्ती काल की सभी रचनाएं इसे ही प्रभावित नहीं करती कि प्रसाद के उक्त उत्तरोत्तर काव्य-विकास को भी घोषित करती है जिसकी कि चरम परिणति " कामायनी " में हुई है । यहां यह स्पष्टतः निर्दिष्ट कर देना प्रासंगिक ही होगा कि छायावादी

काव्यशैली अपना लेने के पश्चात् प्रसाद जी निरन्तर उसके विकास-पथ की ओर बढ़ते रहे, कभी भी वे पीछे मुड़कर अपनी पूर्ववर्ती अभिव्यंजना प्रणाली की ओर नहीं झुके।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से यदि कवि न्हानालाल की काव्यात्मक उपलब्धि पर विचार किया जाय तो हम उनकी काव्य चेतना के विकास को किंचित भिन्न स्थिति में पाते हैं। इसके सम्बन्ध में प्रथम उल्लेखनीय तथ्य यह है कि " डोलन शैली " का प्रवर्तन उन्होंने पर्याप्त काव्य-साधना के उपरान्त किया। दूसरे उन्होंने पूर्ववर्ती काव्य-चेतना को प्रसादजी की भाँति सर्वथा छोड़ नहीं दिया। समय समय पर वे छन्दोबद्ध काव्य तथा रास-काव्य जैसी रचनाएं बाद में भी लिखते रहे। अनेक प्रासंगिक रचनाएं भी इसी तथ्य को प्रकाशित करती हैं। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि कवि न्हानालाल की काव्य चेतना का मोड़ एक ही है और उसमें उन्होंने प्रसाद की ही भाँति महाकाव्य लिखने की चेष्टा अवश्य की है। अतः विषय-वस्तु और शैली दोनों ही दृष्टिकोणों से कवि न्हानालाल ने प्रसाद जी की भाँति आरम्भ कालीन कला-चेतना तथा तद्विषयक मान्यताओं को अंतक सर्वथा छोड़ी नहीं है। अतः इस दृष्टिकोण से प्रसादजी और कवि न्हानालाल की कलात्मक चेतना के अन्तर को भलीभाँति लक्ष्य किया जा सकता है।

अभिव्यंजना-शिल्प :

अभिव्यंजना-शिल्प के दृष्टिकोण से दोनों कवियों को निश्चय ही एक-दूसरे के समकक्ष रखा जा सकता है। भाषा के लाक्षणिक और ध्वन्यात्मक प्रयोगों एवं नाद-सौंदर्य में कलात्मक उत्कृष्टता के ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनमें किसी एक की गुणवत्ता को न्यूनाधिक कहना अनुपयुक्त प्रतीत होता है। उनमें वस्तुगत-सान्य होना आवश्यक नहीं, किन्तु काव्योत्कर्ष का निखार समान स्तर का है। यहाँ एक दो उदाहरण पर्याप्त होंगे -

लाक्षणिकता -

" सूनी कुटिया कोने में
रजनी भर जलते जाना,
लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा है फिर बुझ जाना "

प्रसाद - आँसू, पृ० ७९

" रस विधात्री वसन्तिका
विलास विहारतुं विमल व्योम ;
वन्मां निर्दोष कुसुमो
स्हेमना हृदयभाव उपर
स्मितवती दृष्टिथी जोता हता "

(वसन्तोत्सव, पृ० ५४)

ध्वन्यात्मकता -

" अरी उपेक्षा-भरी अमरते !
री अतृप्ति-निर्बाध विलास
द्विधा रहित अपलक नयनों की
भूख भरी दर्शन की प्यास "

प्रसाद - कामायनी, पृ० २०

" निराशा नीतरती आशाथी,
केटलाक अन्तआत्माने सान्त्वन छांटे छे
एम घडीक घडीक मढूकता आत्माने
अगर आश्वासन छांटती "

न्हानाः ओज अने अगर, पृ० २५

नाद-सौन्दर्य :

जैसे प्रसाद ने " करुणा कलित हृदय ", " विकल रागिनी ", " व्यथित व्योम गंगा ", " हृदय शिशिर कण पूरित " आदि पदावली के प्रयोग द्वारा शब्द ध्वनि से भाव को नाद सौन्दर्य से युक्त बनाया है उसी प्रकार न्हानालाल ने " मदभर यौवन वेण ", " सरावे लाधती भारी नौका ", " तपोवननी ए तो तापसी ", " उतरनी एक वादळी उतरी " जैसी पदावली द्वारा स्वर-विधान को प्रस्तुत किया है। काव्य में प्रायः ऐसे शब्दों का रखना अधिक सुन्दर माना जाता है जिनकी ध्वनि कानों को मधुर एवं सुखद प्रतीत होती है और जो रसानुकूल होने के कारण कानों में प्रवेश करते ही हृदय पर हठात् अपना अधिकार कर लेते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शब्द योजना तथा पदविन्यास द्वारा नाद-सौन्दर्य की सृष्टि तथा लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता के माध्यम से उक्ति में प्रभावात्मकता के सन्निवेश में दोनों ही कवि प्रवीण थे। चित्र-विधान के सफल प्रयोग भी दोनों की रचनाओं में मिलते हैं ; अतः अभिव्यंजना-शिल्प की क्षमता में हम दोनों को निःसंकोच एक-दूसरे के समकक्ष का मान सकते हैं। हां, शिल्प के उपकरणों के चयन का यदि सूक्ष्म विश्लेषण करें तो प्रसाद ने नये उपमानों तथा पाश्चात्य अलंकार-विधान को अधिक अपनाया है। इसके आधार पर किसी को निर्बल या सबल घोषित करना अन्याय होगा क्योंकि यह तो कवि की रुचि पर प्रायः निर्भर करता है। हां, समग्रतया मूल्यांकन के आधार पर एक को दूसरे से भिन्न ठहरानेवाले इस वैशिष्ट्य को अवश्य लक्ष्य किया जा सकता है कि प्रसादजी कवि न्हानालाल की तुलना में नये प्रयोगों की दिशा में अधिक अग्रसर थे। प्रसाद के छायावादी नये शिल्प विधान तथा कलागत आयामों के अभिनव प्रयोगों के समक्ष कवि न्हानालाल की " डोलन शैली " को रख कर विचार करें तो यह कहा जाता है कि " डोलन शैली " मुक्त छन्द प्रयोग तथा भावानुरूप पदावली की योजना तक सीमित है। जयशंकर प्रसाद ने इस प्रकार की शैली में " शेरसिंह का शस्त्र समर्पण,"

पेशोला की प्रतिध्वनि " तथा " प्रलय की छाया " जैसी सशक्त रचनाएं प्रस्तुत की हैं। किन्तु छायावाद काव्य-चेतना के अन्तः और बाह्य दोनों पक्षों में युगान्तरकारी शिल्प-विधान को लेकर खडा हुआ है। सूक्ष्म अभिव्यंजना प्रणाली एवं मनस्तत्व के विश्लेषण को सूक्ष्म रसमयी वाणी में प्रस्तुत करने की जो कला " आंसू " और कामायनी में प्रकट हुई है ; उस प्रकार की रचनाएं कवि न्हानालाल ने नहीं प्रस्तुत की। यही कारण है कि " कामायनी " जैसा सभी दृष्टियों से सफल महाकाव्य और कथानक की प्राचीनता के बावजूद भी युगीन चेतना को चिन्तन की भूमिका का उसमें जैसा प्रस्तुतीकरण हुआ है, वैसा हम कवि न्हानालाल के " सुरतक्षेत्र " में नहीं पाते।

भाषा प्रयोग :

भाषा प्रयोग के शैलीगत पक्ष पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में विचार किया जा चुका है, अतः यहां केवल उसके रूप की संक्षिप्त चर्चा की जायगी। प्रसादजी की भाषा संस्कृत की तत्सम पदावली की ओर किंचित झुकी हुई शुद्ध एवं परिमार्जित है। उसमें एक-आध व्याकरिण दोष अथवा अप्रचलित प्रयोग के रूप भले ही मिल जांय किन्तु छन्द आदि की सुविधा से उन्हें तोड-मरोड कर विकृत नहीं किया गया है। कवि न्हानालाल ने इस बात में अधिक स्वच्छन्दता से काम लिया है। एक तो उसमें गुजराती शब्दों को आवश्यकतानुसार तोड कर किंचित परिवर्तित भी किया गया है। कभी कभी ऐसे प्रयोगों द्वारा लौकिक वातावरण की सृष्टि की गयी है। जैसे रातडी (रात) विजलडी (बिजली); वातलडी (बात) इत्यादि। इसे एक वैशिष्ट्य के रूप में देखा जा सकता है। इसी प्रकार लोकगीत की धुनवाली रचनाओं में - विशेष कर रास-काव्यों में - " रे ", " लोल ", " बाला ", " सखि " आदि सम्बोधन सूचक शब्दों को जोडा गया है। तीसरी विशेषता यह है कि उनकी भाषा में सौराष्ट्र की बोली अथवा सौरठी प्रभावित गुजराती के प्रयोग भी मिलते हैं। इससे आंचलिक माधुर्य भले ही आ गया हो पर भाषा की एकरूपता अवश्य बाधित होती है। इससे भिन्न जयशंकर प्रसाद जी ने सर्वत्र खडी बोली का सर्वप्रचलित और

परिमार्जित रूप ही काव्य भाषा में प्रयुक्त किया है। वैसे प्रादेशिक अंचल की दृष्टि से देखा जाय तो वे भोजपुरी बोली के क्षेत्र के निवासी थे किन्तु उनके काव्य में भाषा का ठकसाली रूप ही सर्वत्र पाया जाता है। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि श्री जयशंकर प्रसाद तथा कवि न्हानालाल दोनों ही बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध की अपनी अपनी भाषाओं की काव्य परम्परा की महान उपलब्धि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। शिल्प के अभिनव प्रयोग की दिशा में दोनों ने ही अपनी प्रतिभा और साधना के योग द्वारा हिन्दी और गुजराती की काव्य-धाराओं को अलंकृत किया है। युगीन परिवेश के प्रति सजगता की वृत्ति और संवेदन-शीलता का गुण इन दोनों ही रससिद्ध कवियों में था। जहां वे परस्पर भिन्न चेतना को लिए हुए अपने निजी वैशिष्ट्य के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं, उसके लिए दो आधार भूमियां उत्तरदायी सिद्ध होती हैं - प्रथम तो उनकी भाषाओं की भिन्न काव्य-परम्पराएं और उनका प्रभाव तथा दूसरे इन काव्यकारों की परस्पर भिन्न रुचि तथा मान्यताओं की स्थिति।

oooooo